

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186468

UNIVERSAL^{*}
LIBRARY

OUP—552—7-7-66—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H610

Accession No. H1911

Author B13T

Title A4c1

This book should be returned on or before the date last marked below.

भारतीय द्रव्यगुण ग्रन्थमाला—१

त्रिफला

[हरड़, बहेड़ा, आंवला का अलग-अलग और त्रिफला
के रूप में सम्मिलित वर्णन]

लेखक
श्री रामेश बेदी



इस पुस्तक पर लेखक को अखिल भारतीय आयुर्वेद
महा सम्मेलन ने २५०) के नवान्न चरजमालखान
स्वर्णपदक द्वारा सम्मानित किया है।

प्रकाशक

हिमालय हर्बल इंस्टिट्यूट,
गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

तीसरा संशोधित परिवर्द्धित संस्करण

मूल्य सवा तीन रुपये ।

पहला संस्करण

दूसरा संस्करण

तीसरा संस्करण ११०० प्रतिया

सितम्बर १९४४

सितम्बर १९५१

[कॉपी राइट लेखक के पास]

मुद्रक—

श्री हरिवंश वेदालंकार

गुरुकुल मुद्रणालय,

गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार ।

भूमिका

ओषधियों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रत्येक ओषधि के सम्बन्ध में निम्न-लिखित बातों का ज्ञान होना आवश्यक है—

१ नाम—हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेज़ी, लैटिन और भारतीय प्रान्तीय भाषाओं के नाम तथा वनस्पतियों के संस्कृत पर्यायों का अर्थों के अनुसार श्रेणीकरण । २ प्राप्ति स्थान—प्राकृतिक अवस्थाओं में पौधा किन किन स्थानों और परिस्थितियों में उगता है और उस का भारत में विस्तार कहाँ-कहाँ है । ३ वनस्पतिक वर्णन—आधुनिक वनस्पति शास्त्र के अनुसार पौधे के फल, फूल, पत्र आदि प्रत्येक भाग का विशद वर्णन; जिसकी सहायता से विद्यार्थी प्रकृति में पौधे को सुगमता से पहिचान सके । ४ इतिहास—पौधे का मौलिक उद्भव स्थान संसार में किस जगह है । वहाँ से यह दूसरे देशों में कैसे फैला तथा भारत में कब आया अथवा भारत से बाहर कब और कैसे गया । चिकित्सा-रूप में पौधे का उपयोग करने का ऐतिहासिक वर्णन । ५ भेद—बहुत से पौधे आकृति में एक दूसरे से मिलते जुलते हैं परन्तु चिकित्सा सम्बन्धी गुण उन में भिन्न-भिन्न होते हैं । इस प्रकार के भेदों का स्पष्ट ज्ञान । ६ रासायनिक संघटन—रासायनिक विश्लेषण करने से ओषध का क्रियाशील पदार्थ पृथक् प्राप्त किया जाता है । उस क्रियाशील पदार्थ के कारण ही ओषध में प्रादी, कृमि-नाशक, संज्ञाहर आदि गुण रहते हैं । ओषधियों के विविध अङ्गों के रासायनिक विश्लेषण द्वारा प्राप्त क्रियाशील तत्वों का ज्ञान । ७ आयुर्वेदिक मतानुसार गुण—रस-निषण्ड, धन्वन्तरि, भाव प्रकाश और वैयदेव आदि प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में प्रतिपादित ओषध के गुणों सम्बन्धी श्लोकों का ज्ञान । ८ उपयोगी भाग—पौधे का कौन सा भाग व्यवहार में आता है और उस की अच्छाई की पहिचान क्या है । ९ संग्रह—किस ऋतु में वनस्पति ली जानी चाहिए और किन बातों का ध्यान रखते हुए संग्रह करके रखनी चाहिए । १० मात्रा—प्रयोग में आने वाले ओषध के विभिन्न भागों की मात्रा । ११ योग—ओषध के प्रसिद्ध शास्त्रीय और व्यवहार में आने वाले अनुभूत योग और उन की मात्रा । १२ सामान्य उपयोग—वनस्पति के प्रत्येक भाग का चिकित्सा से भिन्न कार्य के लिए क्या उपयोग होता है । १३ प्रभाव—शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों और स्थानों

पर औषध का किस प्रकार और क्या प्रभाव होता है। प्रयोग-शालाओं के नवीन परीक्षणों का ज्ञान । १४ चिकित्सोपयोग—चिकित्सारूप में औषध का उपयोग किस तरह होता है । चरक, सुश्रुत, वाग्भट आदि प्राचीन संस्कृत लेखकों तथा आधुनिक अन्वेषकों ने औषध को रोगों की चिकित्सा में किस तरह उपयोग किया है । १५ कृषि—पौधे की खेती करने के सम्बन्ध में टिप्पणियाँ । १६ व्यापारिक महत्व—औषध के यातायात और व्यापारिक उपयोगिता सम्बन्धी साधारण ज्ञान । १७ सहायक ग्रन्थ—उपर्युक्त बातों के ज्ञान के लिए किन-किन ग्रन्थों से सहायता मिल सकती है ।

जहा तक मेरा ज्ञान है भारतीय वनस्पतियों पर पाश्चात्य और पौरस्त्य दोनों दृष्टियों से सम्बन्ध्यात्मक अध्ययन अब तक नहीं किया गया है और मेरा विश्वास है कि इस चीज़ की अत्यन्त आवश्यकता है । अपने विद्यार्थी काल में मैंने इस कठिनाई को अनुभव किया, और उसी समय से वानस्पतिक औषधियों की ओर मेरा ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ । सन् १९३३ से वनस्पतियों के सम्बन्ध में मैं विशेष अध्ययन कर रहा हूँ । विविध पत्र-पत्रिकाओं में भी इस विषय पर लिखता रहा हूँ । मेरी इच्छा थी कि वनस्पतियों की विस्तृत जानकारी देने वाला एक बृहद् ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय जिस में ऊपर लिखे सब विषयों का समावेश हो । कार्य प्रारम्भ करने के लिए मैंने पहले एक-एक वनस्पति और भोजन के द्रव्य पर पृथक्-पृथक् पुस्तके लिखनी आरम्भ कीं जो भारतीय-द्रव्यगुण-ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्रकाशित हो रही हैं । अब तक नौ पुस्तके प्रकाशित हो चुकी हैं । मेरा विचार इस प्रकार की पाच सौ से अधिक पुस्तके लिखने का है । प्रत्येक पुस्तक में उस द्रव्य के विषय में प्राचीन तथा आधुनिक अन्वेषकों के अध्ययनों का विस्तृत वर्णन दिया जा रहा है । देश-विदेश के विद्वानों ने विशेष रूप से और जन साधारण ने सामान्य रूप से इस आयोजन की उपयोगिता समझते हुए इस की सराहना की है । इसे और अधिक उपयोगी बनाने के लिए पाठकों से प्राप्त सुझावों का मैं स्वागत करूँगा ।

विषय-सूची

हरड़

संस्कृत के नाम	१७	कृषि	५६
संस्कृत नामों का अर्थ	१६	इतिहास	५८
अन्य भाषाओं में नाम	२१	उत्पत्ति सम्बन्धी गाथाएं	६०
प्राप्ति स्थान	२३	युरोपियन चिकित्सा में	६१
जंगल से निकासी	२५	उपयोगी भाग	६३
जंगल विभाग का कर	२७	मात्रा	६६
संग्रह कौन करे	२६	मिलावट	६६
सुखाने और संग्रह करने का तरीका	२६	नकली हरड़	६६
सञ्चय का समय	३२	नकली और असली हरड़ की पहिचान	६८
बाजार के लिए तय्यार करना	३३	रासायनिक संघटन	६९
गूदा निकालना	३६	मींगी का तेल	७१
पैदावार	३६	टैनीन का विश्लेषण	७४
फल की भारत में खपत	३८	संग्रह करने के स्थान के अनु-	
निर्यात	३८	सार टैनीन में भिन्नता	७५
धनसार का निर्यात	३८	संग्रह करने के समय के अनु-	
मूल्य	३६	सार टैनीन में भिन्नता	७७
परिणाम	४१	आकृति	७६
वर्णन	४१	रंग	८०
कीटफल (gaills)	४५	रचना	८१
संस्कृत लेखकों के भेद	४६	गुठली और गूदे में टैनीन का	
विदेशी लेखकों के भेद	५०	अनुपात	८२
व्यापार में भेद	५२	गुण	८४
भेदों के सम्बन्ध में नई खोजें	५३	गिरी के गुण	८६

६	त्रिफला	
स्थान भेद से गुणों में अन्तर	८६	शूल ११६
हरड़ में पांच रस	६०	वायु गोला १२०
त्रिदोषहर होने में रस का कारण	६२	अनुलोमन १२०
विशेष प्रभाव	६३	दस्त, पेचिश १२३
प्रयोगविधि के भेद से गुणों में अन्तर	६४	बवासीर में १२५
योग	६५	खून आना १२६
सत्व बनाना	१०२	ज्वरों में १२७
सामान्य उपयोग	१०३	खासी, दमा १२७
चिकित्सा में उपयोग	१०६	मदात्यय १२७
शिशुओं के लिए माता के समान हितकर	१०७	मूत्र संस्थान के रोगों में १२८
सब अवस्थाओं में लाभदायक	१०७	वातरक्त १२६
आयु बढ़ाने वाली	१०८	शृद्धिरोग १२६
रसायन	१०९	फीलपांव १३०
अनेक रोगनाशक	११३	त्वचा के रोग १३०
ऋतु हरीतकी	११४	ज्वरों पर १३१
पेट के रोगों में	११५	मुख तथा गले के रोग १३१
अजीर्ण, वमन	११८	आख के रोग १३२
		हरड़ खाने का निषेध १३२

बहेड़ा

संस्कृत के नाम	१३४	कृषि १४५
संस्कृत नामों का अर्थ	१३७	उपयोगी भाग १४७
अन्य भाषाओं में नाम	१३८	संग्रह १४८
प्राप्ति स्थान	१४०	मात्रा १४८
वर्णन	१४०	गुण १४८
इतिहास	१४३	गुठली की गिरी के गुण १५१
भेद	१४५	बहेड़ा गर्म है या ठण्डा १५२

	त्रिकला	७
रासायनिक विश्लेषण	१५३	मूत्र के रोग १६४
सामान्य उपयोग	१५४	आंख के रोग १६४
निर्यात	१५६	शोथ, दाह, ग्रन्थि १६५
गिरी विषैली नहीं	१६०	बालों के लिए हितकर १६६
चिकित्सोपयोग	१६१	पीप बहना १६६
आससंस्थान के रोग	१६१	अन्य उपयोग १६६
महास्रोतसू के रोग	१६३	

आंवला

संस्कृत के नाम	१६८	सामान्य उपयोग २१७
संस्कृत नामों का अर्थ	१७१	प्रभाव तथा चिकित्सा में
अन्य भाषाओं में नाम	१७२	उपयोग २२१
प्राप्ति स्थान	१७३	रसायन २२२
वर्णन	१७४	निर्बल बच्चों को २२३
कृषि	१७६	मुख, गला, दांत २२४
इतिहास	१७६	खाद्योज सी का प्रचुर स्रोत २२५
उपयोगी भाग	१८५	सुखाने की अच्छी विधि २२६
संग्रह	१८५	युद्धकाल का आवश्यक पदार्थ २३७
मात्रा	१८५	भोजन सम्बन्धी उपयोगिता २३७
रासायनिक संघटन	१८५	एक लाभप्रद व्यवसाय २२८
गुण	१८७	आंवला स्ववैश की
सूखे आंवले के गुण	१८६	लोक-प्रियता २३०
आंवले के बीजों के गुण	१८६	महास्रोतसू के रोग २३१
आंवले और हरड़ के गुणों		जिगर के रोग २३३
में अन्तर	१९०	आस संस्थान २३४
त्रिदोषहर होने में हेतु	१९१	क्षय की प्रवृत्ति में २३४
विपरीत क्यों नहीं ?	१९२	रक्तपित्त, नकसीर २३५
योग	१९२	मदात्म्य २३६

मस्तिष्क और सिर के रोग	२३६	स्त्रियों के उत्पादक अङ्गों के	
बालों के लिए	२३७	रोग	२४२
हृदय के रोग	२३८	मृगी	२४३
ज्वर	२३८	गठिया	२४४
मूत्र मार्ग के रोग	२३९	बवासीर	२४४
मधुमेह	२४१	जखम	२४४
प्रमेह	२४२	आंख के रोग	२४५

त्रिफला

संस्कृत के नाम	२४७	गुल्म	२८५
अन्य भाषाओं में नाम	२४८	शूल	२८६
उपयोगी भाग तथा संग्रह	२४८	व्रण आदि शल्य कर्म सम्बन्धी	
इतिहास	२४९	अवस्थाओं में	२८७
त्रिफला का अनुपात	२५०	मूत्र तथा प्रजनन संस्थान	२८८
हृस्व त्रिफला	२५३	स्त्रियों के रोग	२८९
मधुर त्रिफला	२५३	मदात्यय, उद्वस्तम्भ	२९०
गुण	२५३	त्वचा के रोग	२९०
योग	२५५	आंख के रोग	२९१
उपयोग	२७६	बवासीर	२९४
रसायन	२७६	ज्वर	२९४
अनुपान भेदसे रोग नाशकता	२८०	खांसी, जुकाम	२९५
शृटु त्रिफला	२८२	बाल रंगने के लिए	२९६
पेट के रोग	२८२	मिखने की स्याही	३०१
जिगर और तिक्ती	२८३	सर्पदंश	३०१
मलबन्ध	२८४	सहायक साहित्य	३०२



हरड़

संस्कृत के नाम^१

संस्कृत के निघण्टु ग्रन्थों में मिलने वाले हरड़ के नाम निम्नलिखित हैं—

राज निघण्टु	धन्वन्तरि	भाव प्रकाश	कैयदेव
१ हरीतकी	१ हरीतकी	१ हरीतकी	१ हरीतकी
२ हेमवती	२ हेमवती	२ हेमवती	२ हेमवती
३ जया	३ जया		३ जया
४ अभया	४ अभया	३ अभया	४ अभया
५ शिवा	५ शिवा	४ शिवा	५ शिवा
६ अव्यथा	६ अव्यथा	५ अव्यथा	६ अव्यथा
७ चेतनिका	७ चेतकी		७ चेतकी
८ रोहिणी	८ रोहिणी	६ रोहिणी	

१क हरीतकी हेमवती जयाऽभया शिवाऽव्यथा चेतनिका च रोहिणी ।
पथ्या प्रपथ्याऽपि च पूतनाऽमृता जीवनिका भिषग्वरा ॥
जीवन्ती प्राणदा जीव्या कायस्था श्रेयसी च सा ।
देवी दिव्या च विजया वह्निनेत्रमिताभिधा ॥

—राजनिघण्टु, आम्नादि घर्ग; श्लोक २१४-२१५ ।

६ पथ्या	६ पथ्या	७ पथ्या	८ पथ्या
१० प्रपथ्या	१० प्रपथ्या		६ प्रपथ्या
११ पूतना	११ पूतना	८ पूतना	१० पूतना
१२ अमृता	१२ अमृता	६ अमृता	११ अमृता
१३ जीवनिका			१२ जीवनीया
१४ भिषग्वरा			
१५ जीवन्ती		१० जीवन्ती	
१६ प्राणदा	१३ प्राणदा		१३ प्राणदा
१७ जीव्या			

ख हरीतक्यभया पथ्या कायस्था पूतनाऽमृता ।
 हैमवत्यव्यथा चापि जीवन्ती श्रेयसी शिवा ॥
 वयस्था विजया चापि जीवन्ता रोहिणीति च ॥

—भावप्रकाश, हरीतक्यादि वर्ग; ६-७ ।

ग हरीतक्यभया पथ्या प्रपथ्या हैमवत्यपि ।
 कायस्था श्रेयसी ज्ञेया प्राणदा विजया शिवा ॥
 अव्यथा पूतनाऽमोघा प्रमथा पूतना जया ।
 जीवनीया वयस्था स्यादमृता चेतकी मता ॥

—कैयदेव निघण्टु, श्रोषधि वर्ग; २०६-२०७ ।

घ हरीतक्यभया पथ्या प्रपथ्या पूतनाऽमृता ।
 जयाऽव्यथा हैमवतो वयस्था चेतकी शिवा ।
 प्राणदां नन्दिनी चैव रोहिणी विजया च सा ॥

—धन्वतरि निघण्टु, गुड्ढ्यादि वर्ग ।

१८ कायस्था	११ कायस्था	१४ क.यस्था
१९ श्रेयसी	१२ श्रेयसी	१५ श्रेयसी
२० देवी		
२१ दिव्या		
२२ विजया	१४ विजया	१३ विजया
	१५ नन्दिनी	१६ विजया
	१६ वयस्था	१४ वयस्था
		१७ वयस्था
		१८ अमोघा
		१९ प्रमथा

संस्कृत नामों का अर्थ

उत्पत्ति-बोधक नाम— हरीतकी (हरस्य भवने जाता, भगवान् शिव के घर-हिमालय में उत्पन्न होती है); गिरिजा

१क हरस्य भवने जाता हरिता च स्वभावतः ।
सर्वरोगाश्च हरते तेन ख्याता हरीतकी ॥

—ध० नि०, गुड्व्यादि० ।

ख हरते प्रसभं व्याधीन् भूयस्तरति यद्वपुः ।
हरीतकी तु सा प्रोक्ता तत्रकीर्दीप्तिवाचकः ॥

—रा० नि०, आम्नादि०; २२८ ।

ग हरीतकी की उत्कृष्टता बताते हुए अष्टाङ्ग संग्रहकार ने हरीतकी के कुछ नामों का निर्वचन किया है—

हरणात् सर्वरोगाणां यासावुक्ता हरीतकी ।
पथ्यत्वात् सर्वधातूनां पथ्या शिवतया शिवा ॥

(पर्वत पर उत्पन्न होने वाली); हिमजा (हिमालय पर उगने वाली); शक्रस्रष्टा (इन्द्र से पैदा की गई, अमृतपान करते हुए इन्द्र से अमृत के बिन्दु जमीन पर गिरे उन से सात प्रकार की हरड़ उत्पन्न हुई); सुधोद्धवा, अमृता, सुधा (अमृत से उत्पन्न) ।

परिचय-ज्ञापक नाम— हरीतकी (हरिपीतवर्णम् इता प्राप्ता, रंग में हरे से पीले रंग की होने से) ।

गुण-प्रकाशक संज्ञा— हरीतकी (सर्वरोगान् हरते, सब रोगों को दूर करने वाली); अभया (अभयं सर्व रोगेभ्यो भवत्याशुश्च शाश्वतम्, इसके नियमित सेवन से रोग का भय कभी नहीं रहता); विजया (विजयते व्याधीन् समग्रान्, सब रोगों को जीतने वाली); अव्यथा (व्यथा-रोग दूर करने वाली); प्रमथा (रोग को मथ कर अर्थात् समूल नष्ट कर देने वाली); अमोघा (अव्यर्थ गुणकारक ओषधि); कायस्था (शरीर बनाये रखने वाली); वयःस्था (आयु स्थिर करने वाली); पथ्या (पथ्यत्वात् सर्वधातूनाम्, शरीर की सब धातुओं के लिये पथ्य का काम करती है, उनके लिये हितकर

यस्माद्विजयते व्याधीन् समग्रान् विजया ततः ।

अभयं सर्वरोगेभ्यो भवत्याशुश्च शाश्वतम् ।

यतः शील्यतामेनां तेनेयमभया स्मृता ॥

—अष्टाङ्ग संग्रह, ३०, अ० ४६ ।

है); प्रपथ्या (बहुत अधिक हितकारक), सुधा, अमृता (अमृत तुल्य, अमरता देने वाली); देवी- दिव्या (दिव्य-गुण युक्त); प्राणदा (जीवन देने वाली), जीव्या, जीवन्ती, जीवनीया, जीवनिका (जिलाने वाली), पूतना (पवित्र करने वाली); शिवा (बलदायक); श्रेयसी (श्रेष्ठ), चेतकी (चेतना, ज्ञान देने वाली, स्मृतिवर्द्धक); बल्या (बल दायक), जीवप्रिया (प्राणियों की प्रिय) नन्दिनी (आनन्द देने वाली); भिषक्प्रिया (चिकित्सक की प्रिय, चिकित्सक की भरोसा करने योग्य औषध); पाचनी (पाचक); रोहिणी (व्रणादियों को रोहण करने वाली अथवा रोहति आरोहति अन्यगुणान्, योगवाही) ।

अन्य भाषाओं में नाम

हिन्दी	हरड़ ।
बंगाली	हरीतकी, हर्तकी ।
गुजराती	हरडे, हर्रे, हिमाजा ।
मराठी	हरीतकी, हर्तकी, हिरडा, हिरडे ।
पंजाबी	हर्रे, हर्रा ।
सिन्धी	इमाची ।
काश्मीरी	उमरद हल्लेला ।
बिहारी	हर्रे ।
उड़िया	करेड़ा, हरिड़ा ।

गढ़वाली	हलडुंण ।
कर्णाटकी	कारेकायि, अणिलेकायि, हर्डे कायिमर ।
तैलङ्गी	करकाय ।
तामिल	कटुमरं, कटुकाय्, अङ्कणं ।
नेपाली	हेरडो ।
मलयालम्	कटुका ।
ब्रह्मी	पाडा ।
उर्दू	हलद ।
तुर्की	अणिलेमर ।
अरबी	अहलीज, एहलीलज ।
फ़ारसी	हलैले ।
मलयी	कटुकामरम्, बुआह कटुका ।
सिंहाली	अरलु ।
अंग्रेजी	दि माइरोबैलन ट्री (The myrobalan tree)
जर्मन	रिस्पिजर माइरोबैलैनेन्बॉम (Rispiger myrobalanenbaum) ।
फ्रेंच	बदमीर चिबुले (Badamier chebule).
लैटिन	टर्मिनेलिया चिबुला (Terminalia chebula, Retz.) ।

नैसर्गिक वर्ग कौम्ब्रिटेसी (Combretaceae) ।

थेविनौट (१६६५) के अनुसार अंग्रेजी नाम चिबुलिक माइरोबैलन और लैटिन नाम टर्मिनेलिया चिबुला में चिबुला

या चिबुलक शब्द पर्शियन के काबुली से बने हैं। इसका पर्शियन नाम हलिलेह-ए-काबुली है। पर्शियन नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि यह काबुल की उपज रही होगी। परन्तु ऐसी बात है नहीं। पर्शिया में यह काबुल के रास्ते से आती होगी इस लिए पर्शियन लोगों ने इसे यह नाम दे दिया होगा।

गार्सिया कहता है कि उसके अरब लोग इन हरड़ों को केबुलगि कहते थे। इब्न बैथर इन्हें हलीलज कहता है। बहुत से प्रामाणिक लेखकों को इसने उद्धृत किया है जो हलीलज को ही काबुली कहते थे।

प्राप्ति स्थान

भारत और ब्रह्मा में सर्वत्र, विशेष कर सामयिक जंगलों में और कभी-कभी अधिक आर्द्रमिश्रित जंगलों में भी मिलता है।

उत्तर भारत में बहुतायत से होता है। पञ्जाब में यह वृक्ष छोटा सामान्यतया ४-५ फीट घेरे के तने वाला होता है। अधिक दक्षिण में और अनुकूल अवस्थाओं में यह अस्सी से सौ फीट तक बड़ा आकार प्राप्त कर लेता है। सीधे नियमित आकृति वाले तने का घेरा ८ से १२ फीट हो जाता है। उत्तर-पश्चिम प्रान्त में निम्न हिमालय और शिवालिक मार्गों में सतलुज से पूर्व की ओर पांच हजार फीट तक

पहुँच गया है। कांगड़ा जिले में विस्तृत रूप में मिलता है। कांगड़ा घाटी में कमजोर चट्टानी ज़मीन पर लगभग ३५०० फीट पर बिखरा हुआ, अकेला या चीड़ के साथ मिला हुआ मिलता है। यहां वृक्ष की वृद्धि इतनी अच्छी नहीं होती।

मालामऊ, हज़ारी बाग, बंगाल में थोड़ा बहुत सब जगह मिल जाता है। आसाम में बहुतायत से मिलता है। पूर्वीय बंगाल, बिहार, अवध, मध्य भारत और दक्षिण भारत में यह वृक्ष आमतौर से पाया जाता है।

यह विभिन्न प्रकार की ज़मीनों में, चिकनी और रेतीली ज़मीन में भी मिलता है। मध्यप्रांत में खुले जंगलों या ग्राम्य भूमियों में, चट्टानों में आम मिलता है। दूसरे किस्म की ज़मीन में भी होता है।

बम्बई में उच्च जंगलों में सामान्य रूप से मिलता है। बम्बई में मुख्यतया थाना, नासिक, नागर, खंडेश, पूना, बेलगाम, सताग और सूरत जिलों में पाया जाता है। महा-बलेश्वर के प्लेटो के अन्दर ४५०० फीट पर उन जंगलों का मुख्य अंश है जिनमें छोटी लकड़ी होती है। नर्मदा के दक्षिण में आमतौर पर अधिक मिलता है, आकार में भी बड़ा होता है। सत्पुड़ा के उच्च स्थलों पर दो हजार फीट की ऊंचाई तक बहुतायत से मिलता है। गोदावरी के मार्गों में उगता है।

हिमालय में उच्च तल पर चट्टानों वाले और शुष्क स्थानों में तथा दक्षिण भारत के पहाड़ों में यह बहुत छोटा वृक्ष होता है। परन्तु बड़े वृक्ष की घाटियों और जंगलों में यह भी बड़ा हो जाता है और गहरे रंग की लकड़ी देता है। बाह्य हिमालय में नीलगिरी और दक्षिण भारतीय पर्वत-श्रेणियों में, त्रावनकोर प्रदेश में, जहां कि वर्षा कम होती है, ६००० फीट तक मिल जाता है।

मद्रास प्रेसीडेन्सी में सर्वत्र जंगलों में होता है। प्रायः शुष्क स्थानों पर पाया जाता है। कोयम्बटूर में बड़े आकार का होता है। गंजाम और गुमसूर में काफी होता है।

ब्रह्मा, लंका और मलय प्रायद्वीप में मिलता है। लंका में नीचे प्रदेश में शुष्क जिलों में होता है। सिंगापुर की जल-वायु के लिये यह अनुकूल नहीं है। वहां के वानस्पतिक उद्यान (बोटेनिकल गार्डन) में इसको उगाने का प्रयत्न किया गया पर सफलता नहीं मिली। जावा में उगाया जा सकता है। बुटन्जर्ग (Butenzorg) में किसी तरह हो सकता है और मलय प्रायद्वीप में कुछ भाग ऐसे हैं जो निस्सन्देह इसके लिये अनुपयुक्त नहीं हैं।

जंगल से निकासी

निम्नलिखित फॉरेस्ट डिविज़नों के सुरक्षित जंगलों से हरद पर्याप्त परिमाण में निकलती है—

मध्य प्रदेश और बरार में बालाघाट, उत्तर तथा दक्षिण मण्डला, दक्षिण तथा उत्तर रामपुर, छिंदवाड़ा, मेलघाट, बेतूल, जन्वलपुर और अमरावती ।

मद्रास में अपर गोदावरी, विजगापट्टम, मदुरा, विल्लोर, तिन्नावेल्ली, उत्तर तथा दक्षिण कुदापह, उत्तर कोयम्बटूर, कुरनूल, नीलगिरीज और सलेम ।

बम्बई में बेलगांव, पूना, सतारा, पूर्व थाना, पश्चिम कनारा, पूर्व तथा पश्चिम नासिक और कोलाबा ।

बिहार में सिंहभूम और संथाल परगना ।

उड़ीसा में परलाकीमेडी ।

प्राइवेट जंगलों, गांवों और फालतू पड़ी भूमियाँ से हरड़ की निकासी सब से अधिक है । सरकारी सुरक्षित जंगलों से जितनी हरड़ें निकलती होंगी उससे इनका परिमाण चार या पांच गुना अधिक होगा । सरकारी जंगलों के अतिरिक्त दूसरे जंगलों पर नियन्त्रण न होने से निकलने वाले परिमाण की संख्याएं उपलब्ध नहीं होतीं । ऊपर जिन वन विभागों (फौरेस्ट डिविज़नों) का नाम गिनाया गया है उनके साथ लगते हुए स्थानों में जैसे कोल्हापुर, मैसूर तथा हैदराबाद रियासतों में, और असल में सारे दक्कन तथा कोंकण में और उड़ीसा की बहुत सी रियासतों में पैदावार बहुत अधिक है । पञ्जाब अर्थात् रावी से पूर्व की ओर निम्न हिमालय, विशेष

कर कांगड़ा जिला तथा शिवालिक पर्वतों से निकलने वाली हरड़ें इन्हीं प्रदेशों में खप जाती हैं। बंगाल और आसाम बहुत अधिक हरड़ें पैदा नहीं करता, और न ही भारत का शुष्क उत्तर-पश्चिम क्षेत्र।^१

जंगल विभाग का कर

१९३५-३६ से १९३६-४० तक हरड़ के फलों पर लिये गये रेवेन्यू की तालिका अगले पृष्ठ पर दी जा रही है। ये संख्याएं रुपयों को प्रदर्शित करती हैं।

१ एडवर्ड्स, एम. बी. माइरोपैलन, इण्डियन फॉरेस्ट लीफलेट नं० ७५-१९४५, पृ० ३।

प्रान्त	केन्द्र	१९३५-३६	१९३६-३७	१९३७-३८	१९३८-३९	१९३९-४० वार्षिक औसत
मद्रास	कोयम्बटूर	—	—	—	—	१८११ ३६२
	वल्तायर	—	—	३६४५	—	— ७२८
	बेल्तरी	—	—	—	२००२	११८० ६३६
	मद्रास का योग	—	—	३६४५	२००२	२६६१ १७२७
मध्यप्रान्त और बरार	—	१३०२४	८५४७	३०२०३	१७१७७	२०६६५ १७६८३
बम्बई	उत्तरीय	८१२	१२०४	१६५३	१४७८	२३५४ १५००
	मध्य	८०१२४	५४७५४	७२६४४	४५८१	५८१३४ ६२३५४
	दक्षिणीय	४८३१४	५००३४	८१३७	४७१३	५६६६ ५७३१४
	बम्बई का योग	१३६५५	११६८२	१७३८४	१०७७२	१३८३६ १३४६६
बिहार	—	१७१५	२०००	२४२१	१४७६	२० १५२६
उड़ीसा	—	१२	१२८१	७८३	७५१	५६५ ६६४
	कुल योग	२८४०६	२३११०	५४३३६	३२१७८	३८४०७ ३५३६६

× चिन्हों में एन्थिया कॉन्सिन्ना (*A. concinna*) का फलिया भी सम्मिलित है।

बंगाल, आसाम, सयुक्त प्रान्त, पञ्जाब और उत्तर पश्चिमीय सीमाप्रान्त में कोई रेवेन्यू नहीं लिया गया।

यदि लिया भी गया है तो पृथक् दिखलाया नहीं गया है।

संग्रह कौन करे ?

सामान्यतया हरड़ के जंगल या बगीचे ठेकेदार को नीलाम कर दिये जाते हैं। गांव वाले हरड़ें इकट्ठा करके उसके पास लाते हैं और वह चर्मकारों को या निर्यात करने वालों को बेच देता है। ठेकेदारों के द्वारा संग्रह करना संतोषजनक न समझ कर जंगल विभाग द्वारा इकट्ठा कराने के परीक्षणों को बम्बई में सफल समझा गया।^१ उसके बाद १९३१-३२ में फिर मद्रास और मध्यप्रांत में भी ठेकेदारों द्वारा कार्य का संतोष न होने से जंगल विभाग ने स्वयं हरड़ें इकट्ठा करवाईं। अनुभव ने बताया कि सरकारी विभाग द्वारा संग्रह करने में कुलियों को जो मंहगी मजदूरी देनी पड़ती है वह बारा नहीं खाती। ठेकेदार को तो गांव वाले अपने फुर्सत के समय में इकट्ठा करके दे जाते हैं, इस लिए वह सस्ता पड़ता है।

सुखाने और संग्रह करने का तरीका

जमीन पर से घास आदि को निकाल कर गोबर या चिकनी मिट्टी से लेप करके अच्छा फर्श सा बना लिया जाता है। डिपो में फल पहुंचते ही इस तरह तय्यार की हुई भूमि

^१ पीटन, १८७६, दि कलेक्शन औफ, ऐण्ड रेवेन्यू प्रौम माइरोबैलन्स इन दि साउदर्न डिबिज़न औफ बौम्बे। इण्डियन कौरेस्टर ५, पृ० २२५-३०।

पर फैला दिये जाते हैं। हरड़ें बिछाने में यह सावधानि रखी जाती है कि वे एक दूसरे के ऊपर ढेरी की शकल में न पड़ें परन्तु साथ-साथ फैलाने से जो तह बने उस तह में एक ही हरड़ हो। अच्छी धूप में पूर्णतया सूखने देने के लिए इन्हें हर दूसरे या तीसरे दिन पलट दिया जाता है। मुख्यतया यही प्रक्रिया है जिसके ऊपर हरड़ का अन्तिम व्यापारिक मूल्य निर्भर करता है। इस लिए इसमें बहुत अधिक सतर्क रहा जाता है। ऋतु साफ हो तो मिट्टी के फर्श पर हरड़ों को सूखने में बीस दिन का समय लग जाता है। चट्टानी भूमि हो या पक्का फर्श हो तो इस से प्रायः आधा समय लग जाता है, क्योंकि सूर्यास्त के बाद भी चट्टानें काफी देर तक गरम रहती हैं और वे हरड़ से नमी को उड़ाती रहती हैं। साथ ही जब ओस पड़ती है तो मिट्टी वाले फर्श की अपेक्षा चट्टानी जमीन पर से अधिक शीघ्रता से उड़ जाती है। बारिश की कुछ बौछारें हरड़ के मूल्यवान् गुणों को नष्ट कर देती हैं। उससे बचने के लिए ठेकेदार एक-दो अस्थायी छत्ती हुई बैरकें सी बना देता है जिसमें बारिश की सम्भावना होने पर हरड़ें जल्दी से बिछा दी जाती हैं। पूरा पक जाने पर फल अपने असल आकार के आधे से ज़रा सा बड़ा रहता है। सूखने की प्रक्रिया में इस पर रेखाएं पड़ जाती हैं। गूदे की बाहरी तह इतनी कठोर हो जाती है कि चाकू उस पर काम नहीं करता।

हरड़ों की जिन छोटी सी प्रतिशतकता में रेखाएं नहीं पड़तीं उन में देखा गया है कि छिलके के नीचे फल का लगभग लगभग सारा गूदा काले चूर्ण के रूप में परिवर्तित हो गया होता है जिसका स्याही बनाने में बहुत उपयोग होता है। ऐसे फलों को भोंगा हरड़ें कहते हैं और ये रंगने तथा चर्मकर्म के लिए निरूपयोगी समझी जाती हैं। रेखाओं वाली हरड़ें तब बोरों में भरी जा कर युरोप भेज दी जाती हैं। कुछ हरड़ें भारत में बेचने के लिए रख भी ली जाती हैं।^१

मद्रास में 'सामान्यतया शाखाएं हिला कर फल भाड़ लिये जाते हैं और जमीन पर से चुन लिये जाते हैं। वृत्तों के ऊपर से ही उनका संग्रह बहुत कम ही किया जाता है।'^२

बहुत पहले से ही (वाट, १८६६, पृ० ११) यह देखा गया था कि शाखाओं के साथ ही फलों को तोड़ते हुए बड़ी बड़ी टहनियां तोड़ ली जाती हैं। इस प्रथा को रोकना चाहिए क्योंकि इस से वृत्त को हानि पहुंचती है। इस तरह इकट्ठा किये गये फल भी सम्भवतः घटिया किस्म के होते हैं। हलके रंग के होने से ये बढ़िया होंगे इस कल्पना के कारण यद्यपि इनका मूल्य तो अधिक मिलता है परन्तु इस बात का निश्चित निर्णय करने के लिए पर्याप्त प्रमाण नहीं हैं।

१ डर्नर, १९०७।

२ चौधरी ऐण्ड नायडू, १९२६, पृ० १०।

फिर भी बाजार में फसल के अधिक से अधिक दाम प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि फल को संग्रह करने और सुखाने में बहुत अधिक सावधानि रखी जाय। पूरण सिंह (१६१८) ने दिखाया है कि ठीक तरह स्टोर की जाने पर हरड़ें खराब नहीं होतीं अर्थात् इन्हें सूखे और कीड़ों से रहित स्थान पर रखना चाहिए। यह बात केवल स्वस्थ और कीड़े से न खाये हुए फलों पर ही लागू होती है।

सञ्चय का समय

पूरण सिंह की खोजों के अनुसार टेनीन के परिमाण की दृष्टि से सञ्चय करने के समय का महत्व है। नवम्बर, दिसम्बर या जनवरी के सञ्चयों के समय अब तक कोई व्योरा नहीं मिलता।

सर्वोत्तम हरड़ें जनवरी में इकट्ठी की जाती हैं। भारत में सर्वत्र, इसके बाद का सञ्चय इतना अच्छा नहीं रहता और इससे पहले का बहुत खराब। स्पष्ट है कि अक्टूबर से मार्च तक सञ्चय करने की आजकल की प्रथा अच्छी नहीं है। अब तक जितनी भी खोजें हुई हैं उनमें हमें इस प्रकार का कोई विवरण नहीं मिलता जिससे यह जाना जा सके कि सञ्चय की दृष्टि से पकने की कौन सी अवस्था सर्वोत्तम रहती है। टेनीन परिमाण के अतिरिक्त भी किसी बात को ध्यान

में रखा जाना चाहिए यह नहीं कहा जा सकता ।

बाजार के लिए तय्यार करना

ग्रेड बनाना— विदेशों की मण्डियों को भेजने के लिए और भारत में भी चमड़े के कुछ कारखानों को देने के लिए व्यापारी हरड़ों के ग्रेड बना लेते हैं । इसके लिए सामान्यतया व्यापारी ऐसा करता है कि अच्छी दीखने वाली हरड़ों को अलग करके उन्हें पहले ग्रेड में रख लेता है और शेष को दूसरे ग्रेड में । जिस स्थान से हरड़ें निर्यात होती हैं उस स्थान के नाम के आधार पर मण्डियों में हरड़ों का नाम पड़ गया है । जैसे 'ज-१' = जबलपुरी पहले ग्रेड की हरड़ें । पांच मुख्य किस्में ये हैं—

विमली— विमलीपटम, मद्रास से निर्यात की जाती हैं ।

जबलपुरी— जबलपुर, मध्य प्रान्त से निर्यात की जाती हैं ।

गजपुरी— कोल्हापुर रियासत से निर्यात की जाती हैं ।

विंगोरली— बम्बई के जंगलों से निर्यात की जाती है ।

मद्रासी— मद्रास के जंगलों से निर्यात की जाती हैं ।

ब-१, ज-१, र-१ तथा कुटी हुई हरड़ों के स्टैण्डर्ड नमूनों को डायरेक्टर औफ इण्डस्ट्रीज़ (बम्बई) रख लेता है । ज-१ और कुटी हुई हरड़ों के नमूनों को डायरेक्टर-जेनरल औफ कमर्शियल इण्टेलिजेन्स एण्ड स्टैटिस्टिक्स, कलकत्ता रखता है ।

कभी-कभी बिना ग्रेड बनाये ही जंगल की औसत पैदावार चुन कर बोरियों में भर ली जाती है और उस पर 'F A Q' (fair average quality) निशान लगा दिया जाता है ।

टैनीन के परिमाण और रंग, दोनों दृष्टियों से सलेम की हरड़ें भारत में सब से अच्छी हरड़ें हैं परन्तु ये सब की सब वहीं खप जाती हैं, निर्यात नहीं होतीं ।

केवल आंखों से हरड़ों की सामान्य आकृति को देख कर ही अब तक उसके ग्रेड बनाने की पद्धति प्रचलित है । परन्तु रिपोर्ट प्राप्त हुई हैं कि इस प्रकार से स्टैंडर्ड निश्चित करना पर्याप्त नहीं होता । इंग्लैंड की खालों और चमड़ा कमाने के सामान पर विचार करने वाली विशेष कमेटी (१९२२)^१ ने और न्यूयॉर्क में भारतीय सरकार के व्यापार कमिश्नर (१९४१)^२ ने इस सम्बन्ध में चेतावनियां दी हैं । इंग्लैंड की कमेटी ने सलाह दी थी कि टैनीन को इकाई मान कर और रंग के आधार पर मूल्यांकन करना चाहिए । परन्तु

१ रिपोर्ट औन दि ट्रेड इन इण्डियन माइरोबैलन्स । दि स्पेशियल कमेटी औफ दि इण्डियन ट्रेड इन्क्वायरी औन हाइड्रेण्ड टैनिंग मैटीरियल्स । इण्डियन फौरे. ४८ : पृ. ६५८-७५ ।

२ इण्डियन माइरोबैलन्स इन अमेरिकन मार्केट । इण्डियन ट्रेड जर्नल १४१ (१९२६) : पृ. ७३६ ।

क्योंकि चर्मकार हरड़ को विभिन्न तरीकों से बरतते हैं और चर्मकर्म के बहुत से पहलुओं में टैनीन-परिमाण तथा रंग तो केवल दो ही पहलू हैं इस लिए यह समस्या इतनी आसानी से नहीं हल हो जाती। श्रीयुत एम. वी. एडवर्ड्स की सम्मति में आकार, रंग, भाग और मोटाई के आधार पर व्यापार में ग्रेड बनाना चाहिए। विस्तृत विश्लेषण के अलावा टैनीन का परिमाण जानने का और कोई तरीका नहीं है। मण्डी से हरड़ें खरीदते हुए यह सदा सम्भव भी नहीं होना। इस लिए टैनीन परिमाण का आकार या आकृति अथवा और किस पहलू से सम्बन्ध है यह निश्चय कर लिया जाना चाहिए।

इस समय तक हरड़ों का प्रतिनिधि द्रव्य कोई नहीं है इस लिए बाजार में इसकी खपत निश्चित है। परन्तु शिकायतें सूचित करती हैं कि चर्मकार सन्तुष्ट नहीं हैं। विशेषतः संयुक्त राज्य अमेरिका से प्राप्त रिपोर्ट में कहा गया है कि उस देश के चर्मकार हरड़ का स्थान लेने वाले दूसरे द्रव्यों (जैसे विनिजुएला से चेस्टनट, दिवि दिवि) और सिन्थेटिक चीजों को तलाश करने लगे हैं। इन प्रतिनिधियों में से यदि कोई एक भी क्रियात्मक हल बन गया तो इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि हरड़ का निर्यात व्यापार बिल्कुल समाप्त हो जायगा। इसे रोकने का यही तरीका है कि चर्मकारों

को हम अपनी हरड़ों के अच्छा होने का निश्चय दिला सकें। ऐसा होने पर ही प्रतिनिधि द्रव्यों की खोज अनावश्यक समझी जायगी।

गूदा निकालना

हरड़ों में से गूदा अलग छुड़ा लेने का लाभ यह है कि फल का कम महत्वपूर्ण भाग गुठली अलग हो जाती है। इस लिए हरड़ के गूदे या छिलके का व्यापार भी काफी है। इस में टैनीन का परिमाण पैंतालीस प्रतिशतक^१ से बावन प्रतिशतक (फ्रेमाउथ, १९१८, पृ० १०) तक होता है। यदि विशुद्धता की गारण्टी की जाय तो इस चीज की अधिक मांग हो सकती है। परन्तु क्योंकि इस में मिलावट सुगमता से हो सकती है इस लिए ग्राहक खरीदने से सावधान हो गए हैं। हरड़ की उपयोगिता को प्रतिपादित करने का यदि कोई स्टैंडर्ड तरीका खोज लिया जाय तो छिलके की मांग निस्सन्देह बहुत बढ़ जायगी।

पैदावार

हरड़ों के संग्रह पर नियन्त्रण न होने से इस बात का व्योरा नहीं मिलता कि कुल कितनी हरड़ें पैदा की जा रही

^१ डैनिस मैटीरियल्स ऑफ दि ब्रिटिश एम्पायर, १९२६, पृ. ७०, इम्पीरियल इ स्टिड्यूट, लण्डन।

हैं। और क्योंकि वृक्ष नियमित खेतों या जंगलों में नहीं हैं इस लिए यह कहना भी कठिन है कि प्रति एकड़ पैदावार कितनी है।

बिहार और उड़ीसा में १९२६-२८ में किये गये परीक्षणों से प्राप्त परिणाम कुछ विचार देते हैं कि प्रति वृक्ष पैदावार कितनी है। सौ वृक्षों से तीन साल लगातार फल इकट्ठा किये गये। परीक्षण के तीसरे साल फल लगे ही नहीं थे। बिहार और उड़ीसा के रिमर्च ऑफिसर की रिपोर्ट नीचे की तालिका में दी जाती है—

फलने के हर साल में प्रति वृक्ष		
छाती की ऊंचाई तक घेरा		
	सेरा में	पाण्डो में
११ इञ्च तक	२	४
१ फीट से १ फीट ११ इञ्च तक	४	८
२ फीट से २ फीट ११ इञ्च तक	६	१२
३ फीट से ३ फीट ११ इञ्च तक	७	१४
४ फीट से ४ फीट ११ इञ्च तक	९	१८
५ फीट से ५ फीट ११ इञ्च तक	११	२०

यह मालूम किया गया है कि जब वृक्ष फूला हुआ हो और ओले पड़ जाय तो दूसरे फल-वृक्षों की तरह इस की भी पैदावार कम हो जायगी। ऊपर के परीक्षण में यह देखा गया था कि बीस वृक्षों को ओलों से हानि पहुंची थी अन्यथा

प्रति वृक्ष की पैदावार अधिक होती। हमारी सम्मति में दो मौसमों में १०० वृक्षों के व्योरे के आधार पर सामान्य पैदावार निर्धारित करना ठीक नहीं है। सामान्यतया पैदावार इस से कहीं अधिक होती है।

फल की भारत में खपत

भारत में हरड़ की कितनी खपत है इस का व्योरा नहीं मिलता। यह भी ज्ञात नहीं कि निजू जंगलों या वृक्षों से सीधा चमड़े के कारखानों में कितना परिमाण जाता है। इस की पैदावार और खपत पर कोई नियन्त्रण नहीं है। चर्मालयों में उपयोग के अलावा हरड़ स्याही बनाने और रंग बनाने के काम आती है। युद्ध के दिनों में जब विदेशों से रंग आने बन्द हो जाते हैं तो इन से रंग खूब बनाये जाने लगते हैं।

निर्यात

हाल की संख्याएं बताती हैं कि हरड़ और बहेड़े का वार्षिक निर्यात लगभग बारह लाख इण्डरबेट पहुंच गया था। इन का मूल्य लगभग चालीस लाख रुपये बैठता है। (एम० बी० एडवर्ड्स, १९४५)।

घनसार का निर्यात

भारत में कुछ हद तक उपयोग में आता है परन्तु मुख्यतया दक्षिण अफ्रीका, आस्ट्रेलिया आदि को निर्यात हो जाता

है। १९३३ और १९४० के बीच में वार्षिक निर्यात तीस हजार से सत्तर हजार हण्डरवेट था जिस का मूल्य तीन से छह लाख रुपये तक रहा था। भारत सरकार के न्यूयौर्क स्थित ट्रेड कमिश्नर ने रिपोर्ट (१९४१) दी थी कि एकरूपता और एक स्टैंडर्ड न होने के कारण १९३६ से १९३९ तक संयुक्त राज्य अमेरिका में यह जाना बन्द हो गया था।

मूल्य

निर्यात की जाने वाली हरड़ों की तुलना में कलकत्ता में खुली हरड़ों के दाम कम हैं। हाल के दामों की तालिका अगले पृष्ठ पर दी जाती है। फ़ौरेस्ट युटिलाइजेशन औफिसर, मद्रास और बंगीय व्यापार मण्डल (बंगाल चेम्बर औफ़ कौमर्स) की रिपोर्टों से ये भाव लिये गये हैं—

साल	कलकत्ता में खुशी हरद के दर पौड के प्रति मन का भाव			मद्रास में		मद्रास में
	पूरी हरद	हरद का झिलका	पूरा पौड	५०० पौड	दर पौड के	
१९३७	—	—	—	१४-३२	२.३-५.३	२.३-५.३
१९३८	—	—	—	१२-३०	२.०-४.६	२.०-४.६
१९३९	१/८-२/२	१/२-१/५	२३-२/१२	१२-२७	२.०-४.४	२.०-४.४
१९४०	२/- - २/८	१, ३-१, ८	२१२/३, ८	१४-३०	२.३-४.६	२.३-४.६
१९४१	२/- - ३/-	१/३-११३	२, ३ - ३ -	१६-३२	२.३-५.३	२.३-५.३
१९४२	—	—	—	१३ ^१ / _२ -२६	२.२.४.३	२.२.४.३
१९४३	३/१०-५/८	१/१२-३/१२	५/१०-८/८	३२-४०	५.३-६.६	५.३-६.६
जनवरी से						
मार्च तक	४/४-४/१२	२'१-२'१२	६/- - ६८	५५	६.१	६.१

परिणाम

हरड़ के व्यापार की स्थिति अब तक वैसी ही है जैसी कि १९२२ में 'खालों और टैनिंग सामान के ऊपर खोज करने वाली विशेष कमेटी' बैठी थी । विभिन्न प्रकार की हरड़ों की चर्मकर्म सम्बन्धी उपयोगिता का ठीक ज्ञान न होने से समिति की किसी भी सिफरिश के अनुसार न तो कोई सुधार किया गया है और न ही उन सिफरिशों को अस्वीकार किया गया है । भारत के अत्यन्त महत्वपूर्ण टैनिंग पदार्थ के बारे में अज्ञान को दूर करना आवश्यक है ।

वर्णन

एक मध्यमाकार या बड़ा पतनशील पत्तों वाला (deciduous) वृक्ष है । ऊपर का भाग गोल मुकुट की तरह होता है । शाखाएँ बहुत और प्रत्येक दिशा में फैलती हुई और इन के प्रान्तीय भाग प्रायः नीचे की ओर गिरते हुए तना वृक्ष के आकार से प्रायः कम छोटा और सीधा कम ही होता है । ज़मीन से तीन फीट ऊँचे तने की परिधि दो से तीन फीट होती है । बर्मा में तना प्रायः ऊँचा और सीधा चला जाता है ।

पत्र, कलिकाएँ, छोटी शाखाएँ और नये पत्ते, लम्बे मुलायम चमकीले, सामान्यतया जंगार के रंग के और कभी कभी चांदी के रंग के बालों से ढके हुये होते हैं । पत्ते एक

दूमरे से समान दूरी पर, प्रायःकर अर्द्ध-सन्मुख (sub-opposite), अण्डाकृति या समाकार-व्यस्त-लट्वाकार (oblong-ovate), दीर्घतीक्ष्ण (accuminate), तीन से आठ इञ्च लम्बे, तीन इञ्च चौड़े, तूल रोमश से सर्वथा घने बालों वाले या सर्वथा स्निग्ध आदि सब अवस्थाओं में होते हैं। पत्ते की मुख्य बाह्य नाड़ियाँ स्पष्ट और मध्य पसली के दोनों ओर छः से बारह होती हैं। पत्ते के निचले पृष्ठ पर नाड़ियाँ बहुत स्पष्ट और उभरी हुई होती हैं। पत्रवृन्त पर सिरे के समीप एक या दो ग्रन्थियाँ या उभार होते हैं। पत्ते की १/२ लम्बाई से पत्रवृन्त छोटा होता है।

कुछ स्थानों में नवम्बर से पत्ते गिरने आरम्भ होते हैं और फरवरी-मार्च तक वृक्ष पत्रविहीन हो जाते हैं। फिर नये पत्ते मार्च से मई तक निकलते हैं। ये हल्के हरे या कभी-कभी ताम्रवर्ण होते हैं।

एक प्रकार का कीड़ा बैगवर्ममौथ (bagworm moth, इस का वैज्ञानिक भाषा में नाम है—*Acanthosyche moorei* — एकेन्थोसिशी भूरी) वृक्ष के पत्तों को नुक्सान पहुँचाता है।

छाल एक-चौथाई इञ्च मोटी, गहरी भूरी-धूसर, सामान्यतया बहुत-सी उथली लम्ब अक्ष दरांगों से युक्त और

लकड़ी के बाह्य छिलके के साथ उतरती हुई होती है ।

लकड़ी बहुत कठोर और धूसर वर्ण जिस में हरी या पीली-सी आभा होती है । अन्तः काष्ठ (heart wood) अनियमित, छोटी, गहरी जामनी, सख्त, भारी और अच्छी टिकाऊ होती है । वार्षिक चक्र (annual rings) अस्पष्ट होते हैं । छिद्र छोटे और प्रायःकर अर्द्धावभक्त, एकाकी या समूहों में होते हैं । लकड़ी का भार तिरेपन से छियासठ पौंड प्रति घन फुट होता है । यह बड़े-बड़े की लकड़ी से भारी होती है ।

पौदे की वृद्धि सामान्य होती है । प्रति इञ्च व्यासार्द्ध में छः से दस चक्र होते हैं । प्राकृतिक उत्पत्ति में इस का अधिकतम छाया-तापमान 65° से 115° फार्नहाइट और न्यूनतम 30° से 60° फार्नहाइट होता है । वहां की सामान्य वर्षा ३० से १३० इञ्च होती है ।

हलके सफेद रंग के पुष्पस्तवक नये पत्तों के साथ प्रकट होते हैं । हिमालय की घाटियों में देर में, जून-अगस्त में फूल निकलते हैं । मध्य प्रान्त में सामान्यतया अप्रैल-मई में । फूलने के अतिरिक्त जुलाई-अगस्त तक भी थोड़े-थोड़े फूल निकलते रहते हैं । हरिद्वार में सेप्टेम्बर के अन्तिम सप्ताह में भी कुछ फूल वृक्ष पर देखे जा सकते हैं ।

पुष्पस्तवक दो से चार इञ्च लम्बा, प्रायःकर संयुक्त

विवृतक, और चालू साल के शाखोभेदों के सिरे पर प्रान्तीय और ऊर्ध्वतम पत्तों के अक्षों में होता है। पुष्प उभयलिङ्गी, व्यास $\frac{1}{2}$ इञ्च, अवृतक, वर्ण मैला सा सफेद या पीला, और गन्ध भही सी होती है। फूल प्रायः एक कीड़े से आक्रान्त हो जाते हैं।

बाहर की ओर फैलती हुई शाखाओं के सिरों पर गुच्छों में फल लटकते हैं। फल एकाकी या तीन से दस तक इकट्ठे एक गुच्छे में लटके होते हैं। वृक्ष के अन्दर के भाग में फल कम ही दिखाई देते हैं।

स्थानिक भेद से फल नवम्बर से मार्च तक पकते हैं और पकने के बाद शीघ्र गिर जाते हैं। कई वृक्षों में अक्टूबर में फल के ऊपर रेखाएं स्पष्ट दीखने लगती हैं जब कि दूसरे वृक्षों में इस समय रेखाओं का चिन्ह मात्र भी नहीं होता और फल बिल्कुल चिह्ने पृष्ठ के होते हैं। इससे जो जमीन पर गिर जाते हैं, सूख कर इन में रेखाएँ पड़ने लगती हैं। अब तक इन के ऊपर छिलके का एक पतला आवरण होता है। फल की आकृति और आकार बहुत भिन्न-भिन्न होता है। यह प्रायः पांच लम्ब अक्ष में (longitudinally) रेखाओं वाला, कठोर, एक से दो इञ्च लम्बा, रंग में पीला बादामी या न रंगी-भूरा कभी-कभी लाल या

काली आभा लिए हुए होता है । इसमें सूखा और कठोर गूदा होता है जिसकी मोटाई भिन्न-भिन्न होती है । अन्दर पत्थर जैसी कठोर गुठली होती है, यह सारे भार का तेईस से बावन प्रतिशतक होती है । गुठली ०.६-०.८ इञ्च चौड़ी, ०.५-०.६ इञ्च लम्बी, अण्डाकार, पीतवर्ण, ऊँची-नीची, गड्ढों से युक्त, कठोर और अर्द्ध-कोणायित होती है । हर साल फलों की फसल भिन्न-भिन्न होती है । लगभग पैतीस से पैंतालीस ताजे फलों या साठ से पिचहत्तर सूखी हरडों का भार एक पौंड होता है ।

कीट फल

एक प्रकार का कीड़ा कोमल पत्तों में छेद करके अपने अण्डे दे देता है । पत्ता कट जाने से रस का स्वाभाविक प्रवाह इस कटे हुए स्थान पर अधिक होता है और यह स्थान आकार में बड़ा होकर एक उभार या फल का सा रूप धारण कर लेता है । यह फल क्योंकि एक कीड़े के कार्य द्वारा बना है इस लिए इसे कीट-फल (gall) कहते हैं । प्राचीन संस्कृत लेखक, यद्यपि कीड़ों की इस प्रकार की रचना—अवास्तविक फल—से अवश्य परिचित थे जिसके लिए उदाहरण के तौर पर हम माजूफल, कर्कट-शृङ्गी आदि का नाम ले सकते हैं, तथापि हरड के कीट-फलों (galls) की ओर उनका ध्यान नहीं गया था । प्राचीन संस्कृत-साहित्य में

इनका कहीं उल्लेख नहीं मिलता ।

संस्कृत लेखकों के भेद

छिलके की खल्पता, गूदे की स्थूलता, आकार गोल या लम्बा तथा वर्ण आदि के अनुसार संस्कृत लेखकों ने हरड़ के सात भेद किये हैं । यहां हम उनका नाम, परिचय और उत्पत्ति-स्थान संस्कृत लेखकों के अनुसार लिख रहे हैं ।^१

१ विजया—विन्ध्य पर्वत पर उगने वाली हरड़ को

१ राजनिघण्टु के शब्दों में सात भेदों का वर्णन इस प्रकार है—

नाम—

विजया रोहिणी चैव पूतना चामृताऽभया ।

जीवन्ती चेतकी चेति नाम्ना सप्तविधा भता ॥

परिचय—

अलाबुनाभिर्विजया सुवृत्ता रोहिणी भता ।

खल्पत्वक् पूतना ज्ञेया स्थूलमासाऽमृता स्मृता ॥

पञ्चास्त्रा चाभया ज्ञेया जीवन्ती स्वर्णवर्णभाक् ।

अस्या तु चेतकी विद्यात् इत्यासा रूपलक्षणम् ॥

प्राप्ति स्थान—

विन्ध्याद्रौ विजया हिमाचलभवा स्याच्चेतकी पूतना ।

सिन्धौ स्यादथ रोहिणी तु विजया जाता प्रतिस्थानके ॥

विजया नाम दिया गया है। यह घीये जैसी लम्बी, गोल, ऊपर से पतली और नीचे की ओर क्रमशः मोटी होती गई होती है। सामान्यतया इसका प्रयोग सब जगह होता है। हरड़ की सातों जातियों में से यह प्रधान है, क्योंकि यह सुगमता से मिल जाती है, इसका प्रयोग करना सरल है और यह सब रोगों में दी जा सकती है।

चम्पायाममृताऽभया च जनिता देशे सुराष्ट्राह्वये ।

जीवन्ती च हरीतकी निगदिताः सप्तप्रभेदा बुधैः ॥

उपयोग—

सर्वप्रयोगे विजया च रोहिणी क्षतपु लेपपु च पूतनोदता ।

विरेचनेस्यादमृता गुणाधिका, जीवन्तिका स्यादिह जीर्णरोगाजत् ॥

स्याच्चेतकी सर्वगदापहारिका, नेत्रामयघ्नीभया वदन्ति ।

इत्थ यथायोगमिय प्रयोजिता ज्ञेया गुणाढ्या न कदाचिदन्यथा ॥

चेतकी च धृता हस्ते यावात्तिष्ठति देहिनः ।

तावद्विरेच्यते वेगात् तत्प्रभावान्न संशयः ॥

सप्तानामपि जातीना प्रधाना विजया स्मृता ।

सुखप्रयोगसुलभा सर्वव्याधिषु शस्यते ॥

—रा० नि०, आम्रदि०; २१६-२२६ ।

भावमिश्र ने इन किस्मों का इस प्रकार वर्णन किया है—

नाम—

विजया रोहिणी चैव पूतना चामृताभया ।

जीवन्ती चेतकी चेति पथ्यायाः सप्त जातयः ॥

२ रोहिणी—फूली हुई सी अच्छी गोल हरड़ों के वृक्ष सिन्ध प्रदेश में मिलते हैं। व्रणों पर लेप के रूप में इसका प्रयोग प्रशस्त है।

३ पूतना—पतले छिलके वाली हरड़ें सिन्ध में मिलती हैं। विरेचन के लिए ये अच्छी हैं।

परिचय —

अलाबुवृत्ता विजया वृत्ता सा रोहिणी स्मृता ।

पूतनाऽस्थिमती सूक्ष्मा वयिता मासलाऽमृता ॥

पञ्चरेखाऽभया प्रोक्ता जीवन्ती स्वर्णवर्णिनी ।

त्रिरेखा चेतकी ज्ञेया सप्तानामियमाकृतिः ॥

उपयोग —

।वज्रया सर्वरोगेषु रोहिणी व्रणरोहिणी ।

प्रलेपे पूतना योज्या शोधनार्थेऽमृता हिता ॥

अक्षिरोगेऽभया शस्ता जीवन्ती सर्वरोगहृत् ।

चूर्णार्थं चेतकी शस्ता यथायुक्तं प्रयोजयेत् ॥

चेतकी के दो भेद

चेतकी द्विविधा प्रोक्ता श्वेता कृष्णा च वर्णतः ।

षडङ्गुलायता शुक्ला कृष्णा त्वेकाङ्गुला स्मृता ॥

काचिदास्वादमात्रेण काचिदगन्धेन भेदयेत् ।

काचित्स्पर्शेन दृष्ट्याऽन्या चतुर्धा भेदयेच्छ्रिता ॥

चेतकी के गुण—

चेतकी पादपञ्चक्रायामुपसर्पन्ति ये नराः ।

४ अमृता—चम्पा में उत्पन्न होने वाली मोटे गूदे की हरड़ है । इसमें चिकित्सा सम्बन्धी गुण अपेक्षाकृत अधिक है ।

५ अभया—सुराष्ट्र नामक देश में उत्पन्न होती है । इसके ऊपर पांच रेखायें होती हैं । यह नेत्र रोगों को नष्ट करती है ।

६ जीवन्ती—सोने के रंग वाली यह हरड़ पुराने रोगों में अच्छी है ।

७ चेतकी—हिमालय पर्वत पर होने वाली तीन रेखाओं वाली हरड़ है । सब रोगों को नष्ट करती है । इसका विरेचन प्रभाव इतना तीव्र कहा गया है कि जब तक हाथ में रहेगी तब तक विरेचन होते रहेंगे ।

आयुर्वेद के आदि लेखक महर्षि चरक के समय हरड़ के

भिद्यन्ते तत्क्षणादेव पशुपत्तिमृगादयः ॥
 चेतकी तु भुता हन्ते यावत्तिष्ठति देहिनः ।
 तावद्भिद्यन्ते वेगैस्तु प्रभावाच्चात्र संशयः ॥
 नृपाणां सुकुमाराणां कृशानां भेषजद्विषाम् ।
 चेतकी परमा शस्ता हिता सुव्यविरेचनी ॥
 सप्तानामपि जातीनां प्रधाना विजया स्मृता ।
 सुव्यप्रयोगा सुलभा सर्वरोगेषु शस्यते ॥

—भा० प्र०, हरीतक्यादि०; ८-१८ ।

ये भेद ज्ञात नहीं थे। चरक संहिता में चिकित्सक स्थान के प्रथम अध्याय में रसायन प्रकरण में हरड़ के गुण आदि का विस्तृत उल्लेख है, परन्तु इसके भेदों की ओर जरा भी संकेत नहीं किया गया। यही बात हम सुश्रुत और वाग्भट में देखते हैं। अपेक्षाकृत कुछ पीछे लिखे गये निघण्टु ग्रन्थों में ही हम इन भेदों का वर्णन पाते हैं।

आधुनिक व नैसर्गिक विद्वानों के मन में भारतीयों के ये सात भेद फल की परिपक्वता की विभिन्न अवस्थाएँ ही हैं। हम इस विचार में आंशिक रूप में भले ही सहमत हों, परन्तु हमारी धारणा यह है कि स्थान भेद में फलों की आकृति आदि में जो कुछ फर्क पड़ जाता है उसके अनुसार ही निघण्टुकारों ने इन सात भेदों की सृष्टि की है। चाहे जो विचार ठीक हो, यह सत्य है कि निघण्टुकारों के ये सात भेद वर्तमान समय का अज्ञात है।

विदेशी लेखकों के भेद

एक्चुएरिअस (Actualis) ग्रोक लेखक हरड़ के पांच प्रकारों का वर्णन करता है। मरुज्जन-उल-अद्विया का रचयिता निम्न लिखित किस्मों का जिक्र करता है जो फल की परिपक्वता की विभिन्न अवस्थाओं की ओर संकेत करती हैं—

१. हलिलेह-ए-जीरा— फल जब प्रारम्भ में आते ही

हैं तो उन्हें इकट्ठा करके सुखा लेते हैं । इसका आकार लगभग जीरे के बराबर होता है ।

२. हलिलेह-ए-जवि— कुछ अधिक बड़ा फल, लगभग जौ के आकार का ।

३. हलिलेह-ए-जंगी— यह फल की और अधिक उन्नत अवस्था है । सूखने पर यह आकार में दाल के समान और गूँ में काला होता है । इसके दो नाम और हैं— हलिलेह-ए-हिन्दी और हलिलेह-ए-अस्वेद । जंगी और अस्वेद का अर्थ होता है काला ।

४. हलिलेह-ए-चीनी— फल जब कुछ कठोर हो जाता है और गंग में दरा सा पीला होता है तब इकट्ठा किया जाता है ।

५. हलिलेह-ए-अस्फार— लगभग पका हुआ फल, पर फिर भी इस समय अत्यन्त ग्राही होता है ।

६. हलिलेह-ए-फाबुली— पूर्णपक फल ।

इन छः किस्मों में से दूसरी, तीसरी और छठी किस्म ही चिकित्सा प्रयोजन में ज्यादा काम आती है और चौथी तथा पाँचवीं किस्मों को मुख्यतया चर्मकार इस्तेमाल करते हैं ।

अपने जीवन के विभिन्न कालों में फल में टैनिंग पदार्थ के परिमाण की विभिन्नता के सम्बन्ध में हमने जो टिप्पणी

दी है उसको ध्यान में रखते हुए यह तथ्य बहुत दिलचस्प है और संकेत देता है कि पर्शियन और सम्भवतः अरब भी अपक फल को चर्म-कर्म के लिए एक अच्छी किस्म समझते थे ।

आजकल व्यवहार में अधिक प्रचलित हरड़ नम्बर तीन या जंगी हरड़ मालूम होती है । और कुछ विद्वानों का ख्याल है कि हिन्दुओं के चिकित्साशास्त्र की विजया हरड़ सम्भवतः यही है ।

व्यापार में भेद

व्यापार में माइरोबैलन सामान्यतया हरड़ (टर्मिनेलिया चिबुला) के फलों को कहा जाता है । बड़े-बड़े के फलों (वेलेगिक माइरोबैलेन) में भेद दिखाने के लिए इसे चिबुलिक माइरोबैलन कहते हैं ।

बाजार की हरड़ों के सूक्ष्म निरीक्षण में पता चलता है कि हरड़ों (चिबुलिक माइरोबैलेन) के नाम से जो फल बाजार में बिकने आते हैं उनमें टर्मिनेलिया चिबुला, टर्मिनेलिया पैल्लिडा (*Terminalia pallida* Brandis), टर्मिनेलिया ट्रावन्कोरेन्सिस (*T. travancorensis* W. & A., ट्रावन्कोर की हरड़) और सम्भवतः टर्मिनेलिया सिट्रिना (*T. citrina* Fleming) के भी फल होते हैं ।

इन सब के फलों को हरड़ (माइरोबेलन) कह दिया जाता है ।

भेदों के सम्बन्ध में नई खोजें

ब्रह्मा में हरड़ के वृक्ष को सब से पहले कुर्ज़ ने टर्मिनेलिया टोमेन्टेला (*T. tomentella*) के नाम से वर्णन किया था । कुर्ज़ ने हरड़ (टर्मिनेलिया चिबुला) का प्राप्ति-स्थान चिटागांग तक हो लाया था, परन्तु हूपर और ब्रैण्डिस ने टर्मिनेलिया टोमेन्टेला और टर्मिनेलिया चिबुला को मिला कर एक ही जाति के नाम से प्रतिपादित किया था । तब से ये दोनों इसी तरह चले आ रहे हैं । ब्लैटर Blatter (१६२६) ने ब्रह्मा का हरड़ (टर्मिनेलिया टोमेन्टेला) को टर्मिनेलिया चिबुला का ही एक प्रकार स्वीकार किया है । ब्रह्मा वन सेवा (फौरेस्ट सर्विस) के श्रीयुत एम. बी. एडवर्ड्स के अनुसार 'टैनिंग की उपयोगिता की दृष्टि से ब्रह्मा वाली किस्म या जाति सर्वथा प्रथम है ।'

भारतीय हरड़ों के व्यापार पर दी गई रिपोर्ट के परिणाम स्वरूप वन्य अनुसन्धान शाला (फौरेस्ट रिसर्च इंस्टिट्यूट) और राजकीय संस्था (इम्पीरियल इंस्टिट्यूट) में इसके कुछ प्रकारों पर खोज की गई थी । यह पता चला था कि भारत के विविध भागों से प्राप्त की गई हरड़ों में टैनीन का परिमाण बहुत अधिक भिन्न-भिन्न है ।

और ट्रावन्कोर की हरड़ (टर्मिनेलिया ट्रावन्कोरेन्सिस) के फलों को हरड़ का एक भेद माना जा सकता है, तथा टर्मिनेलिया सिट्रिना के फल सम्भवतः^१ दूसरी जातियों (स्पिसीज़) के फलों से घटिया हैं। टर्मिनेलिया की उन सब जातियों की नये सिरे से खोज करने की आवश्यकता समझी गई जो कटप्पा कमूह (Cattappa section) में रखी जाती हैं, अर्थात् टर्मिनेलिया की वे जातियाँ जिन के फल हरड़ की तरह के होते हैं। वनस्पति विज्ञान के दृष्टिकोण से की जाने वाली इस खोज से यह निश्चय करना था कि कौन-कौन सा हरड़ वस्तुतः भिन्न जातियाँ हैं।^२ खोज का यह काम बहुत बड़ा था और एक रिपोर्ट से पता चलता है कि १९४५ तक

१क १९२४, दि कैरेक्टर्स ऑफ इण्डियन माइरोबैलन्स। बुलेटिन इम्पीरियल इन्स्टिट्यूट २२ पृ० १३३।

ख पिल्ग्रिम, जे० ए०, १९२४, रिपोर्ट ऑन दि टैन वैल्यूज ऑफ इण्डियन माइरोबैलन्स ऐण्ड बर्मा टर्मिनेलियाज़। इण्डियन फॉरेस्ट बुलेटिन न० ५६, पृ० २८। गवर्नमेन्ट सेण्ट्रल प्रेस, देहली।

२क रिपोर्ट ऑन दि ट्रेड इन इण्डियन माइरोबैलन्स, १९२२२। इण्डियन फॉरे० ४८, पृ० ६५८-७५।

ख दि कैरेक्टर्स ऑफ इण्डियन माइरोबैलन्स, १९२४। बुलेटिन इम्पीरियल इन्स्टिट्यूट २२ : पृ० १२३-३४, ४१३-१७।

नो यह नहीं किया जा सका था ।^१ कठिनाई यह है कि सब भेद एक दूसरे के साथ इस प्रकार मिल जाते हैं कि इन में भेदक रेखा खींचना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है । २६ जून १८२५ को वन्य अनुसन्धान शाला के बौटनिस्ट ने लिखा था—'फ्लोरा औफ ब्रिटिश इण्डिया मे क्लार्क ने हरड़ (टर्मिनेलिया चिबुला) के छह प्रकार लिखे हैं । परन्तु, अधिक उदाहरणों में उन्होंने नमूने को बिना देखे ही नाम रख दिये हैं । मैं उन के श्रेणीकरण को अनुसरण करना सम्भव नहीं समझता । टिपिका (typica) भेद को उन्होंने भारत, लङ्का और ब्रह्मा का बताया है, लेकिन मुझे कोई भी भारतीय नमूना ऐसा नहीं मिला जिसे गुलती से ब्रह्मा का कोई भेद सम्झा जा सकता हो । जहां तक मैंने देखा है ब्रह्मा की सब किस्में भारत की किस्मों में भिन्न हैं । भारत की एक जाति दूसरे से मिल सकती है । यहां तक कि साथ की जातियां जैसे टर्मिनेलिया आर्गिरोफिल्ला (T. argyrophylla) और टर्मिनेलिया पैलिडा (T. pallida) टर्मिनेलिया चिबुला की किस्मों के अलावा शायद कुछ और नहीं हैं । जेनरल फ्लोरा औफ कोचीन चाइना में गम्पेन ने टर्मिनेलिया सिट्रिना को कम करते हुए टर्मिनेलिया चिबुला का एक भेद

१ माइगोवेलन । इण्डियन फ्लोरा लीफलेट संख्या ७५ - १९४५, पृ० २ ।

ही बता दिया है, मेरे विचार में इस बारे में वे बिल्कुल ठीक हैं ।'

कृषि

बीज की जनन-शक्ति निबल है । इस का स्पष्ट कारण निश्चित रूप में नहीं जाना जा सका । जिन फलों में ऊपर की रेखाएँ स्पष्ट होती हैं उन में अंकुरोत्पत्ति कम होती है । कई फलों में ऊपर के कठोर गूदे का भाग काले चूर्ण के रूप में बदल जाता है । सम्भवतः फंगस के कारण वे जल्दी उग आते हैं । धूप की अपेक्षा छाया में बोलने में अधिक अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं । बीज अपनी जनन-शक्ति कुछ हद तक एक साल तक कायम रखते हैं ।

छोटे-छोटे जमीन के टुकड़ों में, खाइयों में या दूसरी तरह से कई सालों तक मनों बीज बोये गये; परन्तु सफलता-जनक परिणाम नहीं प्राप्त हुए । बीजों की निबल जनन-शक्ति तथा कीड़ों, गिलहरियों और चूहों से खाये जाने की सम्भावना आदि कारणों से सन्तोषजनक परिणाम नहीं प्राप्त हुए ।

नर्सरी में बीजों से पौदे लगाने का सब से अच्छा तरीका यह समझा गया है कि फलों को पूर्णतया सुखाकर, ऊपर के सख्त गूदे के आवरण को उतारकर वर्षा ऋतु से पहले गुठलियों को बौकसों में बो दिया जाय । तब उन्हें मिट्टी से

ढक कर नियमित पानी दिया जाय। इस तरीके से भी केवल बीस प्रतिशतक सफलता प्राप्त हुई है। गीले खाद में कुछ दिन तक फलों को दबा कर रखने से अंकुरोत्पत्ति में कुछ प्रभाव होता हुआ नहीं दिखाई दिया। बोन के लिए फलों को वृक्ष से गिरने के साथ ही डकटठा कर लेना चाहिये। वृक्ष पर से फल तोड़े नहीं जाने चाहिए।

प्राकृतिक अवस्थाओं में गिरे हुए फलों के कुछ भाग पर बारिश से मिट्टी आ जाती है और ये जमीन में गड़े हुए होते हैं। इन में विद्यमान टैनीन के कारण इन के चारों ओर की जमीन काली हो जाती है। गूदे वाला भाग अंशतः दीमकों से खाया जाता है या भुरभुरा जाता है और सख्त गुठली अनावृत हो जाती है। अंकुरोत्पत्ति वर्षा ऋतु में होती है। कभी इस ऋतु के अन्त तक नहीं होती और कुछ अवस्थाओं में आगामी साल तक भी नहीं होती। खुले फलों की अपेक्षा मिट्टी में ढके हुए फल अधिक उगते हैं।

नवजात पौदों की वृद्धि अपेक्षाकृत मन्द होती है। पहली मौसम के अन्त तक सामान्यतया लगभग चार से आठ इंच तक ऊँचाई प्राप्त कर लेते हैं। दूसरी मौसम की समाप्ति तक एक दो फिट बढ़ जाते हैं। वार्षिक वृद्धि लगभग नवम्बर में रुक जाती है। पत्ते इस मास से गिरना आरम्भ करते हैं और पौदे जनवरी-फरवरी में पत्रविहीन हो जाते हैं। नई

वृद्धि लगभग मार्च में आरम्भ होती है। छोटे पौदे पाले को अच्छा बर्दाश्त करते हैं। नर्मरी से पौदों को वर्षा ऋतु की पहली बारिश में उठाया जा सकता है।

वृत्त की बहुत अधिक मांग नहीं है। जवानी में और बड़ी आयु में भी यह थोड़ी छाया देता है और धूप से रक्षा करने में सहायक होता है। पाले और तेज हवा का इस पर बहुत प्रभाव नहीं होता। आग का यह अच्छा मुकाबला करता है और जल जाने के बाद आरोग्य लाभ करने की इस में अच्छी शक्ति है। इस में से खूब शर्खाएँ निकल आती हैं। पांच साल में इन नवान शाखों की औसत ऊँचाई आठ फुट पहुँच जाता है।

इतिहास

भारतीय चिकित्सा में सुखविरेचक और रसायन औषधि के रूप में हरड़ का प्रयोग बहुत देर से हो रहा है। कहते हैं कि भगवान् बुद्ध ने एक बार कोष्ठबद्धता के लिए बहुत सी दवाओं का प्रयोग किया, पर उन्हें लाभ नहीं हुआ। अन्त में उन्होंने हरड़ की शरण ली। इस से उन्हें सुखविरेचन हुआ और उन की तबियत ठीक हो गई।

जानों के एक घटक के रूप में खमीर उठाने के लिए हरड़ का प्रयोग बुद्ध के समय होता था, यह बात कुम्भजातक के इस कथानक से पता चलती है—जंगलों में घूमने का

शौकीन सुर नाम का एक आदमी काशी राज्य में रहता था। व्यापारिक महत्व के कुछ पदार्थों की खोज में वह हिमालय पहुँचा। वहाँ एक बड़ा पेड़ था। तने की आठ फीट की ऊँचाई पर वह तीन बड़ी शाखाओं में विभक्त होता था। उन तीन शाखाओं के बीच में शराब के घड़े जितना बड़ा एक गढ़ा था। वर्षा पड़ने पर वह पानी से भर गया। उस के चारों ओर हरड़, आंवला और मिर्च अंगे हुए थे। उन के पके फल उस में गिरते रहते थे। उस के पास ही स्वयंजात शालि के कुछ पौदे थे। एक तोता शालि की सीखों को ला कर उन पेड़ों पर बैठ कर जब खाता था तब धान और चावल भी उस में गिर जाते थे। सूर्य की गर्मी से उस पानी में उत्सेचन (फर्मेण्टेशन) होने लगा। पानी का रंग लाल हो गया। गरमियों में तोतों के प्यासे झुण्ड उसे पी कर मस्ती में गिर पड़ते और वृक्ष की जड़ में थोड़ी नाद ले कर टेंटे करते हुये उड़ जाते। ऐसा ही बन्दर आदि के साथ होता। इसे देख कर सुर ने सोचा 'यह पानी यदि विष है तो ये मर जाय, परन्तु ये तो थोड़ी सी नाद ले कर आनन्द से चले जाते हैं, यह विष नहीं।' बनेचर सुर ने उसे स्वयं पीया तो वह भी मस्त हो गया। उस का जी मांस खाने को करने लगा। उस ने आग सुलगाई। वृक्ष के नीचे गिरने वाले तीतर, मुर्ग आदियों को मार कर मांस अंगारों

पर सेक लिया । एक हाथ से मांस खाता हुआ और दूसरे हाथ से नाचता हुआ-सा वह एक-दो दिन वहीं रहा । उस स्थान के पास ही वरुण नाम का एक तपस्वी रहता था । उस ने सोचा, यह पेय मैं तपस्वी के साथ मिल कर क्यों न पिऊं । खोखले बांस के एक वर्तन में उसे भर कर सेका हुआ मांस साथ लिये वह पर्णशाला में पहुँचा । तपस्वी वरुण को उस ने कहा—‘पूज्यवर ! इस पेय को पीजिये ।’ दोनों ने ही मांस खाते हुए उस का पान किया । इस प्रकार सुर और वरुण ने इस पेय की खोज की; इस लिये इस नशीले पेय को सुरा और वारुणी कहने लगे ।^१

पाणिनी के एक सूत्र^२ में और कात्यायन के एक वार्तिक^३ में हरड़ का नाम आया है ।

उत्पत्ति सम्बन्धी गाथाएँ

अधिक उपयोगी वनस्पतियों का महत्व प्रतिपादन करने के लिए उन की उत्पत्ति के सम्बन्ध में संस्कृत साहित्य में कुछ गाथाएँ मिलती हैं जिन में उन क सम्बन्ध देवों के साथ दिखाया जाना है । अथनीलकमल के लेखक ने लिखा है कि जब इन्द्र देवता अमृत पी रहे थे तो भूमि पर उस की एक

१ कुम्भजातक ५१२ ।

२ हरीतक्यादिभ्यश्च । ४. ३ १६७ ।

३ हरातक्यादिषु व्यक्तिः । १ २. ५२ सूत्र पर वार्तिक ।

बूंद पड़ी । उस से ओषधियों में श्रेष्ठ हरड़ उत्पन्न हो गई ।^१
 भावमिश्र ने इन्हीं अमृत बिन्दुओं से सात प्रकार की दिव्य
 गुण वाली हरड़ों की उत्पत्ति का उल्लेख किया है ।^२
 एक दूसरी कथा में बताया गया है कि सुधर्मा की सभा में
 अमृत पान करते हुये विष्णु भगवान् से गिरी सात बूंदों में
 से हर्षदायक सात प्रकार की हरड़ पैदा हुई थी ।^३

युरोपियन चिकित्सा में

युरोपियन चिकित्सा में हरड़ का ज्ञान देर से है परन्तु
 इनका अधिक प्रयोग नहीं होता रहा । इसाई युग के
 प्रारम्भिक भाग में ग्रीक इस को जानते थे । प्रारम्भिक अरब
 लेखकों से सम्भवतः ग्रीकों को हरड़ का ज्ञान हुआ था ।

१ पपात बिन्दुर्मैदिन्या शक्रम्य पिवतोऽमृतम् ।

ओषर्धना ततः श्रेष्ठा प्रादूर्भूता हरीतकी ॥

नवनावनीतकम् ।

२ पपात बिन्दुर्मैदिन्या शक्रम्य पिवतोऽमृतम् ।

ततो दिव्या समुत्पन्ना सप्तजातिर्हरीतकी ॥

भा० प्र०, हरीतक्यादि० ; ५ ।

१ सुधर्माया गतो विष्णुः सुरासुरसमावृतः ।

पपौ सुधा स्वयं तस्मात्पतिता सप्तबिन्दवः ॥

तता हरीतकी जाता सप्तधा लोमहर्षदा ।

एरिस्टोटल (३४० ईस्वी पूर्व), डिओस्कोरिडिडस (६० ईस्वी पश्चात्) और सीनी (७० ईस्वी पश्चात् ने हरड़ों का जिक्र किया है ।

लिंश्चोटन (Linschoten), जो सोलहवीं शताब्दी के अन्त में भारत आया था, पांच प्रकार की हरड़ों का वर्णन करता है । उस से पूर्व हरड़ सम्बन्धी ज्ञान गार्सिया द ओर्ता (Garcia d' Orta) ने दिया है । इसका टीकाकार डाक्टर पैलुडेनस लिखता है कि पांचों प्रकार की सब हरड़े उस समय भारत से आती थीं । ये सूखी हुई आचार या मुग्गवे की शकल में अथवा ग्वाण्ड में सुगन्धित की हुई होती थीं । लिंश्चोटन लिखता है कि हरड़े जितनी बड़ी हों उतनी अच्छी होती हैं । काला रंग लिये हुए और कुछ लाल से रंग की, भारी और पानी में डूब जाने वाली हरड़े कफ को निबालती हैं । बुद्धि को कुशाग्र करती हैं । शहद और ग्वाण्ड में सुगन्धित रखी हुई हरड़े शक्ति-जनक और विरेचक होती हैं । इनके खाने से श्रमथु अच्छी हो जाती है और वृद्धावस्था के लिए इनका प्रयोग हितकर है, इनके सेवन से भूख बढ़ती है और पाचन क्रिया में मदद मिलती है ।

अमिदा के ईटियस के एक नुस्खे का जेडोअरी के नीचे उल्लेख मिलता है । पूर्व में पैदा होने वाले अन्य अनेक

द्रव्यों के साथ इस में हरड़ भी सम्मिलित है ।

पेगोलोट्टी (१३४३) ने अच्छी सुगन्धित हरड़ों की विशेषता बताई है । ये बड़ी और काली होनी चाहिएं । ऊपर का छिलका दांतों को नरम मालूम होना चाहिए । ये जितनी बड़ी तथा काली होंगी और दांतों में नरम लगेगी उतनी ही अच्छी होती हैं । ... कुछ लोग कहते हैं कि भारत में इन्हें कच्ची अवस्था में ही चाशनी में पका लिया जाता है जैसे कि हम कच्चे अखरोटों को करते हैं । इस प्रकार पकाई हरड़ों के अन्दर गुठली नहीं रहने दी जाता । मालूम नहीं वस्तुतः ऐसा किया भी जाता है कि नहीं क्योंकि हमारे पास बिना गुठली वाली हरड़ें नहीं आती और प्रायःकर अत्यन्त कठोर गुठलियों वाली आती है । इन्हें मिट्टा के भूरे चिकने बरतन में चाशनी के अन्दर रखना चाहिए । यह चाशनी कैशिया फिम्बुला (अमचताम नहीं) और शहद या खाड से बनाई जाती थी । ये सदा चाशनी के अन्दर डूबी रहनी चाहिएं, इस से ये सुगन्धित रहती हैं, इन्हें सूखा प्रयोग करना ठीक नहीं ।

पेगोलोट्टी (१३४३) ने इसकी अलगजेण्डरिया में बिक्री लिखी है ।

उपयोगी भाग

फल और गुठली ।

ऋतु में स्वयं पक कर ज़मीन पर गिरी हुई, ताजी, ऊपर

से चिकनी, गोल, भारी और पानी में डूब जाने वाली हरड़ अच्छी समझी जाती है।^१ पानी में डूब जाने का गुण जिममें जितना अधिक होता है वह उतनी ही श्रेष्ठ समझी जाती है।^२ इन गुणों के साथ-साथ हरड़ का भार चार तोला हो तो यह बहुत उत्तम होती है।^३

हरड़ कठोर और दृढ़ होनी चाहिए। इन दृष्टा करके

१क कालयोगास्त्वय पक्वा पानिता तु महीतले ।

नवा म्निग्धा तथा वृत्ता गुर्वी क्षिप्ता तथाऽम्भसि ॥

निमज्जेया तथैकस्मिन् फले चैव द्विकर्पता ।

सर्वदा गुणकृत्सा तु ततोऽन्या तु विवर्जिता ॥

—कै० दे० नि०, श्रो० व०; २१६-२१७ ।

ख क्षिप्ताऽम्भसि निमज्जेया गुणकृत्सा प्रकीर्तिता ।

—धारणादिः ।

२ क्षिप्ताऽप्सु निमज्जति या सा ज्ञेया गुणवती भिषग्वर्यैः ।

यस्या यस्या भ्यो निमज्जनं सा गुणाटया स्यात् ॥

—रा० नि०, आमादि०; २२७ ।

३क नवादिगुणयुक्तत्वं तथैकत्वं द्विकर्पता ।

हरीतक्याः फले यत्र तत्सर्वगुणकृद्भवेत् ॥

—कै० दे० नि०, श्रो० व०, २१८ ।

ख नवा म्निग्धा घना वृत्ता गुर्वी क्षिप्ता च याम्भसि ॥

निमज्जेत सा सुप्रशस्ता कथितातिगुणप्रदा ।

हिलाने से पके मृत्तिका-पात्र के टुकड़ों के समान बजनी चाहिये। हथौड़े से कुचलने पर शुष्क पीला चूर्ण देती है, जिसमें कठोर अनियमित टुकड़े भी होते हैं। पिसी हुई हरड़ का चूर्ण पीला बादामी-सा, शुष्क, स्वाद में ग्राही, परन्तु अत्यधिक कड़वा या नमकीन स्वाद भी नहीं होना चाहिये। गीला करके हाथ में मसला जाय तो आपस में मिलकर एक समूह बन जाता है; भुरभुराना नहीं।

अच्छे फल भारी और भरे हुए होते हैं, काले रंग के धब्बों या उभारों और कीट-छिद्रों से रहित होने चाहिए। अगुलियों के बीच में पीमने से या खरल में रगड़ने से यदि यह मैले रंग के चूर्ण में भुरभुरा जाय तो हरड़ घटिया किस्म की समझनी चाहिए।

कीड़ों से गवाई हुई, आग से जली हुई पानी पर तैरने वाली, ऊसर भूमि में उगी हुई और टूटी फूटी हरड़ को चिकित्सा कर्म में न ले।^१

नवा दग्गुणयुक्तत्वं तथैवात्र द्विकर्षता ।

हरातक्याः फले यत्र द्वयं तच्छ्रेष्ठमच्यते ॥

—भा० प्र०, हरीतक्या०; २६-२७।

१ जन्तुजग्धा दवाद्गधा जलपङ्के स्थिता पुनः ।

ऊषरे वा स्थिता पित्रा वर्जयेत्तु हरीतकीम् ॥

—कै० दे० नि०, श्रौ० व०; २१६।

मात्रा

एक फल का चूर्ण—दो से तीन मासे तक ।

मिलावट

पूरे फल जब मार्केट में आते हैं तो उन में प्रायःकर मिट्टी, रेत, अभ्रक, कुचला सुपागी, असन (*Terminalia tomentosa*) आदि मिले रहते हैं । पिसी हरड़ों में कभी-कभी दिवीदिवी (*Caesalpinia coriaria* = भिमेल्पानिया कौरिपरिया), रही मुसाक (*Rhus cotinus* = रहम कौटिनस) और जंगली कीट फल (*galls*) मिला दिये जाते हैं । इन मिलावटों को देखने के लिये थोड़ा सा चूर्ण एक सफेद कागज पर बिगल बिगेल दे और ताल (लेन्स) से परीक्षा करें । यदि दिवीदिवी मिलाई गई है तो इसके चमकीले भूरे चपटे बीजों के खण्ड अवश्य मिलेंगे । हरड़ का बाहर का छिलका कभी-कभी रस में दिवीदिवी बीज से मिलता-जुलता हो सकता है, परन्तु हरड़ के सूक्ष्मतम अंश का पृष्ठ भुरीदार दिखाई देगा जब कि दिवीदिवी बीज चिकने होंगे ।

नकली हरड़

श्रविक लोग समझते हैं कि हरड़ मामूली चीज है, यह नकली नहीं बनती होगी । पाठकों को ज्ञात न होगा कि हरड़

यदि दो तोले से ऊपर वजन की हो तो यह एक-एक नग कर के बिकती है और नग का मूल्य दो रुपये में लेकर सैंकड़ों तक पड़ जाता है। तीन-तीन, चार-चार तोला भार की हरड़ का एक दाना अस्सी-सौ रुपये में बिकता है। ऐसी भारी मूल्यवान हरड़ों को खरीदने की प्रथा मारवाड़ियों में है। मारवाड़ी बड़े से बड़े मूल्य की हरड़ की तलाश में रहता है और अपने बच्चे को इन्हीं मूल्यवान हरड़ों की घूटी देता है। इसी लिए बम्बई, कलकत्ता और बीकानेर आदि में इन हरड़ों की काफी खपत होती है। जब एक हरड़ तीन तोले से ऊपर हो, चार पांच तोले को हो तो उसके सैंकड़ों रुपये मिल जाते हैं इसी बात को देख कर आरम्भ में जलापा नामक बन्द, जिसे कहीं-कहीं जलापा हरड़ भी कहते हैं, जो भार में चार-पांच तोले का सड़ज में मिल जाता है और जिसकी बनावट रूप रंग भी हरड़ से मिलती है, को अमृतसर के कुछ एक ठग मारवाड़ियों के हाथ हरड़ बता कर बेचते रहे और अच्छे-बुरे में छेड़ते रहे। कोई-कोई ऐसा भी करते थे कि इसी हरड़ में बागीक सुराग बना कर उसके बीच में सीसे के छोटे-छोटे बागीक छुरे भर कर उसे और अधिक वजनी बना लेते थे और इसके अच्छे रुपये प्राप्त कर लेते थे। इन हरड़ों का मूल्य, यदि ये दो तोले भार में हों तो दो, ढाई या तीन रुपये तक प्रति नग होता है। यदि

यह सबा दो तोले की हो जाय तो मूल्य पांच रुपये हो जाता है। ढाई तोले की हो जाय तो छह-मात रुपये तक बिक जाती है। तीन तोले हो जाय तो बीस-पच्चीस रुपये में बिकती है। इस से अधिक भार की बहुत मूल्यवान् हो जाती है। इन्हीं बातों को देख कर हरड़ का भार बढ़ाया गया। यह ठगी तो अमृतसर और देहली के ठगों द्वारा होती थी। बम्बई के ठग इनको भी मात कर गये। उन्होंने बिलकुल कृत्रिम विधि से हरड़ की रचना कर डाली। उनकी हरड़ बनाने की विधि इस प्रकार है—बड़ी हरड़ की आकृति के लोहे के मांचे बनवाये। उनमें हरीतकी सत्व और हरीतकी के बारीक चूर्ण को मिला कर भर दिया और साचों को इतना दबाया कि दब कर यह हरड़ के रूप में आ गया। फिर इन्हें हरड़ के रंग में रंग दिया। इस तरह पांच तोले से लेकर दस-दस तोले तक दगड़े तय्यार की गई और बम्बई के मारवाडियों को खूब लूटा गया।

नकली और असली हरड़ की पहिचान

असली हरड़ की बनावट बहुत साधारण होती है। इसमें हरड़ की नोक की तरफ कोई सूराख का निशान न होना चाहिए। पानी में भिगोने से उस पर से किसी प्रकार का रंग न उतरना चाहिए। रगड़ने पर भुगभुगानी नहीं चाहिए। जिस हरड़ में छेद हों, जिसका रंग पानी में उतरता हो और

जो साधारण चोट से भुरभुरा जाय वह नकली है। जलापा हरड़ और असली हरड़ में यह अन्तर है कि जितनी मोटी और मोधी धारियां असली हरड़ पर होती हैं उतनी मोटी और मोधी धारियां जलापा पर नहीं होती। जलापा के सिकुड़ने से जो धारियां बनती हैं वे पतली होती हैं। असली हरड़ में गुठली निकलती है, जलापा में गुठली नहीं होती। इसकी परीक्षा तोड़ कर की जा सकती है। जलापा चूर्ण को खाने पर कुछ देर में ही वह गले में जाकर लगता है और जलन करता रहता है। हरड़-चूर्ण खाने पर गले में लगता नहीं, न इस से जलन ही होती है।

गसायनिक संघटन

हर फिडोलिन (१८८४) ने फल से एक नया ऐन्ड्रिक अम्ल प्रथक किया जिसे वह चिबुलिनिक अम्ल कहता है। यह सम्भवतः गैलोटेनिक एसिड का स्रोत है।

एम० पी० एपेरी (१८८८) के अनुसार काली हरड़ में एक हरे रंग का तैलीय रेजिन होता है जो एल्कोहल, ईथर, पेट्रोलियम, स्पिरिट और टर्पेन्टाइन के तेल में घुलनशील है। वह इसे माइरोबैलेनीन नाम देता है।

हरड़ में विद्यमान टैनीन्स में लगभग सम्पूर्ण पाइरोगैलोल टैनीन्स होते हैं। गैलोटेनिक एसिड भी होता है। हरड़ के अनेक नमूनों के किये गये विश्लेषण से मालूम

होता है कि एक ही वृक्ष पर से फलों की वृद्धि की विभिन्न अवस्थाओं में लिये गये हरड़ों में गैलोटैनिन एसिड छः से तीस प्रतिशतक तक विभिन्न संघटनों में होता है। बाजार में मिलने वाले फलों में तीस से सात तक विभिन्न प्रतिशतकता में आर्द्रता होती है और ज्वलन पर यचा हुई राख का परिमाण दस प्रतिशतक होता है। टैनिन एसिड मुख्यतया गूदे में होता है। इसमें एक रेचक पदार्थ भी होता है। फलों में एक हरितवर्ण तैलीय रेजिन (oleo-resin) होता है जिसका नाम माइगोवैलेनोन है। कीट-फल (gall) में टैनिन एसिड १३.१ प्रतिशतक होता है। गुठली में टैनिन नहीं होता।

चिचुलिक एसिड—फलों से यह तिम्न-विधि से प्राप्त किया जाता है। सूखे फल चूर्ण किये जाते हैं साधारण तापमान पर नब्बे प्रतिशतक एल्कोहल में दस दिन तक भिगोये जाने के बाद निचोड़ कर द्रव को छारण पत्र (filter paper) में छान लिया जाता है। इस से एल्कोहल पूर्णतया अलग कर ले और अवशेष को तब गरम जल में घोलें। इसमें ठण्डा पानी तब तक मिलाये जब तक दूधिया रंग बंद न हो जाय। इस सब को, बैठने के बाद, छान ले। छारण से प्राप्त द्रव्य में सोडियम हरिद्रू इतना मिलाएं कि स्थिर गदलापन आ जाय और तब घोल को इथाईल

एथिल ऐसिटेट (Ethyl acetate) के साथ मिला कर हिलाए जो चिबुलिक और टैनिक एसिड को दल कर लेता है। टैनिक एसिड को अलग करने के लिये इथाईल ऐसिटेट को पातित (distil) कर ल, अवशेष को पानी में घोल ल और ईथर के साथ हिलाए रखवा करने में जलीय घोल में चिबुलिक एसिड के स्फटिक प्रथक् हो जाते हैं और गरम जल से पुनः स्फटिकीकरण किया जा सकता है। चिबुलिक एसिड २.५ प्रतिशतक निकलता है। गरम करने पर यह लगभग २०० से पिघलने लगता है। ऑप्टिकल्लि एक्टिव (optically active) है

मींगी का तेल

हूपर ने श्री मुन्थनकर तथा जतकर (१९३८) ने मींगी के तेल का अध्ययन किया। उन्होंने माना किया कि 'गुठली' की मींगी से २६.४ प्रतिशतक तेल प्राप्त होता है। मारे फल का तैलीय प्रतिशतक गुठली होती है और शेष मृदु गूदा होता है। गुठली में पांच प्रतिशतक मींगी निकलती है जिस में २६.४ प्रतिशतक तेल होता है। इस हिमाच से गुठली के कुल भार का १.८ प्रतिशत तेल निकलता है और सम्पूर्ण हरड़ के भार को देखा जाय तो ०.६ प्रतिशतक तेल बैठता है। अगले पृष्ठ पर दी गई तालिका में तेल और स्निग्ध अम्लों (fatty acids) के मान दिये गये हैं—

हूपर के मान सुन्धन्कर		और	जतकर	के	मान
		तेल	तेल	मिलित	ठोस
		पीला	पीला	असान्द्र	सान्द्र आभल
रंग		पीला	पीला	पीला	सफेद
आपेक्षिक गुरुत्व $25^\circ / 25^\circ$		—	०.८१३२	—	—
25° श० पर विचलन सूची (रिफ्रेक्टिव इन्डेक्स)		—	१.४७००	—	—
आपेक्षिक घुमाव (स्पेसिफिक रोटेशन) $25^\circ/D$		—	०.१२०४	—	—
ठोस होने का बिन्दु (Soli- difying point)		—	—	२७.७	पिघलाव बिन्दु ४६-५२

अम्लमान	८.६१	३४	—	—	—
नैल (आयोडीन) मान	८७.५	१०५.१	१०६.१	११७.५	१.५
साबुनीकरणमान	१६२.६६	१६०.२	२००.५	२०३.३	२१८.५
हेक्टर मान	६६.२	६६.०	—	—	—
तेल की एसिटाइल वैल्यू	—	५.२५	—	—	—
समर्थक भार (Equivalent weights)	—	—	२७६.८	२७४.५	२५६.३
तेल में द्रव और ठोस अम्लों की प्रतिशतकता	—	—	—	७८.७७	१२.७७
साबुन न बनने वाले पदार्थ	—	१.१५	—	—	—

टैनीन का विश्लेषण

टैनिंग पदार्थ के रूप में हरड़ का पूरे विस्तार से वर्णन चौधरी और नायडू (१९२६) ने किया है । दक्षिण भारत की हरड़ों पर जो इस में पूर्ण विस्तार से प्रकाश मिल जाता है ।

चौधरी और नायडू (१९२५) बताते हैं कि हरड़ के सामान्य व्यापारिक नमूनों में तीसरे चालीस प्रतिशतक टैनीन होता है । परन्तु, कुछ फलों से से २० से २५ प्रतिशतक ही निकलता है और सब से अच्छे नमूनों में चालीस से पचास प्रतिशतक तक । चमड़ा कमाने वालों ने सामान्य औसत तेनीस प्रतिशतक स्वीकार कर ली है । टैनीन का परिमाण ही सदा बहुत महत्व की बात नहीं होती, क्योंकि हरड़ सदा मुख्यतया कमाने के लिए ही इस्तेमाल नहीं की जाती परन्तु खमीर उठाने और कुछ हद तक भार बढ़ाने वाले पदार्थ के रूप में भी प्रयुक्त होती है । जिस प्रकार का चमड़ा बनाया जाता है उस के अनुसार हरड़ का उपयोग भिन्न-भिन्न प्रकार से लिया जाता है ।

वृत्त (टर्मिनेलिया चिबुला) के छिलके में टैनीन बहुत होता है । हूपर ने भारतीय छाल में तेनीस और चौतीस

हूपर, डी०, १९०२, इण्डियन टैनिंग मैटीरियल्स । एग्रिकल्चर लेजर, १९०२, नं० १, पृ० ५६ । सुपरिण्टेण्डेण्ट, गवर्नमेण्ट प्रिण्टिंग, कलकत्ता ।

प्रतिशतक प्राप्त किया है। परन्तु, क्योंकि वृक्ष के फलों की उपयोगिता तुलना में अधिक है और छाल उतारने से वृक्ष नष्ट हो जाता है, इसलिए चमड़ा कमाने के लिए छाल को प्राप्त करना सम्भव नहीं। बर्मा के हरड़ वृक्ष (panga tree, चाहे यह टर्मिनेलिया चिबुला हो या सम्भवतः एक भिन्न जाति निश्चय ही यह पृथक् भेद या किस्म तो है ही), के पत्त, शाखाओं की छाल और तने की छाल सब में टैनीन का काफी परिमाण होता है और क्योंकि इस का फल टैनिंग के लिए बेकार है इसलिए इस को छाल ली जा सकती है। लकड़ी में थोड़ा टैनीन होता है।^१ पिलग्रिम (१६२७) ने ब्रह्मा की हरड़ के सूखे पत्तों में चार से सत्ताईस प्रतिशतक, शाखाओं की छाल में लगभग छव्वीस प्रतिशतक, अन्तस्त्वक में बाईस प्रतिशतक, तने की बाहरी छाल में लगभग बारह प्रतिशतक और लकड़ी में भात प्रतिशतक टैनीन मालूम किया था।

संग्रह करने के स्थान के अनुसार टैनीन में भिन्नता

टैनीन के परिमाण में भिन्नता कई बार तो वृक्ष की जाति या किस्म में भेद होने से आती है और अधिकतर यह देखा गया है कि वृक्ष के उत्पत्ति स्थान में अन्तर पड़ने से टैनीन परिमाण में काफी अन्तर पड़ जाता है।

चौधरी और नायडू ने विभिन्न जिलों की हरडों को उन की टैनीट सम्बन्धी विशेषताओं के कारण श्रेणीकरण किया है। लेकिन इन्होंने एक स्थान के एक ही नमूने के आधार पर ऐसा किया है। एक जिले के जब दूसरे परिणामों को भी इस के साथ मिलाया जाय तो पता चलता है कि चौधरी और नायडू के परिणामों में अन्तर पड़ जाता है। यह सामान्यतया सच है कि सलेम की हरडों में अधिक टैनीन और अच्छा रंग होता है, ब्रह्मा की हरडें बहुत घटिया होती हैं,^२ और दूसरे जिलों की मामूली दर्ज की होती हैं। लेकिन इन तीनों तथ्यों में से प्रत्येक उदाहरणों के अपवाद मिल जायेंगे। इसका स्पष्टीकरण देने के लिए यह स्वीकार करना पड़ता है कि विभिन्न वानस्पतिक जातियों, भेदों या किस्मों में टैनीन सम्बन्धी भेद अवश्य होता है।

१ चौधरी, के० एस० और नायडू इ० वाई० १९२६, साउथ इण्डियन माइक्रोबैलन्स। डिपार्टमेंट ऑफ इण्डस्ट्रिज, मद्रास, बुलेटीन न० २८, पृ० ४०। गवर्नमेंट प्रेस, मद्रास।

२ पूरणसिंह, १९१६, नोट और दि बर्मा माइक्रोबैलन्स अथवा 'पंगा' फ्रूट्स ऐज़ ए टैनिंग मैटीरियल। इण्डियन फौरेस्ट बुलेटीन नं० ३२, पृ० ५। सुपरिन्टेन्डेण्ट गवर्नमेंट प्रिंटिंग, इण्डिया, कलकत्ता।

संग्रह करने के समय के अनुसार टैनिंग पदार्थ में भिन्नता

डाक्टर पौल के विश्लेषण के परिणामों के अनुसार हूपर (१९०२, पृ० ३६) ने लिखा था कि फल पकने से जरा पहिले इकट्ठे करा लेने चाहिये। उस के बाद फ्रेमाउथ और पिल-ग्रिम ने भी इस बात को दुहराया। १८८६ की कोलोनियल प्रदर्शनी में जिन फलों की परीक्षा की गई थी वे अपने विकास की विभिन्न अवस्थाओं के थे^१ और विश्लेषण से जिन में सब से अधिक टैनीन प्राप्त हुआ वह एक अपरिपक्व फल था। वस्तुतः, इसी से, बाद के सब लेखकों ने इस सिद्धान्त को आधार मान कर ही यह प्रतिपादन कर दिया था कि अपरिपक्व फलों में टैनीन की उत्कर्षता होती है। यह सम्भव है कि अधिक अच्छा टैनीन प्राप्त करने के लिए वास्तविक ऋतु कोई और हो। १८६५ के बाद एक बार बम्बई के पूना जिले में उगे हुए एक ही वृक्ष से प्राप्त अध-पके फलों, पके फलों और अधिक पके फलों के तीन नमूनों की इम्पीरियल इंस्टिट्यूट में परीक्षा की गई। इन में क्रमशः ३८.५४, ४४.७६ और ३७.८३ प्रतिशतक टैनीन निकला। अर्थात् पके फलों में टैनीन का परिमाण सब से अधिक

१ १८६०, ए नोट रिगार्डिंग सेंटन इण्डियन टैनिंग मेटरियल्स। इण्डियन फोरेस्ट, १६, पृ० ३१५-२०, ३५६-६४ और ४१५-५०।

था' (इण्डि. फौरे. १६२२) । हूपर^१ की टिप्पणी यह थी कि 'परीक्षणों से तो अपने स्वाभाविक रूप से वृक्ष से गिरे पके फल ही उत्तम सिद्ध होते हैं ।'

१६१५ में पूरणमिह^२ भी इसी परिणाम पर पहुंचे थे । उन के परिणामों के आंकड़ें उक्त विश्लेषण दिखाते हैं कि अक्टूबर में इकट्ठा किये गये फलों की तुलना में जनवरी या मार्च में इकट्ठा किये गये फलों में टैनीन का परिमाण उच्च होता है । परन्तु जो जनवरी में इकट्ठा किये गये थे उन में मार्च वाले फलों की तुलना में टैनीन अधिक नहीं होता । इस लिए यह मानना चाहिये कि टैनीन अधिक प्राप्ति करने के उद्देश्य से हरड़ों को जनवरी और मार्च के बीच में इकट्ठा करना चाहिए । मच से पहिले ही इकट्ठा कर लिया जाय तो अच्छा है । इन परीक्षणों में फलों की परिपक्वता की अवस्था का उल्लेख नहीं किया गया । सामान्यतया यह ठीक

१ हूपर डी०, १६०६, चिबुलिक माइग्रेवलन्स । (टमिनेलिया चिबुला) । एनुअल रिपोर्ट, इण्डियन म्यूजियम, इण्डस्ट्रियल मेक्शन, १६०५-६, पृ० ११-१२ ।

२ पूरणमिह, १६१५, ए फर्दर नोट ओन दि बेस्ट सीज़न फौर कलेक्टिंग माइरोबैलन्स ऐज टैनिंग मैटीरियल । इण्डियन फौरेस्ट; ४१, पृ० १७-२१ ।

है कि औसत फल जनवरी में पकते हैं। लेकिन पूरणसिंह स्वयं कहते हैं कि भिन्न-भिन्न स्थानों में पकने का समय अलग-अलग है।

आकृति

फल की आकृति का महत्व भी बहुधा बतलाया जाता रहा है। डण्ड. फौरे. (१८६०, पृ० ३६२), वाट (१८६६, पृ० ७ और ६), हूपर (१६०२, पृ० ३६) आदि के विचार में गोल की अपेक्षा अण्डाकार और नोकीली हरड़ें बढ़िय होती हैं। लम्बोत्तरी, नोकीली, ठोस और पोली-हरी हरड़ों के नमूने परीक्षा में गोल, स्पष्टी हरड़ों के नमूनों की अपेक्षा इतने अधिक बढ़िया समझे जाते हैं कि उन्हें एक भिन्न जाति के वृक्ष की उपज मानने की भूल हो सकती है। व्यापार में फलों की जांच का एक सामान्य तरीका यह होता है कि फल भुर्गिदार हैं या चपटे पृष्ठ के। यह परीक्षा ठीक नहीं मालूम होती। टर्नर^१ के अनुसार गोल, और फूली हुई हरड़ें फंगआई से सम्भवतः अधिक जल्दी आक्रान्त हो सकती हैं। इस के अतिरिक्त इन्हें पसन्द न करने का कोई और

१ टर्नर, जे० इ० सी०, १६०७, नोट थ्रोन दि टर्मिनेलिया चिबुला ऐण्ड इट्स फ्रूट, दि माइराबैलन औफ कॉमर्स। इण्डियन फौरेस्ट. ३३, पृ० ३६२-६५।

कारण ज्ञात नहीं। १८८६ के सम्मेलन में वाट ने यह सम्मति प्रकट की थी कि अण्डाकार या नोकीली किस्में छोटे अपरिपक्व फल होते हैं। बाद के लेखकों ने इसे बार-बार उद्धृत किया है परन्तु इस पर किसी ने पूरी तरह विवेचना नहीं की और सम्भवतः यह तथ्य ठीक भी नहीं है। गोल आकृति दक्षिण भारत में सामान्यरूप से मिल जाती है और मालूम होता है कि यह एक पृथक् जाति या किस्म के वृक्ष से प्राप्त किये गये फल होते हैं।

तथापि, आजकल चमड़ा कमाने वालों में यह परम्परा स्थापित हो चुकी है कि नोकीले और अण्डाकृति फल सब से अच्छे होते हैं। इस विश्वास का कारण यही प्रतीत होता है कि पहले यह समझा जाता रहा है कि इस प्रकार के फल अपरिपक्व अवस्था के हैं और इस लिए उन में टैनीन का परिमाण अधिक होगा। आकृति का टैनीन के परिमाण के साथ क्या सम्बन्ध है इस बात पर अभी और खोज करने की आवश्यकता है।

रंग

पार्कर और ब्लौकी (१९०३)^१, हूपर (१९०२) और

१ पार्कर, जे० जी० और ब्लौकी, एफ० ए०, १९०३, दि रेलेटिव्ह टैनिग वैल्यू औफ डिफरेंट स्पेसिज ऐण्ड प्रोक्स औफ माइरोवैलन्स। जर्नल औफ केमिकल सोसाइटी, इण्डिया, २२, पृ० १८१-८४, १३३८-३९।

फ्रेमाउथ तथा पिल्ग्रिम (१६१८, पृ० २१)^१ ने बताया है कि फल का रंग उसकी टैनिंग उपयोगिता का परिचायक नहीं है। इसके बावजूद भी जब एक चर्मकार हरड़ खरीदना चाहता है तो रंग की ओर भी बहुत अधिक ध्यान देता है। रंग के आधार पर भी हरड़ों के ग्रेड बनाये जाते हैं। पार्कर और ब्लौकी ने देखा कि इन चुने हुए सब ग्रेडों में टैनीन कम परिमाण में निकलता है। इन अन्वेषकों ने बताया कि 'रंग किसी भी तरह टैनिंग शक्ति को सूचित नहीं करता।' हलके रंग के हरे फलों को व्यापारी सब से अच्छी हरड़ें समझ कर चुनता है। लेकिन असलियत यह है कि ये फल कच्चे ही तोड़ लिये गये थे और मौसम के अन्त में इकट्ठा किये गये फलों की तुलना में इन में टैनीन कम होता है। चर्मकारों की यह धारणा है कि हलके रंग के फलों से कमाया हुआ चमड़ा भी हलके रंग का बनता है, और गूढ़े रंग के फलों से कमाया हुआ गहरे रंग का बनता है।

इकट्ठे किये जाने पर कुछ फलों का रंग काला क्यों हो जाता है और कुछ फल हलके रंग के क्यों रह जाते हैं इस

१ फ्रेमाउथ, डब्ल्यू० ए० और पिल्ग्रिम, जे० ए०, १६१८, इण्डियन टैन-स्टफ्स ऐन्ड देअर टैनेज। बुलेटिन नं० १; एसोसिएट टैनिंग रिसर्च फैक्ट्री, पृ० ७८। सुपरिण्टेण्डेण्ट गवर्नमेंट प्रिंटिंग, इण्डिया, कलकत्ता।

का कारण ज्ञात नहीं है। टर्नर (१६०७) ने देखा था कि काले फल जिनका गूदा भुरभुरा जाता है वे स्याही बनाने के काम आते हैं। ये रंगने या चर्मकर्म के लिए उपयुक्त नहीं होते। इनके रंग में परिवर्तन एक फंगस के द्वारा होता है। इस कारण के अतिरिक्त कुछ अन्य कारण भी हो सकते हैं। सम्भव है कि ज़मीन पर देर तक पड़े रहे फलों पर भूमि के लोहे का प्रभाव हो जाता हो, या पकने से पहले ज़मीन पर गिर गये फलों में खमीर (एन्ज़ाईम्स) ओक्सिडेशन पैदा कर देते हों, अथवा अधिक पके फल दूसरों के मुकाबले में अधिक सुगमता से सड़ जाते हों।

रचना

यह देर से (वाट, १८६६) ज्ञात है कि चर्मकार स्पञ्जी हरड़ों पर आपत्ति करते हैं और पिल्ग्रिम (१६२४) ने बताया था कि स्पञ्जी फल अच्छे साबित नहीं होते। टैनिंग उपयोगिता में ठोस हरड़ों के समान भार की स्पञ्जी हरड़ें किसी तरह घटिया हैं यह अब तक निर्णीत नहीं किया जा सका।

गुठली और गूदे में टैनीन का अनुपात

यह सम्यक्तया ज्ञात है कि गूदे के मुकाबले में गुठली के अन्दर टैनीन कम होता है। पिल्ग्रिम (१६२४, पृ० १३-१६) ने विश्लेषण में दिखाया है कि गुठली में ४.५ से

१०.३ प्रतिशतक (चार नमूनों का औसत ७.१ प्रतिशतक टैनीन) तक टनीन होता है । टर्मिनेलिया पैलिडा के एक नमूने की गुठली में १३.४ प्रतिशतक टैनीन निकला । पूरण सिंह (१६११) ने नौ नमूनों में, पिल्ग्रिम (१६२४, पृ० ११-१६) ने १३ नमूनों में और चौधरी तथा नायडू (१६२६, पृ० २६) ने १३ नमूनों में गूदे और गुठली का अनुपात बताया है । चौधरी और नायडू (१६२४, पृ० ३०) कहते हैं कि गूदे तथा गुठली में और इन में विद्यमान टैनीन के अनुपात में कोई निश्चित और नियमित सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता । उपलब्ध व्योरे की छानबीन करने के बाद श्रीयुत एडवर्ड्स (१६४५) इस बात को ठीक नहीं समझते । ऊपर निर्दिष्ट पैंतीस नमूनों में से केवल तीन खराब नमूनों में अनुपात १.६७ था ।

सम्पूर्ण फल में टैनीन परिमाण की भिन्नता का कारण यही है कि गुठली अपेक्षाकृत बड़ी हो जाती है । फल के आकार के अनुसार जब गुठली छोटी होती है तो टैनीन का परिमाण अधिक होता है और जब गुठली अनुपात में गूदे से बड़ी होती है तो टैनीन कम हो जाता है । इस लिए न केवल इसी कारण छोटी गुठली वाली हरड़ लेना वाञ्छनीय होता है कि गुठली वाला निकम्मा भाग उसमें कम होगा परन्तु इसलिए भी उसे लेना वाञ्छनीय है कि उसके गूदे में टैनीन का परिमाण अधिक होगा ।

यह स्वीकार कर लेना कि गुठली में टैनीन बिलकुल नहीं होता, पूर्णतया सत्य नहीं है । इस परिणाम को गलत सिद्ध करने के लिए या सम्पुष्ट करने के लिए गूदे को गुठली से अलग विश्लेषण करके और अधिक परीक्षण करने की आवश्यकता है ।

गुण^१

हरड़ हलकी, गरम और रूक्ष है । संतर्पण में पैदा होने वाले रोगों को नष्ट करती है । कषायरस प्रधान होने पर

१क हरीतकीं पञ्चरसामुष्णामलवणा शिवाम् ।
 दोषानुलोमिनीं लघ्वीं विद्याद्दीपनपाचनीम् ॥
 आयुध्यां पौष्टिकीं धन्या वयसः स्थापनीं पराम् ।
 सर्वरोगप्रशमनीं बुद्धीन्द्रियबलप्रदाम् ॥
 कुष्ठं गुरुममुदावर्तं शोषं पाण्ड्वामयं मदम् ।
 अर्शांसि ग्रहणीदोषं पुराणं विषमज्वरम् ॥
 हृद्रोगं सशिरोगमतीसारमरोचकम् ।
 कासं प्रमेहमानाहं प्लीहानमुदरं नवम् ॥
 कफप्रसेकं वैस्वर्यं वैवर्ण्यं कामला कृमीन् ।
 श्वयथुं तमकं छर्दि क्लैव्यमङ्गावसादनम् ॥
 स्रोतोविबन्धान्धिविधान् प्रलेपं हृदयोरसोः ।
 स्मृतिबुद्धिप्रमोहं च जयेच्छीघ्रं हरीतकी ॥

भी विपाक में मधुर है। आयुर्वेदिक लेखकों ने हरड़ के गुण बताते हुए निम्न-लिखित रोगों में इसकी उपयोगिता बताई है।

महास्रोतस्

यह दीपक, पाचक, उलटियों को बन्द करने वाली, तृषा-शामक, अरुचिनाशक, पेट के रोगों में हितकर, वायु का

ख व्रण्यसुष्णं सरं मेध्यं दोषघ्नं शोथकुष्ठनुत् ।
कषायं दीपनं चाम्लं चक्षुष्यं चाभयाफलम् ॥

-सु०, सू०, अ० ४६ ।

ग कषाया मधुरा पाके रुक्षा विलवणा लघुः ॥
दीपनी पाचनी मेध्या वयसः स्थापनी परम् ।
उष्णवीर्या सराऽऽयुष्या बुद्धीन्द्रियबलप्रदा ॥
कुष्ठवैवर्यवैस्वर्यपुराणविषमज्वरान् ।
शिरोऽक्षिपाण्डुहृद्रोगकामलाग्रदृणीगदान् ॥
सशोषशोफातीसारमेदमोहवमिक्रिमीन् ।
श्रासकासप्रसेकाशःप्लीहानाहगदोदरम् ॥
विबन्धं स्रोतसां गुल्ममुरुस्तम्भमरोचकम् ।
हरीतकी जयेद्व्याधीस्तांस्तान्श्च कफवातजान् ॥

-अ० ह०, सू०, अ० ६; १५३-१५७ ।

घ पथ्या पञ्चरसाऽऽयुष्या चक्षुष्याऽलवणा सरा ।
मेध्योष्णा दीपनी दोषशोथकुष्ठज्वरापहा ॥

-द्रव्यगुण संग्रह, फल वर्ग; ३७-३८ ।

अनुलोमन करने वाली, अफारा, शूल तथा हिचकी दूर करने वाली, अनुलोमक, स्रोतों की रुकावट को हटा कर कब्ज दूर करने वाली, दोषों का अनुलोमन करने वाली, दस्तों को ठीक करने वाली और ग्रहणी (स्त्रू) नाशक है । पेट सम्बन्धी नये रोगों में विशेष लाभ करती है । वायु गोला (गुल्म), बड़ी हुई तिल्ली, जिगर के रोग, कामला (जौण्डिस), पाण्डु (अनी-

ड हरीतकी पञ्चरस च रेचनी कोष्ठामयघ्नी लवणेन वजिता ।
रसायनी नेत्ररूपापहारिणी त्वगामयघ्नी किल योगवाहिनी ॥
-रा० नि०, आम्नादि०; २१६ ।

च प्रपथ्या लेखनी लघ्वी मेथ्या चक्षुर्हिता सदा ।
मेहकुष्ठवणच्छर्दिशोफवातासकृच्छ्रजित् ॥
वातानुलोमिनी हृद्या सेन्द्रियाणां प्रसादनी ।
संतर्पणकृतान् रोगान् प्रायो हन्ति हरीतकी ॥
-ध० नि०, गुड्व्यादि० ।

छ रुक्षोष्णा दीपनी मेथ्या स्वादुपाका रसायनी ॥
चक्षुष्या लघुरायुष्या बृंहणी चानुलोमिनी ।
श्वासकासप्रमेहार्शःकुष्ठशोथोदरक्रिमीन् ॥
वैस्वर्यग्रहणीरोगविबन्धविषमज्वरान् ।
गुल्माध्मानतृषाच्छर्दिहिकाण्डहृदामयान् ॥
कामला शूलमानाहं प्लीहानञ्च यकृत्तथा ।
अशमरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च मूत्राघातञ्च नाशयेत् ॥
-भा० प्र०, हरीतक्यादि०; १६-२२ ।

भिया) और बवासीर में गुणकारी है ।

श्वास संस्थान

कफ के रोगों को नष्ट करती है । आवाज की खराबी, कफ प्रकोप के कारण मुख, आंख तथा नाक से पानी बहना (जुकाम), छाती तथा फेफड़ों में कफ भर जाना, खांसी और दमे में लाभ पहुंचाती है । जमे हुए कफ को उखाड़ कर निकाल देती है ।

मूत्र तथा प्रजनन संस्थान

पथरी, पेशाब रुक-रुक कर थोड़ी मात्रा में आना, पेशाब बन्द हो जाना, प्रमेह, नपुंसकता आदि मूत्र तथा प्रजनन सम्बन्धी रोगों में लाभकारी है । वीर्य को पुष्ट करती है ।

ज स्वादुपाकरसायुष्या रुद्धोष्णा बृंहणी लघुः ॥
 दीपनी पाचनी मेध्या वयसःस्थापनी परम् ।
 रसायनी च चक्षुष्या बलबुद्धिस्मृतिप्रदा ॥
 कुष्ठवैवर्ण्यैस्वर्यपुराणविषमज्वरान् ।
 शिरोऽक्षिपाण्डुहृद्रोगकामलाग्रहणी गदान् ॥
 सशोषशोफातिसारमेहमोहवमिकृमीन् ।
 श्वासकासप्रसेकशःप्लीहानाहगदोदरान् ॥
 विबग्धं स्रोतसां गुल्मबृक्स्तम्भमरोचकम् ।
 हिध्माध्मानवणान् शूलं त्रीन् दोषांश्च व्यपोहति ॥

—कै० दे० नि०, ओ० व०, २०८-२१२ ।

त्वक् संस्थान

त्वचा की विवर्णता और कुष्ठ, खुजली आदि त्वग्रोगों को शान्त करती है। जख्मों को ठीक करती है। सूजन उतारती है। यह कृमिनाशक है।

वात संस्थान

टांगों का लकवा (ऊरु स्तम्भ), अंगों की ऐंठन (उदावर्त) आदि वायु के रोगों को दूर करती है।

ज्वर, शोथ

हृदय के रोगों में, पुराने मलेरिया बुखारों में तथा अन्य ज्वरों में, अंगों में पानी भर जाने (शोथ, ड्रॉप्सी) में और शरीर के सूखने की अवस्थाओं में इसका प्रयोग गुण दिखाता है।

मस्तिष्क

मेधा और बुद्धि को बढ़ाने वाली यह ओषधि स्मृतिशक्ति को तीव्र करती है। बुद्धि पर पड़े आवरण को हटा कर ठीक ज्ञान कराती है। मूर्च्छा हटाती है।

आंखों के लिए हितकर और सिर के रोगों में लाभदायक है।

रसायन

जिस किसी भी दवा के साथ प्रयोग की जाय यह उसके गुणों को बढ़ा देती है। यह रसायन ओषधि अंगों को शिथिल

होने से रोकती है । मोटापे को छांटती है । विभिन्न कारणों से रसवाही स्रोतों (एण्डोक्राइन ग्लैंड्स) से रस आदि के न बहने को दूर करती है । सब रोगों को शान्त करने वाली, इन्द्रियों को बल देने वाली, पुष्टिदायक, आयु को बढ़ाने वाली कल्याणकारी हरड़ में आयु को स्थिर करने का परम गुण है ।

हरड़ की गिरी के गुण

गुठली के अन्दर की नरम गिरी वायु तथा पित्त को हरने वाली, भारी आंखों के लिए हितकर है ।^१

स्थान भेद से गुणों में अन्तर

वृक्ष के उत्पत्ति स्थान की दृष्टि से कैयदेव ने निम्न-लिखित तीन प्रकार की हरड़ें बताई हैं— १. पानी वाले स्थानों पर उगने वाली, २. मैदानी जंगलों में उगने वाली, और ३. पहाड़ों पर उगने वाली । इन में सब से बढ़िया पहाड़ी, फिर जंगली और उस से उतर कर जलीय स्थान वाली

१क पथ्या मजा तु चक्षुष्यो वातपित्तहरो गुरुः ।

—द्र० गु० सं०, फल०; ४१ ।

ख पथ्या मजा च चक्षुष्यो वातपित्तहरो गुरुः ।

—कै० दे० नि०, श्रो० व०; २१२ ।

ग हरीतक्याः स्मृतं बीजं चक्षुष्यं गुरुवातनुत् ।

पित्तनाशकरञ्चैव मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥

गुणकारी होती है ।

हरड़ में पांच रस

संस्कृत लेखकों ने हरड़ में निम्नलिखित पांच रस माने हैं—कषाय, अम्ल, कटु, तिक्त और मधुर । छह रसों में लवण रस इस में नहीं होता । कषाय रस सब से अधिक होता है ।^३

१ नीरजा वनजा चैव पार्वतीय इति त्रिधा ।
यथोत्तरं पथ्यतमा विज्ञेया त्रिविधाभया ॥
—कै० दे० नि०, ओ० व०; २१५ ।

२क हरीतकी पञ्चरसाम्... अलवणा... ।
—च०, चि०, अ० १; २७ ।

ख कषायाम्ला च कटुका तिक्ता मधुररसान्विता ।
इति पञ्चरसा पथ्या लवणेन विवर्जिता ॥
—ध० नि०, गुड्ड्यादि० ।

ग पथ्या पञ्चरसा... ... अलवणा .. ॥
—द्र० गु० सं०, फल० ; ३७-३८ ।

घ हरीतकी पञ्चरसा ... लवणेन वर्जिता ॥
—रा० नि०, आम्नादि०; २१६ ।

३क जया विलवणा पञ्चरसा तु तुवरोत्कटा ।
—कै० दे० नि०, ओ० व० ; २०८ ।

ख हरीतकी पञ्चरसाऽलवणा तुवरा परम् ।
—भा० प्र०, हरीतक्यादि० ; १६ ।

मध्यकालीन संस्कृत लेखकों ने पांचों रसों की फल में अलग-अलग स्थान पर स्थिति दिखाई है। इस के अनुसार फल के जो पांच स्थान या विभाग बनते हैं उन में कौन-कौन सा रस रहता है, इस के सम्बन्ध में विभिन्न लेखकों की सम्मति नीचे दी गई है।^१

फल के पांच विभाग और उन में रस की स्थिति—

नरहरि	भावमिश्र	कैयदेव
१ अस्थि में तिक्त	१ अस्थि में कषाय	१ अस्थि में तिक्त
२ मज्जा में मधुर	२ मज्जा में मधुर	२ मज्जा में मधुर
३ त्वचा में कटु	३ त्वचा में कटु	३ त्वचा में कषाय
४ मांस में अम्ल		४ मांस में अम्ल
५ स्नायु में कषाय	४ स्नायु में अम्ल	५ स्नायु में कटु
	५ वृन्त में तिक्त	

१क बीजास्थितिकामधुरा तदन्तस्त्वग्भागतः सा कटुरूपवीर्या ।

मांसाशतश्राम्लकषाययुक्ता हरीतकी पञ्चरसा स्मृतेयम् ॥

—रा० नि० , आम्नादि० ; २१७ ।

ख पथ्याया मज्जनि स्वादुः स्नायावम्लो व्यवस्थितः ।

वृन्ते तिक्तस्त्वचि कटुरस्थि तु तुवरो रसः ॥

—भा० प्र० हरीतक्यादि० ; २७ ।

ग मज्जस्त्वक्स्नायुमांसास्थिस्थिताः पञ्चाभयोद्भवाः ।

स्वादुकषायकट्वम्लतिक्ताख्याः क्रमशो रसाः ॥

—कै० दे० नि० , ओ० व० ; २१४ ।

त्रिदोषहर होने में रस का कारण

किस दोष को किस रस के कारण हरइ दूर करती है, इस के बारे में चिकित्सकों की सम्मतियां एक नहीं हैं। धन्वन्तरि^१ के मत में वात को अम्ल से, पित्त को मधुर तथा तिक्त से और कफ को रुक्ष तथा कषाय रस से जीतती है। कैयदेव समझते हैं कि वात को मधुर तथा अम्ल से, पित्त को मधुर तथा कषाय से और कफ को कटु तथा तिक्त रस से नष्ट करती है।^२ भावमिश्र^३ ने वात को नष्ट करने में हेतु धन्वन्तरि की तरह अम्ल रस को माना है।

१ अम्लभावाज्जयेद्वातं पित्तं मधुरतिक्तकात् ।

कफं रुक्षकषायत्वात् त्रिदोषघ्नी ततोऽभया ॥

—ध० नि० , गुड्व्यादि० ।

२ स्वाद्वम्लभावात्पवनं कटुतिक्ततया कफम् ।

कषायमधुरत्वाच्च पित्तं हन्ति हरीतकी ॥

—कै० दे० नि० , ओ० व० ; २१३ ।

अष्टाङ्ग हृदय की व्याख्या में खारनाद, अरुणदत्त और हेमाद्रि ने भी इसे उद्धृत किया है।

३ स्वादुतिक्तकषायत्वात्पित्तहृत्कफहृत् सा ।

कटुतिक्तकषायत्वादम्लत्वाद्वातहृच्छ्लेष्वा ॥

—भा० प्र० , हरीतक्यादि० ; २३ ।

भावमिश्र बताते हैं कि हरड़ पित्त को मधु, तिक्त तथा कषाय रस के कारण और कफ को कटु, तिक्त तथा कषाय रस के कारण हरती है ।

विशेष प्रभाव

यहां शङ्का उठती है कि हरड़ में विद्यमान कटु और अम्ल रस पित्त और वात को क्यों नहीं पैदा करते ? क्यों-कि रसों के गुणों में बताया जाता है कि ये रस इन दोषों को पैदा करते हैं । इस का उत्तर भावमिश्र देते हैं कि हरड़ में तीनों दोषों को दूर करने की जो क्षमता है वह इस के प्रभाव के ही कारण है । रसों का निर्देश करते हुए दोषों को नष्ट करने की जो बात लिखी गई है वह विद्यार्थियों को समझाने के लिये कही है । समान गुणों से युक्त होते हुए भी आश्रय भेद से द्रव्यों के कर्म में भिन्नता देखी जाती है । अम्ल और कटु रस पित्त और वात के जनक होने पर भी आश्रय विशेष में विशेष प्रभाव करने वाले होते हैं । जैसे कि आंवला तथा बडहर । ये दोनों यद्यपि रस आदि में तुल्य हैं किन्तु इन के गुण भिन्न हैं ।^१

१ पित्तकृत्कटुकाम्लत्वाद्वातकृन्न कथं शिवा ॥

प्रभावाद्दोषहन्तृत्वं सिद्धं यत्तत्प्रकाशयते ।

हेतुभिः शिष्यबोधार्थं नापूर्वं क्रियतेऽधुना ॥

-भा० प्र० , हरीतक्यादि० ; २४-२५ ।

प्रयोग विधि के भेद से गुणों में अन्तर

हरड़ चबा कर खाई जाय तो जठराग्नि की वृद्धि करती है । शिला पर पीस कर खाने से मल का शोधन करती है । गरम वाष्पों में पका कर खाने से मल को रोकती है । भून कर खाई जाय तो वात, पित्त, कफ तीनों दोषों को नष्ट करती है ।^१

भोजन के साथ सेवन करने से बुद्धि, बल तथा इन्द्रियों को विकसित करती है, पित्त, कफ तथा वायु को नष्ट करती है, और मूत्र, शौच तथा शरीर के दूसरे मलों का निर्हरण करती है । यही हरड़ भोजन कर चुकने पर खाई जाय तो खान-पान सम्बन्धी दोषों को और वात, पित्त तथा कफ से उत्पन्न होने वाले विकारों को शीघ्र हरती है ।^२

१ चर्विता वद्धयत्यग्निं पेक्षता मलशोधिनी ।

स्विन्ना संग्राहिणी पथ्या भृष्टा प्रोक्ता त्रिदोषनुत् ॥

—भा०, प्र०, हरीतक्यादि० ; ३० ।

२ उन्मीलिनी बुद्धिबलेन्द्रियाणां निमूर्लिनो पित्तकफानिलानाम् ।

विस्त्रांसिनी मृशशकुन्मलानां हरीतकी स्यात् सह भोजनेन ॥

अन्नपानकृतान्दोषान्वातपित्तकफोद्भवान् ।

हरीतकी हरत्याशु भुक्तस्योपरि योजिता ॥

—भा० प्र०, हरीतक्यादि० ; ३१-३२ ।

सेन्धा नमक के साथ खाने से कफ, चीनी के साथ खाने से पित्त, घी के साथ खाने से वात सम्बन्धी रोग और गुड़ के साथ खाने से समस्त व्याधियों को दूर करती है ।'

योग

अभया वटी^२—हरड़, काली मिर्च पिप्पली और सुहागा

१ लवणेन कफं हन्ति पित्तं हन्ति सशर्करा ।

घृतेन वातजान् रोगान् सर्वरोगान्गुडान्विता ॥

—भा० प्र०, हरीतक्यादि० ; ३३ ।

२क अभया मरिचं कृष्णा टङ्कणश्च समांशिकम् ।

सर्वचूर्णसमं भागं दद्यात्कानकजं फलम् ॥

स्तूहीक्षीरेण संकुर्याद् गुञ्जपादमितां वटीम् ।

वटीद्वयं शिवामेकां पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा ॥

उष्णाद्विरेचयेदेषा शीते स्वास्थ्यमुपैति च ।

जीर्णज्वरं प्लीहरोगं हन्त्यष्टाबुदराणि च ॥

वातोदरे प्रशस्तोऽयं सर्वाजीर्णं व्यपोहति ।

कामलां पाण्डुरोगञ्च तथैव कुम्भकामलाम् ॥

—भै० र०, उदररोगाधि० ; ७७-८१ ।

ख अभया मरिचं कृष्णा टङ्कणश्च समांशिकम् ।

सर्वचूर्णसमञ्चैव दद्यात्कानकजं फलम् ॥

स्तूहीक्षीरैर्वटी कार्या यथा स्विन्नकलायवत् ।

वटीद्वयं शिवामेकां पिष्ट्वा चोष्णाम्बुना पिबेत् ॥

प्रत्येक समान भाग ले कर सब के बगबर शुद्ध जयपाल मिलाएं । सेहुंड के दूध से मर्दन कर चौथाई रत्ती की गोलियां बनायें ।

मात्रा—दो गोली । एक हरड़ को तण्डुलोदक में या गरम पानी में पीस कर उस के साथ दो गोली खांय । रोगी जब तक गरम पानी पियेगा तब तक विरेचन होगा । शीतल जल पीने से पुनः विरेचन न होगा ।

रोग—जीर्ण ज्वर, रक्तपित्त, प्लीहा रोग, अम्लपित्त उदर रोग, विशेषतः वातोदर, अजीर्ण, कामला, पाण्डु आदि ।

कंसहरीतकी^१—दशमूल क्वाथ २ सेर ३२ तांला,

उष्णाद्विरेचयेद्देष्टा शीते स्वास्थ्यमुपैति च ।

जीर्णज्वरं पाण्डुरोगं प्लीहाष्टीलौदराणि च ।

रक्तपित्ताम्लपित्तादि सर्वाजीर्णं विनाशयेत् ॥

—२० सा० सं०, गुल्मचि०, २२-२४ ।

१ द्विपञ्चमूलस्य पचेत्कषाये कंसेऽभयानाञ्च शतं गुडाच्च ।

लिहेत्सुसिद्धे च विनीय चूर्णं व्योषं त्रिसौगन्ध्यमुपस्थिते च ॥

प्रस्थार्धमात्रं मधुनः सुशीते किञ्चिच्च चूर्णादापि यावशूकात् ।

एकाभया प्राश्य ततश्च लेहाच्छुक्तिं निहन्ति श्वयथुं प्रवृद्धम् ॥

श्वासज्वरागोचकमेहगुल्मप्लीहांस्त्रिदोषोदरपाण्डुरोगान् ।

काश्यामवातावसृणांम्लपित्तं वैवर्ण्यमूत्रानिलशुकदोषान् ॥

—बं० से० सं०, शोफाधि० ; १३-१५ ।

हरड़ १००, गुड़ ५ सेर; अबलेह बनाएँ । इस में सोंठ, मिरच, पिप्पली, दालचीनी, इलायची और तेजपत्र प्रत्येक का एक तोला चूर्ण मिलाएँ । शीतल होने पर ३२ तोला शहद और ज़रा-सा यवक्षार मिला दें ।

मात्रा तथा सेवनविधि—एक हरड़ खा कर एक तोला लेह चाट लें ।

रोग—शोथ, कास, ज्वर, पाण्डु, अम्लपित्त, यकृत-प्लीहारोग ।

दशमूल हरीतकी^१—१६२ तोला दशमूल क्वाथ में सौ हरड़ पकाएँ । गाढ़ा होने पर पांच सेर गुड़ तथा सोंठ, मरिच और पिप्पली सोलह तोला मिलाएँ । शीतल होने पर दालचीनी, इलायची, तेजपत्र प्रत्येक का चूर्ण एक तोला और शहद बत्तीस तोला डालें ।

१ दशमूली कषायस्य कंसे पथ्याशतं युगत् ।

तुलां पचेदघने दद्यात् व्योषक्षारं चतुष्पलम् ॥

त्रिजातकं सचूर्णं शं प्रस्थार्धं मधुना लिहेत् ।

दशमूली हरीतक्या शोथं घ्नन्ति सुदुस्तरम् ॥

ज्वरारोचकगुल्मार्शोमेहपाण्डूदरामयान् ।

श्वासकार्श्यामवाऽऽम्लपित्तं वन्धेश्च मन्दताम् ॥

—त्रं० से० सं०, शोथाधि० ; १८-२० ।

मात्रा—एक से दो तोला ।

रोग—शोथ, उदर रोग, श्वास, पाण्डु आदि ।

अभयारिष्ट^१—हरड़ १० सेर, मुनक्का ५ सेर, वायविडङ्ग १ सेर, और महुए के १ सेर फूल को ५ मन ४ सेर ६४ तोले पानी में पका कर १ मन ११ सेर १६ तोले जल शेष रख लें । छान कर इस में १० सेर गुड़ घोलें और निम्न लिखित प्रक्षेप द्रव्यों को मिला कर घड़े में बन्द कर दें ।

प्रक्षेप द्रव्य—गोखरू, निशोथ, धनियां, धाय के फूल, इन्द्रायण, चव्य, सौंफ, सोंठ, दन्तीमूल और मोचरस प्रत्येक १६

- १ अभयायास्तुलामेका मृद्वीकाद्दुलां तथा ।
 विडङ्गस्य दशपल मधूककुसुमस्य च ॥
 चतुर्द्रोणे जले पक्त्वा द्रोणमेवावशेषयेत् ।
 शीतीभूते रसे तस्मिन् पूते गुडतुला क्षिपेत् ॥
 श्वदंष्ट्रां त्रिवृतां धान्यं धातकीमिन्द्रवारुणीम् ।
 चव्या मधुरिकां शुण्ठीं दन्तीं मोचरसं तथा ॥
 पल्युग्ममितं सर्वं पात्रे महति मृण्मये ।
 क्षिप्वा संरुध्य तत्पात्रं मासमात्रं निधापयेत् ॥
 ततो जातरसं ज्ञात्वा परिस्ताव्य रसं नयेत् ।
 बलं कोष्ठञ्च वह्निञ्च वीक्ष्य मात्रा प्रयोजयेत् ॥
 अर्शा सि नाशयेच्छीघ्रं तथाशबुदराणि च ।
 वर्चोमूत्रविबन्धघ्नो वह्निं सन्दीपयेत् परम् ॥

—मै० ६०, अर्शोरोगाधि०; १०५-११० ।

वाग्भट और बगसेन ने भी अभयारिष्ट को कुछ परिवर्तन के साथ अर्श चिकित्सा में लिखा है ।

तोला । एक महीने बाद अरिष्ट तैयार हो जाय तो छान कर रख लें ।

मात्रा—एक से दो तोला ।

रोग—अर्श, तथा अन्य उदर रोग, मलबन्ध, मूत्र-कृच्छ्र, मन्दाग्नि आदि ।

महाभयारिष्ट^१—हरङ्ग दो सौ पल, दशमूल, थोहर, दन्तीमूल, करञ्जबीज मज्जा, नील (या काला दाना),

१ हरीतकीना श्रेष्ठाना द्वे शते जर्जरीकृते ॥
 दशमूलसुधादन्तीकरञ्जाधोगुडासनाः ।
 मयूरकं देवदारु निचुलं कुटजाटर्जी (?) ॥
 कटङ्कटेरी बृहती रास्नाश्यानाकचित्रकौ ।
 वरुणं चेति संकुट्य पञ्चविंशतिकैः पलैः ॥
 षड्द्रोणेऽपि पचेदेतद्यावत्पञ्चाढकं स्थितम् ।
 तस्मिन् पूते गृह्णतुला दत्त्वा भूयश्च साधयेत् ।
 परिवृत्तं समालक्ष्य घृतभाण्डे निधापयेत् ॥
 मरिचानि विडङ्गानि भार्गी शक्यवास्तथा ।
 आवपेत् कुटबीजानि पिप्पलीप्रस्थमेव च ॥
 मधुप्रस्थं च संसृज्य मासादूर्ध्वं प्रयोजयेत् ।
 पथ्याशी मात्रया काले मुच्यते कफजैर्गतैः ।
 महाभयारिष्ट इति कश्यपेन प्रकल्पितः ॥

असन (बीजासार), अपामार्ग, देवदारु, जलवेत्र, कुटज, अटजी, वारुहरिद्रा, बड़ी कटेली, रास्ना, श्योनाक, चित्रक, वरुण मिलित ढाई सेर को ५ मन ८ सेर जल में पकाएँ और १ मन $३\frac{३}{४}$ सेर काथ बचा लें । छान कर १० सेर गुड़ घोलें । घड़े में भर कर निम्नलिखित द्रव्यों के चूर्ण का प्रक्षेप दें— काली मिर्च, वायविडङ्ग, भारंगी, इन्द्र जौ ३२ तोला और पिप्पली १२८ तोला । १२८ तोला मधु भी मिला दें । अरिष्ट बन जाने पर प्रयोग करें ।

मात्रा—एक से दो तोला ।

रोग—कफज रोग, राजयक्ष्मा आदि ।

हरीतकी प्रयोग^१—सौ हरड़ों को तक्र में खिन्न करके

- १ हरीतक्यः शतं ग्राह्यं तक्रैः खिन्नश्च कारयेत् ।
यत्नाद् बीजं समुद्भिृत्य चूर्णानीमानि पूरयेत् ॥
षड्वर्णं पञ्चपटु यमानी द्वयमेव च ।
त्रिच्चारं द्विगुदिव्यञ्च कर्षद्वयमितं पृथक् ॥
अक्षयचूर्णीकृतं सर्वं चुक्राम्लेनापि भाषयेत् ।
लिम्पाकस्त्रसेनापि भाषयेच्च दिनत्रयम् ॥
खाद्वेच्चेवाभयामेकां सर्वाजीर्णविनाशिनीम् ।
चतुर्विधमजीर्णञ्च बन्दिमान्द्यं विशूचिकाम् ॥
गुल्मशूलादि रोगाश्च नाशयेदविकल्पितः ॥

—भै० र०, अग्निमान्द्यादि०; ६२-६५ ।

कुशलता से बीज को निकाल कर सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली, पिप्पली मूल, यवक्षार, चव्य, चित्रक, पांचों दमक, अजवायन, अजमोदा, यवक्षार, सर्जक्षार, सुहागा, हींग, लौंग प्रत्येक के आठ तोले चूर्ण को मिश्रित कर चुक्र तथा निम्बु के रस से तीन दिन भावना देकर उन हरड़ों में भर दें ।

मात्रा—एक से दो हरड़ प्रति दिन ।

रोग—अजीर्ण, मन्दाग्नि, विसूचिका, गुल्म तथा शूल आदि ।

हरीतकी खण्ड^१—त्रिफला, मोथा, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नाग केसर, अजवायन, त्रिकटु, धनियां, सौंफ, सोया, लौंग प्रत्येक का दो तोले चूर्ण, निशोथ और सनाय प्रत्येक सोलह तोला, हरड़ चौंसठ तोला, खाण्ड सवा

- १ त्रिफलाब्दं चतुर्जातं यमानीकटुकप्रयम् ।
 धान्य मधुरंका चैव शतपुष्पा लवङ्गकम् ॥
 प्रत्येकं कार्षिकं ग्राह्यं त्रिवृता स्वर्णपत्रिका ।
 पलद्वन्दप्रमाणेन सर्वतुल्या हरीतकी ॥
 यावन्त्येतानि चूर्णानि सिता तद्विगुणा मता ।
 दसैतानि विधानेन क्षीरेणोष्णेन सम्पिबेत् ॥
 हन्यम्लपित्तं शूलञ्च षडर्शास्यनिलामयम् ।
 कोष्ठवातं कटिशूलमानाहमपि दारुणम् ॥

—भै० २०, शूलरोगाधि०; १८६-१८२ ।

तीन सेर, यथाविधि पाक करें ।

मात्रा—आधा तोला ।

अनुपान—गरम जल या दूध ।

रोग—अम्लपित्त, शूल, अर्श, वातरोग, कोष्ठवात, कटिशूल, आनाह (अफारा) आदि ।

सत्व बनाना

हरड़ का सत्व ही अकेला सत्व है जो भारत में बनाया जा रहा है । सत्वों में जो खराबियां सामान्यतया हुआ करती हैं वही इस में मिल जाती हैं । इसका रंग अच्छा नहीं होता । निर्माण में आने वाले निक्षेप के कारण इस में अम्ल कम होता है और विशेष स्पर्श लाने की (bloom-making) क्षमता भी कम होती है । चर्मकारों को फलों की अपेक्षा सत्व में टैनीन परिमाण इतना अधिक नहीं मिलता जितना कि वे आशा रखते हैं । फिर भी सत्व का उपयोग हो रहा है और बाजार में इस की खपत है । हरड़ों की अत्युत्तम किस्मों का चुनाव करने से निस्सन्देह अधिक अच्छा सत्व बनाया जा सकता है, परन्तु इस में जो अतिरिक्त व्यय पड़ेगा वह प्राप्त पदार्थ की दृष्टि से वाञ्छनीय नहीं है । सत्व का वर्तमान स्टैंडर्ड बहुत खोज के बाद बढियापन और खर्च के बीच में समझौता मान लिया गया है । (इण्डि० फौरे०, १६१२) ।

सामान्य उपयोग

चमड़ा कमाने के गुण — हरड़ बहुत संग्राही नहीं है और खाल के अन्दर बहुत तेजी से नहीं घुसती। इनका अकेला प्रयोग अच्छा नहीं रहता। खमोर पैदा करने और अम्ल बनाने की शक्ति की दृष्टि से चमड़ा कमाने के दूसरे मिश्रणों के साथ ये बहुत उपयोगी हैं। ये चमड़े को मुनायम करती हैं। इनमें एलेगिक एसिड (ellagic acid) बहुत बड़ी मात्रा में होता है, इस लिए यह एक विशेष स्पर्श पैदा करने वाला पदार्थ है।^१ खालों और ईस्ट इण्डियन किप्स के रंगों को स्थिर करने के लिए, इनका व्यवहार, दक्षिण भारत में विशेषतः होता है।

पार्कर और ब्लौकी (१९०३) ने दिखाया है कि जबलपुरी विन्गोर्ल की हड्डों में विशेष स्पर्श पैदा करने का गुण अधिकतम और शीघ्रतम है। बिमली हरड़ों में अम्ल तथा रंग अच्छा पैदा होता है और टैनीन का परिमाण भी सर्वोच्च होता है। जबलपुरी हरड़ में भार बढ़ाने का गुण सब से अधिक है और रंग में ये बिमली के तुल्य है। निर्यात किये जाने वाली सब हरड़ों में मदुरा तथा कोयम्बटूर के नमूने

१क इण्डो, फौरे० १९२२ और

ख टैनिंग मैटीरियल्स औफ दि ब्रिटिश एम्पायर, १९२९ :

और शायद सलेम के नमूने भी हलके रंग के होते हैं ।
(चौधरी और नायडू. १९२६) ।

रंगने में—भारत में हरड़ रङ्ग के रूप में भी इस्तेमाल होती है । फल के छिलके का चूर्ण करके पानी में भिगो दिया जाता है । इस में कपड़ा डाल कर उबाल दिया जाय तो मैला या भूरा सा रंग आ जाता है । इसमें फिटकरी मिला देने से पीला पक्का रंग आ जाता है । लोहे के किसी लवण सामान्यतया प्रोटोसल्फेट के साथ मिला कर काले रंग की विभिन्न छायाएँ प्राप्त करने में हरड़ का रंग के रूप में विस्तृत उपयोग होता है । रंग की गहराई के लिये थोड़ा सा गुड़ और लोह गन्धित् के साथ गाव का शुष्क फल (डियोस्पिरोस एम्ब्रियोप्टीरिस = *Diospyros embryopteris*) मिला कर गहरा काला रंग बनाया जाता है । हरड़ और लोहस् गन्धित् (*Ferrous sulphate*) को एक निश्चित अनुपात में मिलाने से खाकी रंग बनता है । मद्रास में हरड़ इसी तरह से इस्तेमाल होती है और कपास, ऊन तथा चमड़े को रंगने में अकेली भी काम आती है । उत्तर-पश्चिम प्रांतों में निम्न मुख्य छायाएँ प्राप्त करने में इसका उपयोग होता है—काला, जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है । हरा, हल्दी और नील के साथ मिला कर । गाढ़ा नीला, नील के साथ । भूरा, कथे के साथ ।

काले को छोड़ कर अन्य रङ्गों में अपना रंग देने के बजाय यह मुख्यतया उन के रंगों को गाढ़ा करने का काम करता है जिन में यह मिलाया जाता है । भारत में सब जगह मंजीठ, हल्दी, टेसू आदि के साथ सहायक रूप में उनके रङ्गों को गाढ़ा करने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है । कीट-फल ऊन पर हलका पीला रंग देते हैं । कीट-फल स्याही बनाने, कपड़ा रंगने तथा चमड़ा कमाने में भी प्रयुक्त होते हैं ।

स्याही—लोह-लवणों के साथ फल देसी स्याही बनाने में काम आते हैं । फलों की थोड़ी प्रतिशतकता में त्वचा के नीचे का भाग भुरभुरा जाता है । जिन फलों में यह हो जाता है वे चर्म-कर्म में काम नहीं आते, पर स्याही बनाने में काम आ जाते हैं ।

कीट फलों के उपयोग—ओक के कीट फल की तरह हरड़ के कीट फलों (galls) से अच्छी स्याही बनाई जाती है । कोरोमण्डल तट पर इनसे बहुत बढ़िया और टिकाऊ पीला रङ्ग बनाया जाता है । तामिल लोग इन्हें कादुकाई और तेलिंग लोग अल्लिकाई कहते हैं । कीट-फलों में टैनिन एसिड प्रचुर होता है और इस लिये चर्म-कर्म में तथा रङ्गों को पक्का करने के लिये रंगने में काम आते हैं ।

हरड़ के पत्ते चारे के रूप में पशुओं को खिलाये जाते हैं ।

छाल—छाल चमड़े को कमाने और रंगने के काम आती है। यह कभी-कभी खाकी और काला रङ्ग रङ्गने में और बंगाल तथा मनीपुर में बांसों को रंगने में काम आती है। छाल बहुत ग्राही होती है और रंगों में वही छायाएँ देती है जो बबूल की फलियों से आती हैं, परन्तु ये कुछ अधिक पीली आभा लिए हुए होती हैं।

लकड़ी—लकड़ी अच्छी टिकाऊ है। इस पर पौलिश अच्छी होती है। फर्निचर, बैलगाड़ियों, कृषि-उपकरणों और मकानों के बनाने में काम आती है।

गोंद—वृक्ष एक गोंद देता है। बरार में यह बहुत इकट्ठी की जाती है और अनेक दूसरी गोंदों—कीकर, धौग, महुआ, बकायन, आदि के साथ मिला ली जाती है। गोंदों से इकट्ठी की गई यह मिश्रित गोंद स्थानिक बाजार में आती है और चिकित्सा प्रयोजन के लिये या रंगरेजों को रंगों में मिलाने के लिये बेच दी जाती है।

चिकित्सा में उपयोग

बहेड़े और आंवले के साथ मिला कर त्रिफला के नाम से प्रायः सब रोगों में विस्तृत रूप से हरड़ का प्रयोग भारतीय चिकित्सा में किया जा रहा है। चिकित्सा की प्राचीन पद्धति में जिन द्रव्यों का सब से अधिक उपयोग हुआ है उन में हरड़ है। वैद्य कालिदास ने अपनी पुस्तक वैद्य-

मनोरमा में लिखा था, 'निष्णात वैद्यवरो ! मेरी यह अनुभव-पूत स्थापना सुनो—इस सृष्टि में हरड़ के समान गुणकारी कोई द्रव्य नहीं है ।'^१

शिशुओं के लिए माता के समान हितकर

घरेलू चिकित्सा का यह महत्वपूर्ण अंग बन गई है । संस्कृत की एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है कि 'जिस की माता न हो उस की मां हरड़ समझ लेनी चाहिए ।'^२ इसका अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि माता के मर जाने पर शिशु को दूसरा दूध देने से जो विकार पैदा हो जाते हैं उन सब को दूर करने के लिए हरड़ देनी चाहिए । माता के दूध से दूसरे दूध में जो विभिन्नताएँ हैं उन से होने वाले दोषों की रोक-थाम के लिए शिशु को हरड़ देनी चाहिए ।

सब अवस्थाओं में लाभदायक

भोजन खाने के बाद, भोजन से पूर्व, भोजन के बीच में, भोजन पच जाने पर, भोजन न पचा हो तब, और भोजन न पूरा पचा हो और न ही पूरा कच्चा हो तब भी हरड़ का सेवन लाभ करता है । हरड़ मनुष्यों के लिए माता के समान

१ मम सत्यवतिज्ञेयं यूयं शृणुत पण्डिताः ।

पथ्यायाः सदृशं किञ्चित् कुत्रचिन्नैव विद्यते ॥

वैद्य मनोरमा, रसायनवाजीकरणाधिकार ।

२ माता यस्य गृहे नास्ति तस्य माता हरीतकी ।

हितकारी है। माता को कभी गुस्सा आ भी जाता है परन्तु किसी भी अवस्था में खाई गई हरड़ दोषों को प्रकुपित नहीं करती।^१ बच्चों को हितकर उपदेशों में भी बताया जाता है कि हरड़ तो सदा पथ्य है, बेर का फल कुपथ्य है।^२ पथ्य पदार्थों में चरक ने हरड़ को सब से श्रेष्ठ बताया है।^३

आयु बढ़ाने वाली

शक्ति बढ़ाने, बुढ़ापे के प्रभाव के रोकने और आयु को दीर्घ करने के लिए रसायन बल्य रूप में हरड़ का विस्तृत प्रयोग किया जाता है।

प्रजास्थापक और वयःस्थापक दस-दस ओषधियों के समूह में चरक ने हरड़ का पाठ किया है।^४ हरड़ को घी में भून

- १ भुक्ते पथ्याऽभुक्ते पथ्या भुक्ताभुक्ते पथ्या पथ्या ।
 जीर्णे पथ्याऽजीर्णे पथ्या जीर्णाजीर्णे पथ्या पथ्या॥
 हरीतकी मनुष्याणां मातेव हितकारिणी ।
 कदाचित् कुप्यते माता नोदःस्था हरीतकी ॥

—राजवल्लभ ।

- २ हरीतकी सदा पथ्या कुपथ्यं बदरीफलम् ।

—हितोपदेश ।

- ३ हरीतकी पथ्यानां ।

—च०, सू०, अ० २५ ।

- ४ देखें—च०, सू०, अ० ४; १२ ।

कर बनाये चूर्ण को घी में मिला कर खाने से और उत्तम भोजन करते रहने से शरीर में बल आता है और शक्ति बनी रहती है ^१।

रसायन

जिस द्रव्य के द्वारा शुभ गुणयुक्त रस आदि धातुओं की प्राप्ति हो वह रसायन कहा जाता है ^२। शरीर में रस आदि धातुओं के स्वस्थ रहने के कारण ही जरा तथा अन्य रोग इसे शीघ्र अभिभूत नहीं करते। शरीर की कार्य क्षमता और रोग प्रतिरोधक शक्ति बनी रहती है जिस से शरीर पर रोगों का आक्रमण नहीं होता। बुद्धि, मन आदि भी आहार पर आश्रित रहते हैं। सात्विक आहार से मन और बुद्धि भी सात्विक होती है। इसी लिए सात्विक भोजन करते हुए रसायन के उपयोग से मन श्रेष्ठ तथा बुद्धि कुशल होती है और स्मृति-शक्ति बढ़ती है। इस पुस्तक में हम ने महर्षियों द्वारा प्रतिपादित जिन रसायनों का वर्णन किया है उन सब के यही लाभ हैं। अतिशयोक्ति से द्रव्यों के गुण प्रतिपादन

१ हरीतकीं सर्पिषं संप्रताप्य समश्नतस्तत् पिवतो धृतञ्च ।

भवेच्चिरं स्थायि बलं शरीरे सकृत् कृतं साधु यथा कृतज्ञे ॥

—अ० ६०, उ०, अ० ३६; १४८।

२ लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम् ।

—च०, चि०, अ० १, अभयामलकीय रसायन पाद; ७।

की प्राचीन शैली के अनुसार लेखकों ने प्रायः प्रत्येक रसायन का लाभ सौ और हजार साल तक जरा और रोग रहित हो कर जीना लिखा है। यद्यपि यह अतिशयोक्तिपूर्ण है परन्तु इसे हम सर्वथा असत्य नहीं समझते। नियमों का पालन करते हुए विधिपूर्वक रसायन सेवन से आश्चर्यजनक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

अधिक रसायनों को कुटी प्रावेशिक विधि से सेवन करने का विधान है। पाठकों को इस से परिचित कराना अप्रासंगिक न होगा।

चिकित्सक सुलभ और अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपयुक्त स्थान देख कर अच्छी स्वस्थ भूमि पर पर्याप्त लम्बा-चौड़ा त्रिगर्भा मकान बनाये। इस का मुख पूर्व व उत्तर दिशा की ओर होना चाहिए। त्रिगर्भा का अभि-प्राय उस मकान से है जिस में एक के अन्दर दूसरा और दूसरे के अन्दर तीसरा कमरा हो इस की दीवार मोटी और यह प्रकाश के लिए खिड़कियों और रोशनदानों से युक्त होना चाहिये।^१

-
- १ कुटी प्रावेशिकस्यादौ विधिः समुपदेक्ष्यते ।
 नृपवैद्यद्विजातीनां साधूनां पुण्यकर्मणाम् ॥
 निवासे निर्भये शस्ते प्राप्योपकरणे पुरे ।
 दिशि पूर्वोत्तरस्यां तु सुभूमौ कारयेत्कुटीरम् ॥

सूर्य उत्तरायण हो और शुक्ल पक्ष हो तब किसी शुभ दिन मुण्डन करवा कर, ईश स्तुति कर के शुद्ध और शान्त मन से कुटी में प्रवेश करे। स्नेहन और स्वेदन कर के रोगी का संशोधन करना चाहिए। इस के लिए हरड़ों का चूर्ण, सेंधा नमक, आंवला, गुड़, बच, बायविडङ्ग, हल्दी, पिप्पली और सोंठ के चूर्ण को गरम जल से पीना चाहिये।^१ सामान्य विरेचन के लिए साधारण उत्तम हरड़ की मात्रा चार से

विस्तारोत्सेधसंपन्ना त्रिगर्भा सूक्ष्मलोचनाम् ।

घनभित्तिमृतुसुखा सुपष्टा मनसः प्रियाम् ॥

शब्दादीनामशस्तानामगम्या स्त्रीविवर्जिताम् ।

इष्टोपकरणोपेता सज्वैद्यौषधद्विजाम् ॥

-च०, चि०, अ० १, अभयामलकीय रसायन पाद; १६-१६ ।

१ अथातोदगयने शुक्ले तिथिनक्षत्रपूजिते ।

मूर्ध्वर्तकरणोपेते प्रशस्ते कृतवापनः ॥

धृतिस्मृतिबलं कृत्वा श्रद्धाघाना समाहितः ।

विधूय मानसान्दोषान् मैत्रीं भूतेषु चिन्तयन् ।

देवताः पूजयित्वाऽग्रे द्विजार्तींश्च प्रदक्षिणम् ।

देवगोब्राह्मणान्कृत्वा ततस्ता प्रविशेत्कुटीम् ॥

तस्यां संशोधनैः शुद्धः सुखी जातबलः पुनः ।

रसायनं प्रयुञ्जीत तत्प्रवक्ष्यामि शोधनम् ॥

छः मासे तक है । ब्रिटिश फार्माकोपिया की मात्रा तीस से साठ ग्रेन है । हरड़ जितनी अच्छी होगी मात्रा उतनी ही कम होगी । शोधन के लिए अन्य द्रव्यों की अपेक्षा हरड़ अधिक देनी चाहिए । शरीर शुद्ध हो जाने पर पेया, यवागू, खिचड़ी आदि हलका भोजन देना चाहिए । कोष्ठ शुद्ध हो जाने पर रोगी की प्रकृति के अनुसार उस के लिए जो उपयोगी रसायन हो उस का सेवन कराना चाहिए । रोगी के लिए कौन-सा आहार और औषध सात्त्विक है यह जान लेना चाहिए ।^१

मुमलमान लेखक पके फल को सारक, पित्त और बलगम का नाश करने वाला कहते हैं ।

हरीतकीनां चूर्णान् सैन्धवामलकेगुडम् ।

वचां विडङ्गरजनीपिप्पलीविश्वभेषजम् ।

पिबेदुग्धाम्भुना जन्तुः स्नेहस्वेदोपपादितः ॥

—च०, चि०, अ० १, अभयामलकीय रसायन पादः २०-२५ ।

१ तेन शुद्धशरीराय कृतसंसर्जनाय च ।

त्रिरात्रं यावत् दद्यात् पञ्चाहं वाऽपि सर्पिषा ॥

सप्ताहं वा पुराणस्य यावच्छुद्धेस्तु वर्चसः ।

शुद्धकोष्ठं तु तं ज्ञात्वा रसायनमुपाचरेत् ।

वयः प्रकृतिसात्म्यशो यौगिकं यस्य यद्धवेत् ॥

—च०, चि०, अ० १, अभया० रसा० पादः २५-२६ ।

अनेक रोग नाशक

हरड़ सेवन करने की कुछ ऐसी विधियां यहां दी जा रही हैं जिन में किसी एक ही विधि के अनुसार सेवन करने से अनेक रोगों को दूर करके स्वास्थ्य लाभ किया जा सकता है ।

हरड़ को बारीक पीस का उम में आधा मुनक्का मिला लें । मुनक्के के बीज निकाल फेंकें । दोनों चीजों को कूट कर एक पिएड बना लें । इस मं में बहेड़े जितनी बड़ी गोली बना कर प्रभात में खा लिया करें । इस से पित्त का नाश होता है । निम्न लिखित रोगों को भी यह सुगमता से दूर कर देनी है—

अफारा, अरुचि, वायु गोला (गुल्म), खांसी, पाण्डु (अनीमिया), कामला (जौण्डिस), विषम ज्वर, हृदय के रोग, रक्त तथा त्वचा के कुछ आर्द विकार और मूत्र तथा प्रजनन संस्थान के रोग (मेह) ।^१

गोविन्द दास का विश्वास है कि मधु भावित हरड़ इन रोगों में अवश्य लाभ करती है—अरुचि, अजीर्ण, अफारा, शूल, खट्टे डकार आना (अम्लपित्त), हिचकी, दस्त, बार-बार

- १ द्राक्षा निबोध्य विधिना द्विगुणं शिवायाः
सञ्चूर्णं चाक्षफलपानमिता प्रभाते ।
कल्याणिका च सुकृता गुटिका मिमा यः
संसेवते भर्वात तस्य हि पित्तनाशः ॥

प्यास लगना, शरीर में गरमी तथा जलन अनुभव होना, बुखार, सिर चकराना (भ्रम), खून की कमी (पाण्डु), अधिक शराब पीने से पैदा होने वाले रोग (मदात्यय), किसी मार्ग से खून आना (रक्तपित्त), खांसी, दमा, पेशाब तथा जनन सम्बन्धी रोग, त्वचा के रोग और आंखों के रोग ।^१

ऋतु हरीतकी

रसायन का लाभ प्राप्त करना चाहने वालों के लिए भावमिश्र, गोविन्द दास आदि ने हरड़ को सारे साल अलग-अलग चीजों के साथ खाने के निर्देश दिये हैं ।^२ वर्षा

हृद्रोगरक्तविषमज्वरपाण्डुवान्ति-

कुष्ठानि कासकमलारुचिमेहमुरब्ध्याः ।

आप्ताहगुल्मपिटिका प्रभवा विकाराः

सर्वे च ते विलयमाशु सुखेन यान्ति ॥

१ दुर्णामश्वसकासज्वरवमधुतृषापाण्डुता नेत्ररोगान् ।

द्विक्काकुष्ठातिसारभ्रममदकसननाजीर्णशूलप्रमेहान् ॥

तृष्णाशूलास्त्रपित्तज्वरवित्तज्वरारोचकानाहदाहान् ।

हन्यादेतानवश्यं मधुनि परिगता पूतना चाप्लपित्सुम् ॥

—भै० २०, रसायनाधि०; २० ।

२ तिन्यूतथशर्कराशुण्ठीकणामधुगुडैः क्रमात् ।

वर्षादिष्वभया प्राश्या रसायनगुणैषिणा ॥

—भा० प्र०; हरीतक्यादि०; ३४ । और

भै० २०, रसायनाधि०; १६ ।

ऋतु में सेंधा नमक के साथ, पतझड़ (शरद्) में चीनी, शीत ऋतु के पूर्वार्द्ध (हेमन्त) में अदरक और उत्तरार्द्ध (शिशिर) में पिप्पली, वसन्त में शहद और दो गरम महीनों में गुड़ के साथ प्रति दिन प्रातःकाल एक हरड़ खाना सब रोगों को नष्ट करने वाला समझा जाता है । गुड़ का परिमाण हरड़ के बराबर और चीनी हरड़ से आधी ली जानी चाहिए ।^१ नमक वाले मिश्रण को पानी के साथ और शेष सब मिश्रणों को दूध के साथ लिया जाना चाहिए ।

पेट के रोगों में

हरड़ के चूर्ण को गोमूत्र के साथ प्रयोग करने से चरक ने पेट के रोगों में लाभ देखा है ।^२

पेट के रोगों के लिए हरड़ इतनी अधिक लाभदायक समझी जाती थी कि चरक उदर विकारों में एक

- १ ग्रीष्मे तुल्यगुडा ससैन्धवयुता मेघावनद्धांबरे,
सार्धशर्करया शरद्यमलया शुण्ठ्या तुषारागमे ।
पिप्पल्या शिशिरे वसन्तसमये क्षौद्रेण संयोजिता
त्वाख्यातात्र हरीतकी बुधवरैः सर्वामयध्वंसिनी ॥

—नवनावनीतकम् ।

- २ ... गोमूत्रेणाभ्यां वा प्रयोजयेत् ।

—च०, चि०, अ० १३; १४६ ।

हज़ार हरड़ खिला डालते थे ।^१ एक हज़ार हरड़ें किम विधि से खिलाई जाय, इस सम्बन्ध में आजकल के चिकित्सकों की सम्मतियां भिन्न-भिन्न हैं । कई विद्वान् एक हज़ार हरड़ों का प्रयोग रसायनोक्त पिप्पली वर्द्धमान के क्रमानुसार करने के लिये कहते हैं । यह दस हरड़ का वर्द्धमान क्रम प्राचीन काल की उत्तम मात्रा है । मध्यम मात्रा दिन में छः हरीतकी और अल्प मात्रा तीन हरीतकी समझना चाहिये । परन्तु ये सब मात्रायें आधुनिक पुरुषों के लिये अत्यधिक हैं । इस से आज कल के अपेक्षाकृत निर्बल पुरुषों को लाभ के स्थान पर हानि होने का भय है । अतः कुछ विद्वान् ऐसा विधान करते हैं—पहले एक हरड़ के सेवन से आरम्भ करें । दस दिन तक प्रति दिन एक हरड़ बढ़ाते जायँ । इस प्रकार प्रथम दस दिन तक पचपन हरीतकी का सेवन होगा । उसके बाद नब्बे दिनों में नौ सौ हरड़ों का सेवन हो जायगा । फिर प्रति दिन एक-एक कम करते जायँ, अर्थात् पहले दिनों में उतरते क्रम से लेते जाय । इस प्रकार इन दिनों में पैंतालीस हरड़ों का सेवन होता है । और एक सौ नौ दिनों में $५५+६००+४५=१०००$ हरड़ों का सेवन होगा । यह क्रम भी बहुत ठीक नहीं

रहता । पृष्ठ ५० और ५१ पर वर्णन किये गये हलिलेह-ए-ज़ीरा और हलिलेह-ए-जवि भेदों को पूर्वोक्त वर्द्धमान क्रम से कुछ वैद्यों ने हज़ार की संख्या में प्रयोग कराया है, इस से हानि नहीं होती । लेकिन हमारी धारणा तो यह है कि चरक महर्षि को हरड़ के ये भेद ज्ञात नहीं थे और वे पूर्ण पके फलों के सेवन का उपदेश करते हैं । इस लिए 'हरीतकी सहस्रं वा' का अर्थ इस से भिन्न करना चाहिए ।

वस्तुतः चरक ने स्वयं वर्द्धमान क्रम से हज़ार हरड़ें खाने को नहीं लिखा परन्तु उन के भाष्यकारों ने ऐसा लिखा है । चरक का आशय सम्भवतः यह है कि उदर रोगी सब मिला कर हज़ार हरड़ें खा डालें । शरीर के बल के अनुसार प्रति दिन एक या दो हरड़ खानी चाहिए । इस तरह हज़ार या पांच सौ दिनों में, हज़ार हरड़ों का प्रयोग हो जायगा । हमें चरक के कथन की यह व्याख्या अधिक ठीक मालूम होती है । हम ऐसे कुछ लोगों को जानते हैं जो सालों से रोज़ हरड़ या त्रिफला का सेवन कर रहे हैं । इस विधि से दैनिक प्रयोग करते हुए तो हम ने अनेक लोगों को लाभ उठाते देखा है परन्तु वर्द्धमान क्रम से सेवन करना हमें व्यवहार्य नहीं लगता । चिकित्सक को चाहिये कि रोगी के बल और दोष आदि की परीक्षा कर के जैसा उचित समझे वैसा ही करे ।

अजीर्ण^१, वमन

भोजन पचता न हो तो (आमाजीर्ण में) गुड़ के साथ नित्य हरड़ खाने से लाभ होता है ।^१ हरड़ को पीस कर गुड़, सोंठ या सेन्धा नमक के साथ वायु व पित्त के रोगों में सेवन करने से आमाशय की अग्नि विशेष रूप से प्रदीप्त होती है ।^२ हरड़ छह तोला, पिप्पली चार तोला, गज पिप्पली, चित्रक, हींग, सेन्धा नमक प्रत्येक एक तोला ले कर चूर्ण बना लें । इस का सेवन अग्नि को दीप्त करने में रसायन का काम करता है, पाचक रसों को उचित मात्रा में उत्पन्न करता है और भूख बढ़ाता है ।^३ सेन्धा नमक एक तोला, अजवायन दो तोला, चित्रक तीन तोला, पिप्पली

- १ आमेष्वजीर्णेषु गुदामयेषु नित्यमद्यात् ।
गुडेन पथ्या... .. ॥

-भा० प्र० , अजीर्ण चि० ।

- २ हरीतकी भक्ष्यमाणा नागरेण गुडेन वा ।
सैन्धवोषहिता वापि सातत्येनाग्निदीपनी ॥

-च० द० , अग्निमान्य चि० ; ११ ।

- ३ हरीतकी हरिहरतुल्या षड्गुणा चतुर्गुणा चतुर्विंशलपिप्पली ।
हुताशनं सैन्धवहिङ्गुसंयुतं रसायनं कुरु नृप वह्निदीपनम् ॥

-हा० सं० , मन्दाग्नि चि० ; २६ ।

चार तोला, सोंठ पांच तोला और हरड़ का गूदा पन्द्रह तोला ले कर चूर्ण बना लें। इस का प्रयोग साक्षात् आग के समान जठराग्नि को दीप्त कर देता है।^१ उलटियों को रोकने के लिए शहद के साथ हरड़ का चूर्ण चटाया जाता है।^२ हिचकी में कोसे पानी के साथ खाने से हरड़ लाभ करती है।^३

शूल

पित्तशूल की शान्ति के लिए गुड़ और घी के साथ हरड़ का चूर्ण खाया जाता है।^४ गोमूत्र में पकाई हरड़ को सुखा कर पीस लें। इस में लोह भस्म मिला कर गुड़ के साथ सेवन करने से सब प्रकार का शूल नष्ट हो जाता है।^५

१ लवण्यवानीदीपककणानागरमुत्तरोत्तरं वृद्धम् ।

सर्वसमाशहरीतकीचूर्णं वैश्वानरः साक्षात् ॥

—अ० हृ०, गुल्म चि०, अ० १४; ३४।

२ लिह्यान्मधुनाऽभयां वा ।

—च०, चि०, अ० २०; २८।

३ हरीतकी कोष्णजलानुपानम् ।

—सु०, उ०, अ० ५०।

४ सुगुडां घृतसंयुक्तां भक्षयेद् वा हरीतकीम् ।

—भा० प्र०, शूल चि०।

५ मूत्रान्तः पाचितां शुष्कां लौहचूर्णसमन्विताम् ।

सगुडामभयामथात् सर्वशूलप्रशान्तये ॥

—च० द०, शूल चि०; ८०।

वायु गंला

सुश्रुत ने वायु गोले (गुल्म) में गुड़ के साथ हरड़ को प्रयोग किया है ।^१ कश्यप गुल्मी की कोष्ठबद्धता में हरड़ और गुड़ को मिला कर दूध के अनुपान से रोगी को खिलाते हैं ।^२

अनुलोमन

सुश्रुत फलों में विरेचन के लिए हरड़ को श्रेष्ठ समझते हैं ।^३ शार्ङ्गधर ने हरड़ को उत्तम अनुलोमक के रूप में देखा है । मलों का पाक और भेदन कर के वे लिखते हैं, जो अवरोध को नीचे ले आये वह अनुलोमन द्रव्य समझना चाहिए, जैसे हरीतकी ।^४ पित्त और कफ के दोषों को दूर

१ सगुडा वा हरीतकीम् ।

-सु०, उ०, अ० ४२ ।

२ क्षीगनुपानामभयां सगुडां संप्रयोजयेत् ।

गुल्मिनां बद्धवर्चानां ॥

-का० सं०, गुल्म चि०, ३७ ।

३ फलेष्वपि हरीतकी ।

-सु० ।

४ कृत्वा पाकं मलानां यद्भित्वा बन्धमधोनयेत् ।

तच्चानुलोमनं श्रेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी ॥

-शा० सं०, पू० ख०, अ० ४ ; ३-४ ।

करने के लिए पके फल को विरेचन के लिए दिया जाता है। बिना गरमी और क्षोभ उत्पन्न किये यह शीघ्रता से कार्य करती है। चिरस्थायी मलबन्ध वाले और जिन्हें पित्त की अधिकता की शिकायत रहती है या कोई ऐसा कष्ट हो जिस में एक कोमल अनुलोमन लेने की बहुधा जरूरत रहती है, ऐसे व्यक्ति हरड़ के प्रयोग को बहुत सुविधाजनक पाते हैं। हरड़ का मुरब्बा रात को सोते समय दस्तावर के रूप में लिया जाता है। चिरस्थायी मलबन्ध में प्रतिदिन गुड़ के साथ हरड़ ली जा सकती है।^१ सौंफ, जीरा, धनियां आदि सुगन्धित द्रव्यों के साथ हरड़ को विविध रूपों में कोष्ठबद्धता के लिए लिया जाता है। विरेचन के लिए इसे लेने का एक तरीका यह है कि फल के गूदे का दो से चार ड्राम चूर्ण ले कर जरा सी सौंफ के साथ काढ़ा या फाण्ट बना लें। इस में शहद या खाण्ड मिला कर पी जाय। कई लोग रात को बिस्तर में जाने से पूर्व हरीतकी चूर्ण की फक्की ले कर ऊपर से गरम पानी या दूध पी लेते हैं जिस से सुबह अनुलोमन हो जाय। कोमल प्रकृति वालों को आधे से एक तोला

१ वर्चो विबन्धेषु च नित्यमद्यात्।

गुडेन पथ्यां... .. ॥

-भा० प्र०, अजीर्ण चि०।

हरीतकी खण्ड रात को सोते समय एक पाव गरम दूध या गरम जल से लेना अच्छा रहता है । इस से सुबह पेट साफ हो जाता है । छह हरड़ों के गूदे को तीस रत्ती लौंग में दालचीनी के साथ दो छटांक पानी में दस मिनिट तक उबाल कर छान लें । विरेचन के लिए यह सब एक मात्रा सुबह ली जानी चाहिए । जिन्हें मल कठोर, रुक्ष और बकरी की मैगनियों की तरह गांठों में आता हो उन्हें तीन माशा हरड़, चार रत्ती नौसादर और एक माशा कुटकी मिला कर कुछ दिन तक सुबह आंवले के शीत कषाय से लेना चाहिए ।

भावमिश्र ने ऐसी हरड़ें देखी थीं जिन्हें खाने से, सूंघने से, छूने से या देखने से ही अनुलोमन हो जाता था ।^१ चेतकी हरड़ में यह विशेषता कही जाती थी कि वह जब तक हाथ में रहे तब तक दस्त होते जाते थे । यद्यपि आजकल लोग इस बात पर अविश्वास प्रकट करते हैं, परन्तु चेतकी के इस प्रभाव की सचाई के बारे में नरहरि^२ और

१ काचिदास्वादमात्रेण काचिद्गन्धेन भेदयेत् ।

काचित्स्पर्शेन दृष्ट्याऽन्या चतुर्धा भेदयेच्छ्रवा ॥

—भा० प्र०, हरीतक्यादि० ; १४ ।

२ चेतकी च धृता हस्ते यावत्तिष्ठति देहिनः ।

तावद् विरेच्यते वेगात् तत्प्रभावाच्च संशयः ॥

—रा० नि०, आम्रादि० ; २२५ ।

भावमिश्र^१ को तनिक भी सन्देह नहीं था। भावमिश्र ने इस का अनुलोमक प्रभाव दिखाते हुए लिखा है कि चेतकी की छाया में जो मनुष्य, पशु, पक्षी, हिरण आदि चले जाते हैं वे उसी क्षण दस्त करने लगते हैं। राजाओं के लिए, कोमल प्रकृति वालों के लिए, निर्बल लोगों और दवाई से द्वेष करने वालों के लिए चेतकी परम हितकर कही गई है क्योंकि इस से सुखपूर्वक रेचन हो जाता है।^२

दस्त, पेचिश

माही और शामक गुण के कारण हरड़ प्रवाहिका तथा अतिसार की उत्तम ओषधि समझी जाती है। इस प्रयोजन के लिए इसे अकेला या सुगन्धित तथा पाचक द्रव्यों के साथ दिया जाता है। आम्रातिसार में पहले संग्राहक ओषधि नहीं दी जानी चाहिये क्योंकि मल के साथ दोषों के अवरुद्ध हो

१ चेतकी च धृता हस्ते यावत्तिष्ठति देहिनः ।

तावन्निद्वयेत वेगैस्तु प्रभावान्नात्र सशयः ॥

—भा० प्र०, हरीतक्यादि० ; १६ ।

२ चेतकी पादपञ्छायामुपसर्पन्ति ये नराः ।

भिषन्ते तत्क्षणादेव पशुपक्षिमृगादयः ॥

नृपाणां सुकुमाराणां कुशानां भेषजद्विषाम् ।

चेतकी परमा शस्ता हिता सुखविरेचनी ॥

—भा० प्र०, हरीतक्यादि० ; १५ और १७ ।

जाने पर अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं । इस लिये उस की उपेक्षा करनी चाहिए और स्वयं प्रवृत्त हुए मल में अथवा कष्ट से आते हुए मल में हरड़ देने से मल के साथ दोषों के बाहर निकल जाने पर आमतिमार शान्त हो जाता है, शरीर हलका होता है और भूख बढ़ती है ।^१ पक्वाति-सार में आम पाचन के लिए गरम जल के साथ हरड़ का चूर्ण खाये ।^२ चूर्ण की पच्चीस सेण्टीग्राम की गोलियां प्रवाहिका, विशूचिका, अतिसार और पुगातन अतिसार में दी जाती हैं । हरड़ और पिप्पली के समान भाग चूर्ण को गरम पानी के साथ खाने से बार-बार थोड़ी-थोड़ी मात्रा में होने वाले प्रबल और शूलयुक्त अतिसार नष्ट होते हैं ।^३

१ न तु संग्राहणं देयं पूर्वमातिसागिणे ।
 विब्रध्यमानाः प्राग्दोषा जनयन्त्यामयान् बहून् ॥
 तस्मात् उपेक्षितोऽक्लिष्टान् वर्तमानान् स्वयं मलान् ।
 कृच्छ्रं वावहतान् दद्यादभयां संप्रवर्तिनीम् ।
 तथा प्रवाहिते दोषे प्रशाम्यत्युदरामयः ।
 जायते देहलघुता जठराग्निश्च प्रवर्द्धते ॥

—च०, चि०, अ० १६ ; १८, २०—२१ ।

२ पथ्या वा... ऊष्ण वारिणा ।

—च०, चि०, अ० १६ ।

३ देखें—सु०, उ०, अ० ४० ।

बवासीर में

बवासीर हटाने वाली दस औषधियों में चरक ने हरड़ को गिनाया है।^१ बवासीर में कठोर कोष्ठ की प्रकृति वालों को मल के अनुलोमन के लिये वाग्भट गोमूत्र में उबाली हुई हरड़ को गुड़ के साथ खिलाना प्रशस्त समझते हैं।^२ रात भर गोमूत्र में रखी हुई हरड़ को गुड़ के साथ या हरड़ के चूर्ण को लस्सी के अनुपान से बवासीर में प्रयोग करने से लाभ होता है।^३ हरड़ को घी में भून कर चूर्ण बना लें। इस में पिप्पली चूर्ण और गुड़ मिला कर बवासीर के रोगी को अनुलोमन के लिए दें।^४ भीतरी बवासीर के रोगी को सुबह हर रोज़ गुड़ के साथ हरड़ का सेवन करना

१ देखें—च०, सू०, अ० ४ ; १७ (१२) ।

२ गोमूत्राध्युषितामद्यात् सगुडा वा हरीतकीम् ॥

—अ० हृ०, चि०, अ० ८ ; ५५ ।

३ गोमूत्राध्युषिता दद्यात् सगुडा वा हरीतकीम् ।

हरीतकीं तक्रयुतां ... प्रयोजयेत् ॥

—च०, चि०, अ० १४ ; ६८ ।

४ सगुडा पिप्पलीयुक्ता घृतभृष्टा हरीतकीम् ।

... भक्षयेदानुलोमिकीम् ॥

—च०, चि०, अ० १४ ; ११६-१२० ।

चाहिये ।^१ खूनी बवासीर वाले को भोजन के बाद प्रतिदिन हरड़ के साथ गुड़ खाने से लाभ होता है ।^२

बवासीर के लिए हरड़ का काढ़ा प्राची प्रचालन द्रव्य है । शौच होने के बाद इस का प्रयोग किया जाना चाहिये । मस्सों में कष्ट अधिक हो तो कोसे या ठण्डे काढ़े से दिन में दो-तीन बार धो डालना चाहिए ।

खून आना

बांसे के रस में हरड़ के चूर्ण को खूब रगड़ कर सुखा लें । इस प्रकार बार-बार भावना दे कर सुखाये चूर्ण में ज़रा सी पिप्पली मिला कर शहद के साथ चटाने से वश में न आने वाला बहता हुआ खून (रक्तपित्त) भी बन्द हो जाता है ।^३

१ प्रातः प्रातर्गुडहरीतमासेवेत ।

—सु० , चि० , अ० ६ ।

२ सगुडामभया वाऽथ प्राशयेत् पौर्वभक्तीम् ॥

—च० , चि० , अ० १४ ; ६६ ।

३ आटरूपकूरसेन सेविता भाविता च पुनरेव शोषिता ।

पिप्पली मधुसमन्विताऽभया रक्तपित्तमतिदुर्जयं जयेत् ॥

—हा० सं० , चि० , अ० ११ ।

ज्वरों में

सन्निपात-ज्वर में दाह दूर करने के लिये हरड़ चूर्ण को तेल, घी और मधु के साथ चाटें ।^१ ज्वरहर दशेमानि में चरक ने हरड़ को गिनाया है ।^२ कफजन्य पाण्डु में गोमूत्र में पकाई हुई हरड़ लाभ करती है ।^३

खांसी, दमा

एक हरड़ को यत्रकुट करके चिलम में रख कर पीने से दमे का दौरा बन्द होता है । चरक में कासहर दस ओषधियों में हरड़ परिसंख्यात है ।^४

मदात्यय

शराब अधिक पीने से होने वाले रोगों (मदात्यय) को दूर करने के लिए दूध में हरड़ का काढ़ा मिला कर पीना चाहिए ।^५ मदात्यय की चिकित्सा के प्रकरण में भावमिश्र ने

१ पथ्या तैलघृतक्षौद्रैः लिष्ट्याद्वाहविनाशिनीम् ।

—भा० प्र०, ज्वर चि० ।

२ देखिए— च०, सू०, अ० ४ ।

३ कफपाण्डुस्तु गोमूत्रक्लिन्नयुक्ता हरीतकीम् ।

—च०, चि०, अ० १६; ५६ ।

४ देखिए— च०, सू०, अ० ४ ।

५ पथ्याक्वाथेन संयुक्तं पयःपानं मदात्यये ।

—हा० सं०, चि०, अ० १७ ।

जायफल के मद को नष्ट करने के लिए हरड़ का सेवन हितकर बताया है ।^१

मूत्र संस्थान के रोगों में

हारीत सब प्रकार के प्रमेहों में हरड़ के चूर्ण में शहद मिला कर खाने के लिए सिफारिश करते हैं ।^२ कष्ट से पेशाब आने में तथा मूत्र-संस्थान के अन्य रोगों (प्रमेह) में चरक लस्सी के साथ हरड़ का सेवन करते हैं ।^३ हरड़ की गुठली को गो दुग्ध में पका कर पथरी में पीने के लिए वाग्भट कहते हैं ।^४

१ जातीफलमद शीघ्रं हन्ति पथ्यानिपेक्षिता ।

—भा० प्र०, मदात्यय चि० ।

२ ... मधुना च विमिश्रितम् ।

हरीतक्याश्च चूर्णं वा सर्वमेहनिवारणम् ॥

—हा० सं०, प्रमेह चि०; ४३ ।

३ मूत्रकुष्ठप्रमेहं च पीतमेतद्व्यपोहति ।

तक्रामाप्रयोगैश्च ... ॥

—च०, सू०, अ० २३; १६, १७ ।

४ हरीतक्यस्थिसिद्धं वा ... ।

—अ० हृ०, चि०, अ० ११; ३३ ।

वातरक्त

वातरक्त में गुड़ और हरड़ का सेवन करें ।^१ एक-दो हरड़ों को गुड़ के साथ खा कर गिलोय का काथ अनुपान में पियें तो वातरक्त, जिस में जानुपर्यन्त स्फुटित हो गया है, शान्त हो जाता है ।^२

वृद्धि रोग

गोमूत्र में पकाई हरड़, तेल और सेंधा नमक को सम-भाग में मिला कर प्रातः काल कफ-वातज वृद्धि के नाश के लिए सेवन किया जाता है ।^३ बहुत पुगने और बढ़े हुए वृद्धि रोग के नाश के लिए चक्रपाणि ने हरड़ को सेवन करने का तरीका यह बनाया है—गोमूत्र में पका कर हरड़ को एरण्ड तेल में भून लें । इस में सेंधा नमक मिला कर कोसे पानी

१ ... सर्वेषु गुडहरीतकी वा सेवेत् ।

-सु०, चि०, अ० ५ ।

२ हरीतकीः प्राश्य सम गुडेन एकाथवा द्वे च ततो गूड्व्याः ।

क्वाथोऽनुपीतः शमयत्यवश्यं प्रभिन्नमाजानुरवातरक्तम् ॥

-भै० र०, वातरक्ताधि०; ६ ।

३ हरीतकीं मूत्रसिद्धां सतैला लवणान्विताम् ।

प्रातः प्रातश्च सेवेत कफवातमयापहा ॥

भै० र०, वृद्धिरोगाधि ; ६८ ।

के साथ खायें ।^१

फील पांव

हरड़ को पानी के साथ सिल पर पीस कर पतली लुगदी बना लेते हैं । कफज श्लीपद में गोमूत्र के साथ इसे पिलाया जाता है ।^२ फीलपांव को संस्कृत में श्लीपद कहते हैं और अंग्रेजी में एलिफेण्टायसिस । इस में रोगी के पैर तथा दूसरे अंग असाधारण रूप से बढ़ कर हाथी के अंगों के समान आकार प्रकार धारण कर लेते हैं ।

त्वचा के रोग

कुष्ठ आदि त्वचा के रोगों को नष्ट करने वाली दस ओषधियों में चरक ने हरड़ को गिनाया है ।^३ स्थानीय लेप के रूप में और खान-पान में इसका प्रयोग किया जाता है । खाने पीने के विविध प्रयोगों में देने से यह अन्दर से मलों का निर्हरण भी करेगी ।

- १ गोमूत्रसिद्धा रुजुतैलभृष्टां हरीतकीं सैन्धवचूर्णयुक्ताम् ।
खादेन्नरः कोष्णजलानुपानं निहन्ति वृद्धिं चिरजां प्रवृद्धाम् ॥
—च० द०, वृद्धिरोगचि० ।
- २ पिवेद्वाप्यभयाकल्कं मूत्रेणान्यतमेन वा ।
—सु०, चि०, अ० १५ ।
- ३ देखें—च०, सू०, अ० ४, १४ (१३) ।

जख्मों पर

हरड़ों में प्रचुर परिमाण में गैलिक एसिड होने के कारण पुराने जख्मों तथा घावों पर लेप के रूप में और मुख-पाक में गरारों के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है। फल के सूखे गूदे को जला कर बनाई भस्म मक्खन के साथ या वेजलीन के साथ व्रणों पर उत्तम मरहम के रूप में इस्तेमाल होती है। बहुत बारीक पीसे हुए हरड़ के कल्क को कैरन तेल के साथ मिला कर जल जाने पर और छालों पर लगाने से अकेले कैरन तेल को लगाने की अपेक्षा आराम शीघ्र आता है।

मुख तथा गले के रोग

बच्चों और युवाओं के मुख पाक में इसका प्रयोग किया जाता है। कण्ठ रोग में हरड़ का कषाय मधु के साथ पिलाया जाता है।^१ कण्ठ व्रण के लिये कषाय ग्राही प्रक्षालन द्रव्य है। दिन में दो-तीन बार इसके कषाय से गरारे करने चाहिये। सिक्किम के पहाड़ी लोग कण्ठ व्रण की औषधि के रूप में फलों का व्यवहार करते हैं। बूढ़े लोग कर्त्थे के साथ हरड़ के चूर्ण को दांतों को मजबूत करने के लिये चबाते हैं। फल का सूक्ष्म चूर्ण दन्तमञ्जन के रूप में खाये हुए दांतों, रक्तस्रावी

१ हरीतकी कषायो वा पेयो माक्षिकसंयुतः।

और प्रणी मसूड़ों के लिए प्रयुक्त होता है ।

आंख के रोग

फलों के यवकुट चूर्ण को पानी में भिगो कर रात भर रखा रहने देकर प्रातःकाल उस से आंख धोई जाय तो यह आंखों के लिये बहुत ठण्डा प्रक्षालन द्रव्य समझा जाता है । इस के हलके जलीय शीत कषाय से प्रति दिन आंख धोने से आंख की जलन शान्त होती है । आंखों के रोगों में घी में भुनी हुई हरड़ का लेप बना कर आंख के चारों ओर लगाया जाता है ।^१ लोहे के बरतन में हरड़ को हल्दी के रस के साथ घोट कर बनाये बल्क को चिप्य रोग में बार-बार लेप करना चाहिए ।^२

हरड़ खाने का निषेध^३

अजीर्ण रोगी, रुक्ष आहार करने वाले, स्त्री भोग, मद्यपान

१ कार्यो हरीतकी तद्वत् घृतभृष्टो विडालकः ।

—च० द०, नेत्ररोग चि० ।

२ स्वरसेन हरिद्रायाः पात्रे कुत्वाऽऽयसेऽभयाम् ।

पिष्ट्वा तज्जेन कल्केन लिम्पेच्चिप्यं पुनः पुनः ॥

—ब० से० सं०, क्षुद्ररोग चि० ।

३क अजीर्णिनो रुक्षभुजः स्त्रीमद्यविषकर्षिताः ।

सेवेरन्नाभयामेते क्षुत्तृष्णादिताश्च ये ॥

—च०, चि०, अ० १; ३३ ।

या किसी विष के सेवन से दुर्बल, भूख, प्यास तथा गरमी से पीड़ित, बलहीन रूक्ष पुरुष को और मार्ग की थकावट से चूर, उपवास के कारण कमजोर, पित्त की अधिकता वाले तथा जिनका बहुत सा खून निकल गया है ऐसे कृश लोगों को और गर्भवती स्त्री को हरड़ का सेवन नहीं करना चाहिए। निम्न-लिखित रोगों में भी इस को प्रयोग करने का निषेध किया गया है—हनुस्तम्भ, गलप्रद, मुखशोष और नवज्वर। नरहरि पण्डित ने शोथ में हरड़ को देना मना किया है परन्तु सुश्रुत, चक्रपाणि, भावमिश्र और कैयदेव शोथ में इसका प्रयोग करते हैं।^१

ख हरीतकीं तु तृष्णाया हनुस्तम्भे गलग्रहे ।

शोथे नवज्वरे जीर्णे गुर्विण्यां नैव शस्यते ॥

—रा० नि०, आम्नादि०; २२६ ।

ग तृष्णायां मुखशोषे च हनुस्तम्भे गलग्रहे ।

नवज्वरे तथा क्षीणे गर्भिण्या न प्रशस्यते ॥

—ध० नि०, गुडूच्यादि० ।

घ अघ्नातिखिन्नो बलवर्जितश्च रूक्षः कृशोलङ्घनवर्षितश्च ।

पित्ताधिको गर्भवती च नारी विमुक्तरक्तस्त्वभया न खादेत् ॥

—भा० प्र०, हरीतक्यादि०; ३५ ।

१ गुण शीर्षक में फट नोट में दिये श्लोकों को देखिये ।



बहेड़ा

संस्कृत के नाम^१

संस्कृत के निघण्टु ग्रन्थों में बहेड़े के निम्नलिखित नाम मिलते हैं—

राज निघण्टु धन्वन्तरि भाव प्रकाश कैयदेव मदनविनोद

१ विभीतक १ विभीतक १ विभीतक १ विभीतक १ विभीतक

२ बहेडक २ बहेडक २ बहेडक

३ संवर्तक ३ संवर्तक २ संवर्तक

४ वासन्त ४ वासन्त ३ वासन्त ३ वासन्त

५ हार्य ५ हार्य

४ हर्यक्ष

६ अक्ष ६ अक्ष २ अक्ष ५ अक्ष ४ अक्ष

७ कर्षफल ७ कर्षफल ३ कर्षफल ६ कर्षफल ५ कर्षफल

८ तैलफल

७ मधु बीज

८ कलद्रुम

१क विभीतकः कर्षफलो वासन्तोऽक्षः कलिद्रुमः ।

संवर्तको भूतवासः कल्कोहार्यो बहेडकः ॥

—ध० नि०, गुड्ड्यादि० ।

६ भूतवास ८ भूतवास ४ भूतवास ६ भूतवास ६ भूतवास
 १० कलिद्रुम ६ कलिद्रुम ५ कलिद्रुम १० कलिद्रुम ७ कलिद्रुम
 ६ कलियु-
 गालय

११ कल्कि

१० कल्कि

१२ कल्किवृक्ष

१३ धर्मघन

११ धर्मद्वेषी

१४ कासघन

१५ अनिलघ्नक

१६ बहुवीर्य

१२ कुशिक

ख विभीतकस्तैलफलो भूतवासः कलिद्रुमः ।

संवर्तकस्तु वासन्तः कल्किवृक्षो बहेडकः ॥

हार्यः कर्षफलः कल्किधर्मघनोऽनिलघ्नकः ।

बहुवीर्यश्च कासघनः स प्रोक्तः षोडशाह्वयः ॥

—रा० नि०, आम्नादि०; २३०-२३१ ।

ग विभीतकस्त्रिलिङ्गः स्यादक्षः कर्षफलस्तथा ।

कलिद्रुमो भूतवासस्तथा कलियुगालयः ॥

—भा० प्र०, हरीतक्यादि०; ३४ ।

१३ तुष

१४ विन्ध्या- न विन्ध्या-

जात जात

१५ तिल- ६ तिल-

पुष्प पुष्पक

१६ मल

१७ रोम-

हर्षण

कैयदेव के कलिद्रुम और कल्पद्रुम दोनों पर्याय विपरीत अर्थवाची प्रतीत होते हैं । एक वृक्ष की हीनता प्रदर्शित करता है और दूसरा उस के महत्व को दिखाता है । वसन्तार्त्त और वासन्त भी इसी तरह विपरीत अर्थवाची नाम हैं ।

घ विभीतकः कर्षफलो भूतावासः कलिद्रुमः ।

वासन्तोऽक्षो विन्ध्यजातः सवर्तस्तिलपुष्पकः ॥

-म० वि० नि०. अभयादि० ३१ ।

ङ विभीतको भूतवासो मधुबीजो बहेडकः ।

धर्मद्वेषी वसन्ताक्षो हर्यक्षो कुशिकन्तुषः ॥

वासन्तोऽक्षो विन्ध्याजातस्तिलपुष्पः कलिद्रुमः ।

कल्पद्रुमः कर्षफलस्तु मलो रोमहर्षणः ॥

-कै० दे० नि०, ओषधि०; २२५-२२६ ।

च संवर्तकस्तु वासन्तः कल्किवृक्षो बहेडकः ।

वर्ण्यः कर्षफलः कल्किधर्मघ्नोऽनिलघ्नकः ॥

संस्कृत नामों का अर्थ

उत्पत्तिबोधक नाम—विन्ध्यजात (विन्ध्य पर्वत में उगने वाला) ।

परिचयज्ञापक नाम—कलिक, कलिकवृत्त, कलिद्रुम (कलि का वृत्त ; नल के सारथी बाहुक के शरीर से उत्पन्न कलि को जब नल शाप देने लगा तब वह भयातुर हो कर बहेड़े के पेड़ में छिप गया^१); कलियुगालय (कलियुग ने इसे अपना घर बना लिया है); भूतवास (कलि रूप भूत का घर); विभीतक (विभेत्यस्मात्, भूत-कलि-का डेरा

१ एवमुक्त्वा ददौ विद्यामृतपर्णो नलाय वै ।
तस्याक्षहृदयशस्य शरीरान्निःसृतः कलि ।
तं शप्तुमैच्छत् कुपितो निषधाधिपतिर्नलः ।
तमुवाच कलिभीतो वेपमानः कृताञ्जलिः ॥
ये च त्वां मनुजा लोके कीर्त्तयिष्यन्त्यतन्द्रिताः ।
यत्प्रसूतं भयं तेषां न कदाचिद्भविष्यति ॥
भयार्त्तं शरणं पातं यदि मां त्वं न शप्स्यसे ।
एवमुक्तो नलो राजा न्ययच्छत् कोपमात्मनः ॥
ततो भीतः कलिः क्षिप्रं प्रविवेश विभीतकम् ।

—म० भा० , वन० , अ० ७२ ; ३२, ३३, ३७, ३८ ।

वामन पुराण के सत्रह अध्याय में भी 'कलिद्रुम' के सम्बन्ध में एक कथा है, पाठक वहां देख सकते हैं ।

होने से लोग इस से डरते हैं); धर्मद्वेषी, धर्मघ्न (जूआ खेलने से धर्म नाश हो जाता है, और क्योंकि जूए में बहेड़े के बने पासों से खेल होता था इस लिए जूए के साधन-पासों के उत्पादक वृक्ष का नाम भी धर्मद्वेषी या धर्मघ्न पड़ गया); तिलपुष्प (तिल सदृश छोटे फूलों वाला); मल (फूलों में से मैले की सी गन्ध आती है); वसन्तार्त्त (वसन्त से दुःखित ?); रोमहर्षण फल के ऊपर मखमली मुलायम और चिकने रोएँ होते हैं); अक्ष (फल वजन में एक अक्ष अर्थात् तोला भर होता है, या इस की लकड़ी से जूए की खेल में पासे-अक्ष-बनाये जाते हैं); कर्षफल (फल तोल में एक-एक कर्ष-तोला-होते हैं); मधुबीज (मीठे बीजों वाला फल); तैल फल (बीज मज्जा से तेल निकलता है); बहेड़क (बहेड़ा) ।

गुण प्रकाशक संज्ञा— विभीतक (विगतं भीतं रोग-भयमस्मात्; इस के सेवन से रोग होने का भय जाता रहता है); तुष (तुष्यति; रोग निवारण कर के जीवों को प्रसन्न करता है); मल (मलकारक, अनुलोमक फल); कासघ्न खांसी को नाश करने वाला); विषघ्न (विषनाशक); अनिलघ्नक (वायुनाशक); वर्ण्य (रंग निखारने वाला) ।

अन्य भाषाओं में नाम

हिन्दी बहेड़ा ।

बंगाली	बहेरा ।
गुजराती	बेहेड़ा, बेडा, बेरंग ।
गढ़वाली	बयड़ा ।
मराठी	बेहड़ा, बहेला, धाटीङ्ग वृक्ष ।
कांगड़ा	भेड़ा, भेड़ी ।
कर्णाटकी	तरि, तारि, शान्तिमर, तोरे ।
तामिल	अक्कदम्, तांत्रिक-काय ।
तेलगु	ताडि, तान्द्रक-काय, बल्ला, विभीतकमु, तांडेचेट्टु ।
काश्मीरी	बहेर ।
बर्मी	थित्सिन, टिस् सिन् ।
आसामी	हुलूच, बौरी ।
सिंहाली	बलू, बुलुगाइ ।
कोंकण	गोटिंग ।
मलयी	तान्नि ।
तुकी	दादि, दादिमर, शान्तिमर ।
अरबी	बतिल्ज, बेलेयलुज, बलिलाज ।
फारसी	बलेले, बेलायलेह् ।
अंग्रेजी	बेलेरिक माइरोबैलन (Beleric myrobalan)
लैटिन	टर्मिनेलिया बेलेरिका (Terminalia bele- rica, Roxb.) ।
नैसर्गिक वर्ग कौम्ब्रिटेसी (Combretaceoe) ।	

इन् बेंथर ने बहेड़े का अरबी नाम बलीलज लिखा है। अविसेन्ना की पुरानी लैटिन में इसे बेलिलेगि और पर्शियन में बलील और बलीला कहते थे। गार्सिया कहता है कि अरबी चिकित्सक इसे बेलेरिग कहते थे। इसी शब्द से अंग्रेजी और लैटिन के बेलेरिक की निष्पत्ति प्रतीत होती है।

प्राप्ति स्थान

भारत, बर्मा और लङ्का के जंगलों में सर्वत्र, मैदानों में और कम ऊँचे पहाड़ों पर लगभग तीन हजार फीट की समता से नीचे मिलता है। सिन्ध, पश्चिमीय राजपूताना और दक्षिणीय पञ्जाब के शुष्क और बंभड़ स्थानों पर नहीं होता। हिमालय की तराई में, अवध के साल-जंगलों में प्रायः मिलता है। शिवालिक शैल पर, पेशावर में, सिन्धु नदी के किनारे की भूमि में, कोयम्बटूर और बलिया के जंगल में, ग्वालपाड़ा, सुखनगर, गोरखपुर, धायतोला और मोरङ्ग शैलमाला में बहेड़े के वृक्ष बहुतायत से पाये जाते हैं। भारतीय प्रायद्वीप में यह बहुधा आर्द्र घाटियों में पाया जाता है। मलक्का, जावा और मलाया में यह वृक्ष होता है। लङ्का में दो हजार फीट ऊँचे स्थलों पर बहुत मिल जाता है।

वर्णन

जंगलों में बहेड़ा साधारण वृक्ष है। इस का वृक्ष दूर

से ही पहचाना जा सकता है और पूर्णतया बड़ा हुआ वृक्ष सुन्दर दिखाई देता है। स्वभाव में यह झुण्डों में रहने वाला वृक्ष है और इधर-उधर बिखरे हुये भी इस के वृक्ष उगते हैं। सागौन, साल और असन आदि के जंगलों में पाया जाता है।

बहेड़े का वृक्ष अस्सी से एक सौ बीस फीट तक ऊँचा चला जाता है। ऊँचे सीधे, नियमित आकृति के तने की ऊँचाई छः से दस और कभी-कभी सोलह से बीस फीट तक पहुँच जाती है। घेरा दस फीट या इस से अधिक होता है।

वृक्ष की छाल नीलाभ या राख के जैसे रंग की भूरी, एक-तिहाई इञ्च मोटी, लम्बाई के रुख में अनेक सूक्ष्म दरारों वाली और अन्दर से पीले रंग की होती है। लकड़ी सख्त, पीताभ धूसर और अन्तःकाष्ठ (heart-wood) अविद्यमान होती है। वार्षिक चक्र (annual rings) अस्पष्ट, छिद्र बहुत कम, बड़े और बहुधा अर्ध-विभक्त होते हैं। पौधे की वृद्धि साधारण होती है। प्रति इंच अर्ध व्यास में तीन से सात वृत्त (rings) होते हैं।

छोटी शाखाओं, हिम्बाशय और पुष्पछद (calyx) के बाह्य पार्श्व पर जंगार के रंग के रुई जैसे मुलायम और

सूक्ष्म रोम होते हैं। छोटी शाखाओं के सिरों पर पत्ते गुच्छों में होते हैं। प्रारम्भावस्था में पत्ते बहुत थोड़े बारीक रोओं से ढके होते हैं। पूर्ण वृद्धि पर स्निग्ध (glabrous) नीचे से पीले, अण्डाकृति-लट्वाकार (obovate-elliptic), आधार प्रायः असमान होता है। फलक (blade) चार से नौ इञ्च; पत्रवृन्त (petiole) पत्ते की एक-तिहाई लम्बाई से बड़ा, डेढ़ से तीन इंच लम्बा होता है। पत्ते में मुख्य बाह्य नाड़ियां मध्य पसली के दोनों पार्श्वों में पांच से आठ होती हैं। फरवरी-मार्च में पत्ते गिर जाते हैं और ताम्र या चर्म वर्ण के नये पत्ते अप्रैल में निकलते हैं। हरी आभा लिए हुए सफेद या पीले फूलों के स्तवक (spikes) कोमल, तीन से छः इंच लम्बे, चलने वाले साल की नवीन शाखाओं (shoots) पर, लगे हुए या गिरे हुए पत्तों के अक्षों में निकलते हैं। इनमें मधु सद्यः तीव्र गन्ध आती है जो प्रायः समय-समय पर अत्यधिक उग्र हो जाती है, और तेज बदबू मालूम होने लगती है। पुरुष और मादा फूल मिले हुए होते हैं। पुष्पछद (calyx) के अन्दर के पार्श्व में उन जैसे लम्बे भूरे बाल होते हैं।

फल नवम्बर से फरवरी तक पकते हैं और शीत तथा ग्रीष्म ऋतु में गिर जाते हैं। फल शुष्क, गूदेवाला, एक से डेढ़ इंच लम्बा, अण्डाकार, फलचराकृति (pyriform),

भूरे मखमली मुलायम और चिकने रंगों से ढका हुआ और पांच अस्पष्ट रेखाओं वाला होता है। इसके अन्दर एक सख्त, मोटी दीवारवाली काष्ठमय (woody) हलकी पीली ०.७ से १.१ इञ्च लम्बी, पांच रेखाओं वाली (pentagonal) गुठली होती है। इसके अन्दर मीठी तैलीय गिरी रहती है, जिस पर आधार से सिरे की ओर जाती हुई तीन स्पष्ट रेखाएँ होती हैं।

वृक्ष पर लगे हुए अपक्व फलों में बरसात में कीड़े लग जाते हैं और ये ज़मीन पर गिर जाते हैं। ज़मीन पर पड़े हुये फलों की कठोर गुठली कीड़ों से बहुत अधिक छिदी हुई होती है और इस तरह सारी फसल चौपट हो जाती है। गुठलियां भी बहुधा अन्दर की गिरी की चाह से गिलहरी, सूअर और दूसरे प्राणियों से फोड़ी हुई होती है और कुछ स्थानों पर वर्षा-ऋतु के प्रारम्भ में एक भी अच्छा बीज पाना मुश्किल होता है। फल के गूदे वाले भाग का और सख्त गुठली का प्रकृति में जहां यह उपयोग नहीं होता वहां ज़मीन पर पड़ा-पड़ा यह सड़ जाता है, या दीमकों से खाया जाता है। गुठली इस तरह प्रायः सम्पूर्णतया या आंशिक रूप में मिट्टी से ढकी जाती है।

इतिहास

बहेड़े का सब से प्रथम उल्लेख हमें ऋग्वेद में मिलता

है। मालूम होता है कि जूए के खेल में बहेड़े से बने पासों से खेलना अधिक पसन्द किया जाता था। जूए का एक खिलाड़ी कहता है—खूब हवा वाले, सूखे स्थान में उगने वाले, बढ़ते हुए, जूए के खिलाड़ियों को कंपा देने वाले बहेड़े के पास मुझे खूब मस्त कर देते हैं। भृङ्गवान् पर्वत पर पैदा होने वाले सोम के सेवन की तरह बहेड़े मुझे जगाये रखते हैं।^१

महाभाग^२ और पुराण^३ में भी बहेड़े का वर्णन मिलता है।

बृहदश्व ने दमयन्ती के अरण्यपथ में आने वाले वृत्तों में हरड़, बहेड़ा और आंवले को गिनाया है।

चरक और सुश्रुत आदि के समय में बहेड़े का स्वतन्त्र रूप से व्यवहार प्रायः नहीं होता था। आजकल भी इस का उपयोग अन्य द्रव्यों के साथ या त्रिफला के अंग रूप में होता है। स्वतंत्ररूप से प्रयोग कम होता है।

१ प्रावे पा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे ववृत्तानाः ।
सोमस्येव मौजयतस्य भक्षो विभीतकोजागृविमह्यमच्छान् ॥



श्रु०, १०, ३४.१।

२ देखिये—म० भा०, वन०, अ० ६४ और ७२।

३ देखिये—वामन पुराण; अध्याय १७।

भेद

विभिन्न वृत्तों से मुख्यतया दो किस्मों के फल मिलते हैं। एक आकृति में लगभग मण्डलाकार और आधे से पौन इञ्च व्यास के होते हैं। दूसरे अण्डाकार और आकार में पहली की अपेक्षा दुगुने बड़े होते हैं।

कृषि

बीज की उगने की शक्ति अच्छी है, और हरड़ (टर्मिने-लिया चिबुला) से तो बहुत अच्छी है। परीक्षा करने पर ताजे बीजों में छियासी से सौ प्रतिशतक और एक साल तक रखे हुए बीजों में पांच से चालीस प्रतिशतक तक उगने की शक्ति ज्ञात हुई।

बीज या सारा फल नर्सरी में मार्च या अप्रैल में बोया जाना चाहिए। मिट्टी से ढक कर नियमित पानी देने पर सामान्यतया बोने से एक या दो मास में अंकुरोत्पत्ति हो जाती है। पहली बरसात में गीली मौसम में पौधों का प्रथक्करण होना चाहिए।

वृद्धि की गति सामान्य है अनुकूल अवस्थाओं में वृद्धि शीघ्र होती है। पहली मौसम में साधारणतया पाच से आठ इञ्च ऊँचाई पहुँच जाती है। धीरे-धीरे वृद्धि अधिक शीघ्र होने लगती है। विशेषकर तब जब कि पौधों की निलाई नियमित की जाती हो यद्यपि विजातीय घास-पात में से

वे अपना रास्ता बना लेते हैं, परन्तु इस से उन की वृद्धि में बहुत बाधा पहुँचती है। छोटे पौधे सीधा बढ़ते हैं और दूसरे साल से वे मजबूत पार्श्वीय शाखायें उत्पन्न करने लगते हैं। जड़ बहुत शीघ्रता से बढ़ती है। केवल एक साल पुराने अर्थात् दूसरी मौसम में खोदे गये पौधों की मुख्य-मूल (tap root) साढ़े तीन फीट लम्बी थी।

पहले एक-दो साल तक पौधे छाया में अच्छे रहते हैं परन्तु सघन छाया बाढ़ में इन्हें दबा देती है और मार डालती है। आंधी प्रायः पत्तों को हानि पहुँचाती है, परन्तु सामान्यतया आंधी शिशु-पौधों को मार नहीं डालती। पौधे घास में हों तो पाला बड़े पत्तों के टुकड़े-टुकड़े कर देता है।

उत्तरी भारत में पौधे की वृद्धि नवम्बर-दिसम्बर में रुकती है और नई वृद्धि मार्च में आरम्भ होती है। लगभग नवम्बर दिसम्बर में पत्ते पीले पड़ने लगते हैं और दिसम्बर-जनवरी में गिरना आरम्भ कर देते हैं। मार्च तक प्रायः सब गिर जाते हैं। उत्तरी भारत में कुछ उदाहरणों में नवम्बर से पत्ते गिरना आरम्भ होते हैं। इस मास के अन्त तक कई वृक्ष लगभग सर्वथा पत्र-विहीन हो जाते हैं जब कि दूसरे वृक्ष जनवरी के अन्त तक पूर्णतया पत्रयुक्त रहते हैं। मार्च से मई तक वृक्ष पत्र-विहीन रहता है और तब नये पत्ते निकलते हैं।

प्राकृतिक अवस्थाओं में वर्षा-ऋतु में अंकुरोत्पत्ति भिन्न-भिन्न समयों में होती है। वर्षा या दीमकों से या किसी दूसरी प्रक्रिया से यदि बीज पृथ्वी में गड़ जाय तो सफल अंकुरोत्पत्ति में बहुत सहायता मिलती है, अन्यथा कठोर छिलके को फोड़ कर निकला हुआ कोमल अंकुर पत्तियों और कीड़ों से खा लिया जाता है या धूप लगने से सूख जाता है। अंकुरोत्पत्ति में भी नमी बहुत अधिक अंश में आवश्यक सहायक होती है। यह देखा गया है कि छाया के नीचे आर्द्र स्थानों में अंकुरोत्पत्ति अधिक जल्दी होती है, विशेषकर तब जब कि बीज जमीन में गड़े हुए हों। धूप वाले खुले स्थानों में देर में अंकुरोत्पत्ति होती है।

बीज स बोया गया एक वृक्ष सोलह साल में उनतालीस फीट ऊंचा और घेरे में दो फीट सवा इञ्च तक पहुँच गया था।

प्राकृतिक निवास-स्थान में इसका अधिकतम छाया तापमान ६७° से ११५° फ़ारनहाइट तक और निम्नतम ३०° से ६०° फ़ारनहाइट तक भिन्न भिन्न होता है। सामान्य वर्षा का माप ४० से १२० इञ्च या अधिक है।

उपयोगी भाग

फल का छिलका, फल का गूदा, बीज की गिरी और फल उपयोगी होते हैं।

बाज़ार में मिलने वाले बहेड़े के फल प्रायः कीड़ों से खाये हुए होते हैं और इनमें पुराने फल भी बहुत होते हैं । पुराने फलों का गूदा भूरा और फिर काला पड़ जाता है । इन के ऊपर का छिलका देखने में यद्यपि खराब नहीं मालूम होता परन्तु तोड़ने पर स्वस्थ दीखने वाले छिलके के नीचे काले भूरे रंग का भुरभुरा गूदा निकलता है । ऐसे फल चिकित्सोपयोग के लिए ठीक नहीं होते ।

कीड़ों से न खाये हुए, नये, आकार में बड़े और रंग में चमकीले हरिताभ पीतवर्ण के गूदे वाले फल ओषधियों में डालने के लिए उत्तम होते हैं ।

संग्रह

नवम्बर से फरवरी तक फल पकते हैं । पूर्ण पक्व होने पर फलों को वृक्ष पर से उतार लें और सुखा कर ठण्डे शुष्क स्थान पर रखें । बोरियों में भर कर या कनस्तरों और ड्रमों में बन्द कर के रखे जा सकते हैं ।

मात्रा

फल का गूदा—दस से बीस रत्ती ।

गुण^१

बहेड़ा हलका, गरम, रुच, तीक्ष्ण और कफपित्तनाशक

है। इस में कषाय रस का प्रतिपादन सब लेखकों ने किया है। नरहरि पण्डित इस में कटु, तिक्त और कषाय इन तीन रसों का समावेश मानते हैं। धन्वन्तरि ने कषाय और कटु केवल दो रस माने हैं। मदनपाल, भावमिश्र, कैयदेव और राजवल्लभ ने इस में केवल कषाय रस का ही उल्लेख किया है। विपाक में यह मधुर है। चाग्भट और धन्वन्तरि ने इसे विपाक में कटु भी लिखा है।

चक्षुष्यं स्वादुपाक्यक्षं कषायं कफपित्तजित् ॥

-सु०, मू०, अ० ४६; २००।

ख कटुपाके हिमं केश्यमक्षमीधच्च तद्गुणम् ॥

-अ० हृ०, सू०, अ० ६; १५८।

ग विभीतकः कटुस्तिक्तः कषायोष्णः कफापहः ।

चक्षुष्यः पलितघ्नश्च विपाके मधुरो लघुः ॥

-रा० नि०, आम्रादि०; २३२।

घ विभीतकः कटुः पाके लघुवैस्वर्यजित् सरः ।

कासान्निवक्त्ररोगघ्नः केशवृद्धिकरः परः ॥

विभीतकं कषायं च कृमिवैस्वर्यजित्तरम् ।

चक्षुष्यं कटुरूक्षाणां पाके स्वादुकफास्रजित् ॥

-ध० नि०, गुड्व्यादि०।

ङ कषायमधुरं शीतं लघु पित्तकफापहम् ।

विभीतकफलं तस्मात् त्रिफला सार्वयौगिकी ॥

-खारणादि।

बहेड़ा कठोर मल का भेदन कर के उस का अनुलोमन करता है । खांसी में लाभ दिखाता है । स्वरयन्त्र के विकारों तथा अन्य मुख रोगों में गुणकारी है । बहते हुये खून को बन्द करता है । आंखों के लिये हितकर होने से नेत्र रोगों में लाभदायक है । बालों को पकने से रोकने और बालों को विशेष रूप से बढ़ाने के गुणों के कारण बालों के लिए लाभदायक समझा जाता है । कृमिनाशक है ।

वाग्भट की सम्मति में बहेड़े के गुण सामान्यतया आंवले के समान ही हैं, परन्तु यह आंवले से कुछ कम गुण वाला फल है ।

च विभीतकं स्वादुपाकं कषायं कफपित्तनुत् ।

उष्णवीर्यं हिमस्पर्शं भेदनं कासनाशनम् ॥

रूक्षं नेत्रहितं केश्यं कृमिवैस्वर्यनाशनम् ।

-भा० प्र०, हरीतक्यादि० ३५-३६ ।

छ विभीतकः स्वादुपाकः कषायः कफपित्तनुत् ।

उष्णवीर्यो हिमस्पर्शो भेदनः कासनाशनः ॥

रूक्षो नेत्रहितः केश्यः

-म० वि० नि०, अभयादि० ।

ज अक्षं कषायं मधुरं पाके पित्तकफापहम् ।

उष्णवीर्यं हिमस्पर्शं केश्यं वैस्वर्यजन्तुजित् ॥

चक्षुष्यं भेदनं रूक्षं लघु कासविनाशनम् ।

-कै० दे० नि०, श्रो० व० ; २२५-२२६ ।

गोंद लेपक और रेचक विश्वास की जाती है ।

मुसलमान लेखक फल को भारी, बलदायक, पाचक, सारक तथा आंखों की शोथयुक्त अवस्थाओं में लेप के रूप में उपयोगी समझते हैं ।

गुठली की गिरी के गुण

हलकी, कसैली, मदकारक, प्यास को शान्त करने वाली, उल्टियों को रोकने वाली और कफ तथा वात की नाशक है ।^१ नाक तथा आंख के रोगों को नष्ट करने वाली, कृमियों

अ विभीतं भेदि तीक्ष्णोष्णं वैस्वर्यकृमिनाशनम् ।

चक्षुष्यं स्वादुपाकञ्च कषायं कफपित्तनुत् ॥

—राजवल्लभ ।

अ अक्षं भेदनं रुक्षोष्णं वैस्वर्यं क्रिमिनुत् कटु ।

चक्षुष्यं स्वादुपाकं च कषायं कफपित्तनुत् ॥

—द्र० गु०, स०, फल०; ४० ।

१क विभीतमजा तृदृष्टिर्दिकफवातहरी लघुः ।

कषाया मदकुम्भाथ धातुमजापि तद्गुणा ॥

—भा० प्र०, हरीतक्यादि०, ३६ ।

ख वैभीतको मदकरः कफमारुतनाशनः ॥

—द्र० गु० खं०, फल०; ४१ ।

ग अक्षमजा मदकरः कफमारुतनाशनः ॥

—कै० दे० नि०, ओ० व०; २२८ ।

को मारने वाली, शुक्र के दोषों को ठीक करने वाली और बालों के लिए परम हितकर है। आंजने से आंख के फूले को काटती है।^१

बहेड़ा गरम है या ठण्डा

सुश्रुत ने सूत्र स्थान के छियालीसवें अध्याय में इसे गरम लिखा है और चवालीसवें^२ अध्याय में अनुष्ण। नरहरि, धन्वन्तरि, चक्रपाणि, राजवल्लभ और हेमाद्रि ने इसे गरम बताया है। वाग्भट ने शीत लिखा है।^३ अष्टाङ्गहृदय के 'पाके हिमं' पाठ को हेमाद्रि ने 'पाकेऽहिमं' समझा है। बहेड़े के शीत या ऊष्ण होने के इस मतभेद को भावमिश्र, मदन पाल, कैयदेव और हेमाद्रि ने दूर करने का प्रयत्न किया है।

घ मज्जातो मदकारकः ।

—म० वि० नि०, अभयादि० ।

१ परं केश्यस्तु तन्मज्जा नेत्रपुष्पहरोऽञ्जनात् ।

नासारोगनेत्ररोगकृमिशुक्रहरो लघुः ॥

२ विभीतकमनुष्णं तु कफपित्तनिवर्हणम् ।

—सु०, सू०, अ० ४४; ६६ ।

३ अक्षं तु तद्गुणन्यूनं कषायमधुरं हिमम् ।

—अ० सं०, सू०, अ० १२ ।

अन्य लेखकों के प्रमाणों के लिए गुण शीर्षक के नीचे टिप्पणी के श्लोक देखिये ।

ये सब लेखक मानते हैं कि यह स्पर्श में तो शीत होता है परन्तु वीर्य में ऊष्ण । इन के विपरीत अरुणदत्त इसे वीर्य में भी शीत लिखते हैं ।

रासायनिक विश्लेषण

फलों में दो भाग होते हैं—अन्तः और बाह्य सौ भागों में बाह्य ७५.४ भाग और अन्तः २४.६ भाग होता है । अन्तः भाग में केवल १.२५ प्रतिशतक टैनिक एसिड होता है । बाह्य भाग में ६.७० प्रतिशतक गैलोटेनिक एसिड होता है ।

छोटे किस्म के बहेड़े के गूदे और गुठली की पृथक्-पृथक् परीक्षा करने से निम्नलिखित परिणाम प्राप्त हुए—

	गूदा	गुठली
आर्द्रता	८.००	११.३८
राख	४.२८	४.३८
पेट्रोलियम ईथरसत्व (एकस्ट्रेक्ट)	.१२	२६.८२
ईथर सत्व (एकस्ट्रेक्ट)	.४१	.६१
एल्कोहलिक सत्व (एकस्ट्रेक्ट)	६.४२	.६१
जलीय सत्व (एकस्ट्रेक्ट)	३८.५६	२५.२६

छिलके के पेट्रोलियम ईथर-एकस्ट्रेक्ट में एक हरा सा पीला तेल था । इथीरियल एकस्ट्रेक्ट में रज्जक पदार्थ, रेजिन्स, अल्प गैलिक एसिड और तेल थे, परन्तु क्षारीय तत्व कोई

नहीं था। एल्कौहलिक एक्स्ट्रैक्ट पीला, भंगुर, बहुत अधिक ग्राही और अंशतः गरम जल में विलेय था। जलीय एक्स्ट्रैक्ट ने विभिन्न टैनीन प्रतिक्रियाएं दीं।

गुठली के पेट्रोलियम ईथर-एक्स्ट्रैक्ट में एक पीला पतला और फल के से स्वाद का तेल था। यह तेल न सूखने वाला और एल्कौहल में अविलेय था। इथीरियल-एक्स्ट्रैक्ट भी तैलीय था। एल्कौहलिक एक्स्ट्रैक्ट अंशतः गरम जल में विलेय, स्वाद रहित तथा प्रतिक्रिया में अम्ल था। जलीय सत्व में शर्करा और सैपोनीन दोनों नहीं थे। कोई क्षारीय तत्व (एल्कलॉयड) नहीं खोजा गया।

तेल का आपेक्षिक घनत्व .६१६८ से .६१६३ तक, पिघलाव बिन्दु 8° से 11° तक, अम्लीय मान २.४ से ३.६ तक, साबुनीकरण मान २०५.८ से २०५.३ तक और नैल मान ७६.० से ८५.३ तक है।

बीजों में ३०-४४ प्रतिशतक तक तेल होता है। रखा रहने पर यह दो भागों में विभक्त हो जाता है। एक पीले हरे रंग का द्रव और दूसरा गाढ़ा सफेद, घी सदृश घनता का अर्धठोस होता है। तेल दवा में काम आता है।

सामान्य उपयोग

जानवरों का भोजन — बन्दर, गिलहरी, सूअर, हिरण, बकरी, भेड़ें और दूसरे जानवर कलों को बहुत चाव से खाते

हैं और इस लिए मांसल आवरण से युक्त फल कभी भी ज़मीन पर बहुत देर तक नहीं पड़े रहते। शीत और ग्रीष्म ऋतुओं में हलके पीले से रंग के बहेड़े की गुठली के छोटे-छोटे ढेर जंगल में इधर-उधर पड़े हुये प्रायः मिल जाते हैं। ये गुठलियां हिरणों से चबा कर फेंकी गई होती हैं। शीत ऋतु में पेड़ पर बहुत सी मुरझाई हुई शाखाएं देवने में आती हैं जो फलों की प्राप्ति के लिये बन्दरों द्वारा तोड़ी गई होती हैं। पके हुये फलों के लिये प्राणियों का भुझाव बीजों को दूर-दूर फैलाने में सहायता पहुंचाता है। इसके अलावा फलों की फसल का एक बड़ा हिस्सा कीड़ों और जानवरों से काम आये बिना ऐसे ही पड़ा रह जाता है।

कांगड़ा में दुधारू गौओं के लिये पत्ते अच्छा चारा होते हैं।

चर्मकर्म में—यह चमड़े को कमाने तथा रंगने में काम आता है। इस दृष्टि से यह हरड़ से बहुत घटिया है। जावा में फल से चमड़ा कमाया जाता है और थोड़ा सा लोह गन्धित मिला कर चमड़ा काला रंगा जाता है।

स्याही—भारत और जावा में फल से देसी स्याही बनाई जाती है। इस के लिए ताजे फल इस्तेमाल किये जाते हैं। फल के रस में कसीस (लोह गन्धित) मिलाने से लिखने की अच्छी स्याही तैयार हो जाती है।

रंगाई में—बहेड़े का रंग, कहते हैं, बहुत अच्छा नहीं आता। इस लिए जावा में सस्ते धागों को रंगने के काम में आता है।

भारत में बहेड़ा रंगने और कमाने के लिए बहुत प्रयुक्त होता है। यह अकेला प्रयुक्त किया जा सकता है, तब यह कपड़े पर पीलासा या भूरासा पीला रंग देता है। अन्य रंगने वाले पदार्थों के साथ मिला देने से गहरा भूरा या काला रंग देता है। अकेले बहेड़े से रंगने की विधि इस प्रकार है—प्रति वर्ग गज कपड़े के लिए एक पाव बहेड़ा लें। गुठली निकाल कर फेंक दें और छिलके को कूट कर बारीक कर लें। इसे एक सेर पानी में डालें और साथ ही एक तोला अनार के छिलके डाल दें। रात भर पड़ा रहने दें। फिर उबालें और तीन उबाल आने पर उतार लें। ठण्डा होने पर मोटे कपड़े में छान लें। रंगे जाने वाले कपड़े को अच्छी तरह धो कर सूखने के लिए डाल दें। जब आधा सूख जाय तो एक तोला फिटकरी घुले हुये पानी में भिगो लें फिर रंग के घोल में कपड़े को डाल कर हिलाते रहें जिस से सारे कपड़े पर एकसा रंग आ जाय। जब कपड़े पर रंग काफी गहरा आ जाय तो धूप में सुखा दें और बाद में पानी से धो डालें जिस से रंग की गन्ध निकल जाय। इस विधि से muffy yellow रंग प्राप्त होता है।

मझीठ आदि के साथ कपड़ा रंगने में हरड़ के स्थान पर बहेड़ा भी इस्तेमाल होता है। कई स्थानों पर हरड़ की तरह बहेड़ा चर्म-कर्म में प्रयुक्त होता है। वीर भूमि में पत्ते भी इसी तरह प्रयुक्त होते हैं। छाल भी काम में आती है पर इस में ग्राही गुण कम है। इस लिए रंगने वाले अन्य पौधों की छाल की अपेक्षा यह कम उपयोगी है।

गोंद—वृक्ष की छाल के क्षतों में, प्रचुर निर्यास निकलता है जो विशेष उपयोगी नहीं मालूम देता क्योंकि जल में विलेय नहीं है। यह गोंद स्वाद-रहित होती है और देखने में कीकर के गोंद से बहुत मिलती-जुलती है। कोल और मूर इसे खाने में काम लाते हैं। मिदनापुर के जंगलों में यह बहुत होता है।

गोंद लगभग अंगुली के बराबर मोटी और गोल लम्बो-तरे खण्डों में छाल पर इकट्ठी हो जाती है। रंग में घटिया कीकर की गोंद के रंग की होती है। इस में डम्बल सदृश कैल्शियम औक्ज़ेलेट के स्फटिक, स्फोरोक्रिस्टल्स और सूक्ष्म पदार्थों के समूह होते हैं। पानी में भिगोने से फूल जाती है, पर घुलती नहीं। दूसरी घुलनशील गोंदों के साथ मिला कर इसे बेचा जाता है। आग में जलाने से यह जल पड़ती है।

लकड़ी—लकड़ी हल्की होती है और अच्छी नहीं समझी

जाती । लेकिन आमतौर पर जितनी बुरी समझी जाती है उस से अच्छी ही होती है । कई स्थानों पर तो यह इतनी निकम्मी ख्याल की जाती है कि वृत्तों को सर्वथा काटा ही नहीं जाता । कई स्थानों पर इसे काट कर इमारती लकड़ी की तरह प्रयोग करते हैं । एक प्रकार का कीड़ा लकड़ी में छेद कर के इसे हानि पहुंचाता है । लकड़ी बहुत टिकाऊ नहीं है और कीड़ों से भी शीघ्र आक्रान्त हो जाती है । ईंधन के लिए यह लकड़ी अच्छी है । जला कर इस के कोयले भी बनाये जाते हैं । सावन्तवाड़ी जिले के लोग चीनी साफ करने में इस की लकड़ी की राख व्यवहार करते हैं ।

हरी लकड़ी का प्रति घन फुट भार अट्ठावन से साठ पौण्ड और सूखी का उनतालीस से तैंतालीस पौण्ड होता है ।

पानी में भिगोने के बाद लकड़ी तख्ते बनाने, पैकिंग केस, कौफी बक्स, नौकाएं बनाने और उत्तर-पश्चिम प्रान्तों में गृहनिर्माण में प्रयुक्त होती है । पानी में डुबोने से यह अधिक टिकाऊ हो जाती है । मध्य प्रान्त में यह हल और गाड़ियों के बनाने में प्रयुक्त होती है । दक्षिणीय भारत में पैकिंग केस, किशती के तख्तों और अनाज के मापने के पात्र आदि के बनाने में काम लाई जाती है ।

उत्तम पथ-वृक्ष—पथ-वृक्ष के लिए यह अत्युत्तम वृक्ष है,

परन्तु इस के साथ कई अन्धविश्वास जुड़े रहने के कारण इस का उपयोग नहीं किया जाता। दक्षिणी भारत के हिन्दुओं का विश्वास है कि इस में दैत्यों का निवास होता है। इसलिए वे इस से बचते हैं और इस की छाया में कभी नहीं बैठते। मध्य और दक्षिणीय भारत के लोग लकड़ी को इस ख्याल से गृहनिर्माण में उपयोग नहीं करते कि जिस घर में इस की लकड़ी होगी वह अनिष्टकर होता है और उस में कोई व्यक्ति देर तक जीवित नहीं रह सकता। इसी अन्धविश्वास के कारण अनेक स्थानों पर यह वृक्ष जंगलों में बिना काटे हुये छोड़ दिया जाता है।

निर्यात

भारत में जंगलों में बहेड़े के फल बहुत इकट्ठे किये जाते हैं। जंगल-विभाग इसे नीलाम कर देता है। कार्तिक से पौष तक इस का फल अच्छी तरह पक जाता है और तोड़ कर बाजार में बिकने आ जाता है। मानभूमि, हजारीबाग आदि प्रदेशों में इस का मूल्य एक रुपया मन और चटगांव में पांच रुपये मन होता है। हरड़ का मूल्य इस की अपेक्षा अधिक है। रंगने तथा चर्म-कर्म के लिए बहेड़े भारत से बाहर बहुत जाते हैं। नजीबाबाद और गढ़वाल के जंगलों में फल बहुत इकट्ठे किये जाते हैं और विदेश भेजे जाते हैं।

गिरी विषैली नहीं

लोगों में यह विश्वास बहुत अधिक प्रचलित है कि बहेड़े की गिरी विषैली होती है। कई लोग केवल बड़े फल वाली किस्मों को विषैला मानते हैं। दूसरे कहते हैं कि उन्होंने दोनों किस्मों को बिना किसी प्रकार का विषैला प्रभाव अनुभव किये अच्छी तादाद में खाया है, परन्तु इन्हें खाने के बाद पानी पी लिया जाय तो शिरोभ्रम तथा नशा अनुभव होने लगता है। सब-असिस्टेण्ट सर्जन श्रीयुत रैडक (Raddock) पांच से नौ साल के तीन लड़कों पर बहेड़े के विष-प्रभाव का उल्लेख करते हैं। बीज खाने पर उन में से दो लड़के नशे में चूर हो गये। दोनों सिर दर्द की शिकायत करते थे और उलटी कर रहे थे। तीसरा लड़का कमजोर था और इसने सब से अधिक बीज खाये थे—बीस या तीस। इस लड़के में दिन में कुछ लक्षण प्रकट नहीं हुए, परन्तु अगले दिन सुबह वह अचेत पाया गया और उसमें शिथिलता के सब लक्षण नज़र आते थे। वामक द्रव्य थोड़ी-थोड़ी मात्रा में देने और तेज भाप देने से लक्षणों में कुछ कमी हुई। धीरे-धीरे वह होश में आ गया, परन्तु वह सिर घूमने की शिकायत करता रहा था और अगले दिन तक उस की नाड़ी तेज़ चलती रही। बाद में वह ठीक हो गया। श्रीयुत रैडक का विचार है कि वह लड़का एक हलके नशीले विष

से आक्रान्त था और इस का परिणाम भी घातक हो सकता था यदि स्टमक पम्प का प्रयोग न किया गया होता ।

फल के विषैले प्रभाव के सम्बन्ध में बहुत अधिक भिन्न और विरोधी सम्मतियां हैं । डिमक, वार्डेन और हूपर की परीक्षाओं के अनुसार इन में कोई विषैला प्रभाव नहीं है । दूसरों को खिला कर तथा स्वयं अधिक मात्रा में खा कर इन लोगों ने कोई बुरे प्रभाव नहीं देखे । बीज के विषैले प्रभाव को जानने के लिए छोटे जीवों पर भी परीक्षण किये गये हैं । एक बिल्ली के पेट में गिरी का नौ ग्रैन एल्कोहलिक सत्व सूचिविद्ध किया गया । एक दूसरी भूखी बिल्ली के पेट में १३.२ ग्रैन (लगभग पैंतीस से चालीस गिरियों के बराबर) एल्कोहलिक सत्व डाला गया । दोनों अवस्थाओं में परिणाम नकारात्मक थे । इस लिये इन लेखकों ने यह परिणाम निकाला कि गिरी में कोई विषैला गुण नहीं है ।

चिकित्सोपयोग

त्विफला के अङ्ग रूप में यह लगभग प्रत्येक रोग में विभिन्न प्रकार से दिया जाता है ।

पञ्जाब में पका हुआ फल मुख्यतया श्वयथु, अर्श, अतिसार कुष्ठ और कभी-कभी ज्वर में इस्तेमाल होता है ।

श्वास संस्थान के रोग

मुख और श्वास-संस्थान के रोगों में बहेड़ा उपयोगी

औषध सिद्ध हुई है। आग में डाल कर भूने हुए फल को मुख में रख कर धीरे-धीरे चूसते रहने से कण्ठ-व्रण में लाभ होता है। बहेड़ा, अनार का छिलका, यवक्षार और पिप्पली समान भाग में मिला कर गुड़ के साथ गोली बना लें। गल-शोथ और कण्ठ-शोथ में यह गोली चूसने के लिए दी जाती है। इसी प्रकार नमक और पिप्पली के साथ फल के गूदे की गोलियां बना ली जाती हैं। खांसी, कण्ठ-व्रण, गले का बैठ जाना आदि में मुख में रख कर इन्हें चूसने से आराम आ जाता है। सेंधव लवण, पिप्पली और बहेड़े के चूर्ण को मक्खन में मिला कर चाटने से भी यही लाभ होता है। बहेड़े के फल के ऊपर घी चुपड़ कर ऊपर घास लपेट दें और इसे गाय के गोबर से ढक कर आग में पकाएँ। ऐसे एक बहेड़े को मुख में रख कर धीरे-धीरे चूसने से खांसी दूर होती है।^१ आधे से एक तोला बहेड़े के चूर्ण को मधु के साथ चाटने से खांसी, दमा और तीव्र हिचकी भी नष्ट होती है।^२ बहेड़ा, अतीस, पिप्पली, भारंगी और सोंठ

१ विभीतकं घृताभ्यक्तं गोशकृतपरिवेष्टितम् ।

स्विन्नमग्नौ हरेत् कासं ध्रुवमास्ये विधारितम् ॥

-च० द०, कास चि०; २६।

२ कर्पं कलिफलचूर्णं लीढञ्चात्यन्तमधुमिश्रम् ।

अचिराद्वरति श्वासं प्रबलादसिकाञ्चैव ॥

-च० द०, हिक्काश्वास चि०; १८।

सब का समान भाग सूक्ष्म चूर्ण बनाएँ। इस विभीतकादि चूर्ण को गरम जल या मद्य के साथ सेवन करते रहने से खांसी, दमा, अपतानक अच्छे हो जाते हैं।^१ सब प्रकार के दमे और खांसी में अकेले बहेड़े के प्रयोग से भी लाभ होता देखा गया है।^२

महास्रोतस् के रोग

बहेड़े और असगन्ध के समान भाग चूर्ण में गुड़ मिला कर गरम जल से खाने से हृदयगत वायु नष्ट होती है।^३ मुनक्का, इलायची का चूर्ण और बहेड़े की गिरी की बनाई गई गोलियां वमन में बहुत लाभकारी होती हैं। जलाये हुए बहेड़े के फल के चूर्ण में नमक मिला कर खाने से यह आंतों

१ विभीतक सातिविष भद्रमुस्तश्च पिप्पली ।

भार्गी शृङ्गवेरश्च सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥

चूर्णान्येतानि मद्येऽपीतान्युष्णोदकेन वा ।

नाशयन्ति नृणां शीघ्रं कासश्चासापतानकम् ॥

—बं० से० सं०, वातव्याध्यधि० ।

२ सर्वेषु श्वासकासेषु केवलं वा विभीतकं ।

—अ० ह०, चि०, अ० ४; १६३ ।

३ पिवेदुष्णाम्भसा पिष्टं साश्वगन्धविभीतकम् ।

गुडयुक्तं प्रयत्नेन हृदयानिलनाशनम् ॥

—बं० से० सं०, वातव्याध्यधि०; ६० ।

पर ग्राही प्रभाव करता है और इस लिए तीव्र अतिसार में लाभदायक होता है ।^१

मूत्र के रोग

सुश्रुत ने बहेड़े को मूत्र-रोगों में उपयोगी पाया है । वे लिखते हैं—बहेड़े की गिरी को मद्य में पीस कर पिलाने से मूत्राशमरी दूर होती है और मूत्र के विकार हटते हैं ।^२

आंख के रोग

ग्राही द्रव्य के रूप में बहेड़ा आंखों के रोगों में व्यवहार किया जाता है । इस के शीत कषाय से प्रातःकाल आंख धोने से आंखें निर्मल रहती हैं । आंख दुखने भ्राने पर या नेत्र-शोथ पर पके हुए शुष्क फल का चूर्ण मधु में मिला कर आंखों पर लेप किया जाता है । बहेड़े की मींगी, काली मिर्च, आंवले का गूदा, नीलाधोथा और मुलहठी को जल से पीस कर वर्ति बनाएँ । इसे छाया में सुखाना चाहिए । तिमिर में

१ विभीतकफलं दग्धं हन्यास्तवणसंयुतम् ।

महान्तमभ्यतीसारं चक्रपाणिरिवाऽसुरान् ॥

—बं० से०सं०, अतिसाराधि०; ६२ ।

२ अत्रवीजञ्च सुगन्धा कल्कीकृत्य पिवेन्नरः ।

मूत्रदोषविशुद्धयर्थं तथैवाश्मरीनाशनम् ।

—सु०, उ०, अ० ५८: ४४ ।

इस वर्ति को आंजना चाहिए ।^१ बहेड़े की गिरी को स्त्री-दुग्ध में घिस कर प्रतिदिन रात को आंखने से आंख के रोगों में लाभ होना है ।^२ शहद के साथ गिरी को बारीक पीस कर फूले में आंजते हैं ।^३

शोथ, दाह, ग्रन्थि

विविध शोथयुक्त अवस्थाओं में बहेड़े का लेप के रूप में बाह्य प्रयोग होता है । बहेड़े की गिरी को पीस कर शोथ वाले भागों पर लेप किया जाता है । बहेड़े की मींगी का तेल बाह्य प्रयोग में आमबात में बेदना वाले स्थानों पर मालिश करने से बेदना और शोथ दोनों शान्त होते हैं । सब प्रकार की शोथों में बहेड़े के फल की मज्जा के लेप से दाह और वेदना शान्त होती है । ग्रन्थिविसर्प में बहेड़े के कल्क को गरम कर

-
- १ अक्षबीजमरिचामलकत्वक्तुस्थयष्टिमधुकैर्जलापिष्टैः ।
छाययैव गुटिकाः परिशुष्का नाशयन्ति त्तिमिराण्यचिरेण ॥
—अ० ह०, उ०, अ० १३; ४३।
- २ अक्षमज्जाञ्जनं सायं स्तन्येन शुक्रनाशनम् ॥
—अ० २०, नेत्ररोगाधि०; ६७।
- ३ मज्जा वाड्ज्ञात् समाक्षिकम् ।
—अ० ह०, उ०, अ० ११।
- ४ विभीतकानां फलमथलेपः सर्वेषु दाहार्तिहरः प्रलेपः ।
—च०, जि०, अ० ३२; ६६।

ग्रन्थि पर लेप किया जाता है ।^१ बाग्भट भी बहेड़े को ग्रन्थि विसर्प में लेप करते हैं ।^२ जले हुए स्थान पर बीज की गिरी या फल का गूदा पीस कर लगाने से दाह शान्त होती है ।

बालों के लिए हितकर

बहेड़े की गिरी को कोल्हू में पेरने से थोड़े परिमाण में एक तेल प्राप्त होता है । यह बालों के लिए हितकर कहा जाता है । ओषधियों में उपयोग के अतिरिक्त यह खाने के काम भी आता है । मध्य प्रान्त में गरीब लोग इसे घी के स्थान पर खाते हैं । वहां यह आठ आने सेर बिकता रहा है ।

कान बहना

बहेड़ा, वच, कुष्ठ, हरताल और मनःशिला से पकाये तेल को बच्चों के कान बहने में डालने से पूय आनी बन्द हो जाती है ।^३

अन्य उपयोग

कफ को दूषित करने वाले राजिल (वैश्य) सांपों के

१ विभीतकस्य वा ग्रन्थि कल्केनोष्णेन लेपयेत् ।
-च०, चि०, अ० २१ ; ११४ ।

२ विजयाक्ष्णागबलाग्निमन्थभूर्जग्रन्थिवंशपत्राणां वा ।
-अ० सं०, चि०, अ० २० ।

३ विभीतकं वचाकुष्ठं हरितालं मनःशिला ।
एभिस्तैलं विपक्वन्तु बालानां पूतिकर्णके ।
-वं० से० सं०, बालरोगाधि० ; ६२ ।

काटने पर बहेड़ा दिया जाता है ।^१

रस, रक्त, मांस तथा मेद से उत्पन्न होने वाले दोषों को बहेड़ा नष्ट करता है ।^२

छाल को सिल पर पीस कर बनाया कृत्त खून की कमी में और सफेद कुष्ठ आदि रोगों में दिया जाता है ।^३

कौंकण में बहेड़े की गिरी पान में रख कर खाई जाती है ।

साधु लोग कहते हैं कि रोज़ा एक गिरी खाने से विषय वासना बढ़ती है ।

१ वैश्ये कर्षफलं दद्यात् ... ।

-भ० पु०, पञ्चमी कल्प ।

२ रसासृग् मांसमेदोजान्दोषान् हन्ति विभीतकम् ।

-च०, चि०, अ० २७; १४६ ।

३ अक्षतृचभवः कृत्तः श्वित्रपाण्डुगदापहः ।



आंवला

संस्कृत के नाम^१

आयुर्वेद के द्रव्यगुण के ग्रन्थों में आंवले के निम्न-
लिखित नाम आये हैं—

राजनिघण्टु धन्वन्तरि भावप्रकाश कैयदेव मदनपाल
१ आमलकी १ आमलक १ आमलक १ आमलक १ आमलक
२ श्रीफल २ श्रीफल २ श्रीफल २ श्रीफल २ श्रीफल
३ अमृतफल ३ अमृतफल ३ अमृतफल ३ अमृतफल ३ अमृतफल
४ जातीफल ४ जाती- ४ जाती- ४ जाती- ४ जाती-
फलरस फलरस फलरस रसफला

५ वृत्तफल

१क आमलकी वयस्या च श्रीफला घात्रिका तथा ।
अमृता च शिवा शान्ता शीताऽमृतफला तथा ॥
जातीफला च धात्रेयी शेषा धात्रीफला तथा ।
वृष्या वृन्तफला चैव रोचनी शरभूहया ॥

—रा० नि०, आम्नादि०; १५७ ।

ख वयस्याऽमलकं वृष्यं जातीफलरसं शिवम् ।
घात्रीफलं श्रीफलं च तथाऽमृतफलं स्मृतम् ॥

—ध० नि०, गुड्व्यादि० ।

६ अमृता

५ अमृता

५ अमृतोद्भवा

७ शिवा

५ शिव

६ शिव

६ शिव

५ शिव

८ शान्ता

६ शीता

७ शीतफला

१० वयस्या

६ वयस्था

७ वयस्था

८ वयस्था

११ वृष्या

७ वृष्य

८ वृष्या

६ वृष्या

१० वृष्यफला

१२ रोचनी

६ धात्री

११ धात्री

१३ धात्रिका

१४ धात्रेयी

१५ धात्री-

८ धात्री-

१० धात्री-

१२ धात्री-

६ धात्री-

फला

फला

फला

फल

फल

१३ तिष्या

ग वयस्यामलकी वृष्या जातीफलरसं शिवम् ॥

धात्रीफलं श्रीफलं च तथामृतफलं स्मृतम् ।

त्रिष्वामलकमाख्यातं धात्री तिष्यफलामृता ॥

-भा० प्र०, हरीतक्यादि०; ३७, ३८ ।

१४ तिष्यफला

१५ तिष्यरस-

फल

१६ पर्वकीट

१७ कोरङ्क

१८ सीधुरसा

१९ सीधुफला

२० दिव्याधारा

२१ कोल

२२ कामल

२३ शृङ्गी

२४ शुक्ति

इन नामों में से बहुत से ऐसे हैं जिन्हें कैयदेव तथा अन्य लेखकों ने एक से अधिक लिङ्गों में भी लिखा है। उन को

ष श्रीफला पर्वकीटाख्या कोरङ्कऽऽमलकी शिवा ।
जातीरसफला सीधुरसा सीधुफला तथा ॥
वयःस्था चामृतफला तिष्या तिष्यफलाऽमृता ।
धात्री वृष्या वृष्यफला दिव्याधाराऽमृतोद्भवा ॥
धात्रीफलं शीतफलं तिष्यरसफलं मत्म् ।
भीफलं चामृतफलं कोलं कामलं शिवम् ।
शृङ्गी धात्री चामलकी शुक्तिः शुष्कामलवच्चापि ॥

-वै० दे० नि०, ओ० व०; २२०-२२२ ।

यहां नहीं दिया गया। पृष्ठ १६८-१७१ की टिप्पणियों के श्लोकों से पाठकों को उन का ज्ञान हो जायगा।

संस्कृत के नामों का अर्थ

उत्पत्तिबोधक नाम—आमलकी (अमलात् कात् अश्रु-जलात् आगतम्. भगवती और लक्ष्मी के जमीन पर गिरे हुए अश्रुजलों से उत्पन्न वृक्ष)।

परिचयज्ञापक नाम—श्रीफल (सुन्दर फल, अथवा जिस में लक्ष्मी का निवास है ऐसा फल); शोभनी (सुन्दर फल); कोल, वृत्त फल (बेर के समान गोल); जातीफला, जाती-रसफला (जायफल जैसी आकृति के फल); शृङ्गी (सूखे फल की फांके सींग के रंग की और सींग की तरह मुड़ी हुई होती हैं); वृन्तफला (बहुत छोटे वृन्तों पर फल लगते हैं); कोरङ्क, आमलकी (अम्लरसयुक्त); कामलक (कुछ खट्टा फल); सीधुरसा, सीधुफला (मद्य जैसा ईषद् अम्ल कषाय फल)।

गुणप्रकाशक नाम—शिवा (कल्याणकारी); तिष्या, तिष्यफला, तिष्यरसफला (नित्यमामलके लक्ष्मीः इति श्रवणात् तिष्यं मङ्गल्यं फलमस्याः, मङ्गलकारक फल); अमृता, अमृतोद्भवा, अमृफल (अमृत रूप फल); दिव्याधारा

ॐ धात्रीफलाऽमृतफलाऽऽमलकं श्रीफलं शिवम्।

—म० वि० नि०; अभयादि०; २६।

(दिव्य आधार वाला, जिसके सेवन से दिव्य गुण आते हों); वयस्था (आयुस्थापक); वयस्या (आयुव्यकारक फल); धात्रीफला, धात्रिका, धात्रेयी, धात्री (आयु धारण कराने वाले फल); आमलकी (आमलते, 'मल' धारणे, शरीर में धातुओं को धारण कराने वाला फल); वृष्या, वृष्यफला (इस के फल वृष्य होते हैं); शीता, शान्ता, शीतफला (पिपासा शान्त करने वाला शीत फल) ।

अन्य भाषाओं में नाम

हिन्दी	आंवला, आमला ।
बँगला	आमलकी ।
आसामी	आमलकी ।
तामिल	नेलि ।
केनरी	नेल्लिकाय ।
मराठी	आवला ।
गुजराती	आम्बला ।
सिंहाली	नेलि ।
बर्मी	शब्जु ।
अरबी	आमलज ।
पर्शियन	आमला ।
अंग्रेजी	एम्ब्लिक माइरोबैलन (Emblic myrobalan), इण्डियन गूजबेरी

	(Indian gooseberry) ।
फ्रेंच	फाइलेन्थे एम्ब्लिक (Phylanthemblic), एम्ब्लिक औफिसिनल (Emblic officinal) ।
जर्मनी	जिब्रौक्तिशर आमलाबौम (Gebrauchlicher amlabaum) ।
लैटिन	फाइलेन्थस एम्ब्लिका (Phyllanthus emblica Linn.) ।
नैसर्गिक वर्ग	युफोर्बिएसी (Euphorbiaceae) ।
लैटिन या अंग्रेजी के एम्ब्लिका शब्द की निष्पत्ति यूल और बुर्नेल ने पुरानी पर्शियन के अमलग शब्द से निकाली है । गार्सिया ने लिखा है कि अरब चिकित्सक आंवले को एम्बेलिग कहते थे । ये शब्द संस्कृत के आमलक से निकले प्रतीत होते हैं ।	

प्राप्ति स्थान

समस्त ऊष्ण भारत में हिमालय के साथ-साथ जम्मू से पूर्व की ओर तथा दक्षिण की ओर लंका तक सब जगह जंगलों में स्वयंजात या बोया हुआ मिलता है । भारत और ब्रह्मा के बहुत से भागों में सामयिक जंगलों में प्रायः होता है । हिमालय में, गढ़वाल और कुमायूँ में ४५०० फीट की ऊँचाई तक मिलता है । शुष्क प्रदेशों में और पंजाब के उत्तर

पश्चिम भाग में रावी के पश्चिम की ओर नहीं मिलता । ब्रह्मा, लंका, चीन, मलय प्रायद्वीपों में होता है । वहां इस की अक्सर खेती भी की जाती है । दक्षिण-पूर्व एशिया के ऊष्ण प्रदेशों में और मलय से तिमूर तक पाया जाता है ।

वर्णन

एक छोटा या मध्यमाकार तीस-चालीस फीट ऊँचा, पतनशील पत्तों वाला (deciduous) वृक्ष है । छः से नौ फीट ऊँचा होता है । छाल चिकनी हरिताम-धूसर या हलकी भूरी, पतली, एक तिहाई इंच से कुछ कम मोटी, छोटे अनियमित गोल छिलकों में उतरती हुई होती है । छाल के अन्दर का भाग लाल होता है । छिलका उतरने पर नीचे पीले रंग की नवीन छाल आ जाती है । लकड़ी लाल और कठोर होती है । काष्ठमज्जा (heart wood) नहीं होती । वार्षिक वृत्त स्पष्ट नहीं होते । छिद्र छोटे और मध्यम आकार के, एक सदृश फैले हुए, प्रायःकर अर्द्ध-विभक्त, माध्यमिक रेखाएँ (medullary rays) चौड़ी और दो रेखाओं के बीच का अन्तर सामान्यतया छिद्रों के लम्बवत् व्यास से अधिक बड़ा होता है । प्रतिघन फुट लकड़ी का भार ५२.५ से ४६ पाँड तक होता है ।

पत्ते पंख सदृश समाकार (feathery oblong) हलके हरे, छोटी-छोटी शाखाओं पर पास-पास लगे हुए,

आधा इञ्च लम्बे, किनारे मोटे, लगभग वृन्त-रहित होते हैं। लगभग नवम्बर या दिसम्बर में पत्ते गिरना आरम्भ होते हैं और फरवरी या मार्च से मार्च-अप्रैल तक वृक्ष पत्र-रहित होता है। तब नये अंकुर प्रकट होते हैं।

पीताभ या हरिताभ-पीत सूक्ष्म पुष्प छोटी शाखाओं पर नये पत्तों के अत्तों में घने गुच्छों में मार्च से मई तक निकलते हैं और मधु-मक्खियों के झुण्डों से व्यस्त रहते हैं। फूलों में नर अधिक और मादा कम होते हैं। दोनों जाति के फूल एक ही शाखा पर होते हैं। नर-पुष्पों का वृन्त छोटा और स्त्री-पुष्प लगभग वृन्त-रहित होते हैं।

पत्ते और फूल धारण करने वाली छोटी सामयिक शाखाएँ अनियमित ग्रन्थिल (tubercular) उभारों से एक साथ तीन निकलती हैं। इन की लम्बाई चार से आठ इञ्च होती है। ये प्रायः रोमश होती हैं और पत्तों के गिरने के साथ गिर जाती हैं। इन की आकृति संयुक्त पक्षाकार (compound pinnate) पत्तों की तरह होती है।

फल मांसल, गोल और ऊपर तथा नीचे से चपटे होते हैं। फलों का व्यास आधे से पौन इञ्च, वर्ण पीताभ-हरित, लम्बाई के रुख छः रेखाओं वाले, चिकने, स्वाद में खट्टे, ग्राही और कसैले होते हैं। फल के अन्दर छः रेखाओं वाली अस्थिमयी गुठली होती है। गुठली के अन्दर तीन

कोष्ठ होते हैं जिन में चार या छः गहरे भूरे चिकने खिकोण बीज पड़े होते हैं । १८०० या १६०० बीजों का भार एक औंस होता है । फल दिसम्बर से फरवरी तक या इस से भी अधिक देर में पकते हैं । पकने पर फल का रंग लालिमा लिए हुए हरित पीत-सा हो जाता है । पके हुये फलों को धूप में रखने से गूदा सूख कर फट जाता है और अन्दर से बीज बाहर निकल पड़ते हैं ।

कृषि

देहरादून की परीक्षाएँ बताती हैं कि बीजों की उत्पादन शक्ति की तुलनात्मक प्रतिशतकता कम है और बीज देर तक अपनी जीवन शक्ति कायम नहीं रखते । एक साल तक रखे बीज उगने में सफल नहीं हो सके ।

नर्सरी में लगभग मार्च में बीज बोये जाते हैं । पानी नियमित रूप से देना चाहिए । पहले कुछ मास धूप और ज़ोर की बारिश से रक्षा करनी चाहिए । निलाई नियमित होती रहे तो पहली बरसात में पौधे इतने बड़े हो जाते हैं कि पृथक कर के नियत स्थान पर लगाये जा सकें । जड़ों को नंगा न होने देने का पूरा ध्यान रखना चाहिए क्योंकि पुनरा रोपण के लिए पौधे बहुत नाजुक होते हैं । सब से अच्छा उपाय यह होता है कि बरसात के आरम्भ में बीजों को नियत स्थान पर बोया जाय और निराई का ध्यान रक्खा जाय । प्रथम बर-

सात में ही अधिक घने उगे हुए पौधों में से कमजोर पौधों को निकाल फेंकना चाहिए और जहां पर बीच में अधिक खाली स्थान छूट गया हो वहां स्टौक में रखे हुए नये मजबूत पौधों को लगा देना चाहिये ।

उपयुक्त अवस्थाओं में छोटे पौधों की वृद्धि शीघ्र होती है । पौधों के बीच में उग आने वाले विजातीय घास-पात को उखाड़ डालने पर और पानी न दिये जाने पर पौधों की प्रथम चार साल में अधिकतम ऊँचाई इस प्रकार थी—

पहले साल—दो फीट आठ इञ्च ।

दूसरे साल—सात फीट ।

तीसरे साल—नौ फीट सात इञ्च ।

चौथे साल—सोलह फीट छः इञ्च ।

घास-पात निकालना वृद्धि में बहुत सहायता करता है और घास-पात की उपस्थिति वृद्धि को रोकती है । घास-पात न निकाले गये खेतों में पहले तीन सालों में अधिकतम वृद्धि इस प्रकार थी—

पहले साल—पाँच इञ्च ।

दूसरे साल—तीन फीट आठ इञ्च ।

तीसरे साल—छः फीट दस इञ्च ।

छोटे पौधे छाया या किसी प्रकार के दबाव को बर्दाश्त नहीं करते और जब कई छोटे पौधे एक साथ बोये गये हों

तो एक या दो सबल पौधे तेज़ी से बढ़ कर अन्य पौधों को दबा लेते हैं। पहले कुछ मासों में ये कुछ नाजुक होते हैं।

आंधी का इन पर बहुत असर होता है और ज़ोर की वर्षा से इन के बह जाने या मारे जाने का भय रहता है। कीड़ों, चूहों और गिलहरियों के हमले की भी इन्हें सम्भावना रहती है। छोटे पौधों की वृद्धि सन्तोषजनक शीघ्र होती है परन्तु बाद में यह कुछ मन्द हो जाती है।

प्राकृतिक अवस्थाओं में शीत ऋतु में और ग्रीष्म ऋतु के कुछ भाग में फल वृक्ष पर से गिरते हैं। ऊपर के मांसल आवरण के सूख जाने पर और अन्दर की कठोर गुठली सहित फट जाने पर बीज बाहर निकल पड़ते हैं। हिरण फलों को खा लेते हैं। जुगाली करते समय कठोर गुठली ज़मीन पर गिर पड़ती है और पड़ी-पड़ी सूख कर फट जाती है जिस से बीज ज़मीन पर बिखर पड़ते हैं। अंकुरोत्पत्ति वर्षा-ऋतु के प्रारम्भ में हो जाती है, परन्तु बहुत अधिक उदाहरणों में प्राकृतिक उत्पत्ति कम ही देखने में आती है। इस का कारण सम्भवतः कुछ तो यह हो कि बीजों की जननशक्ति बहुत उच्च नहीं है, परन्तु मुख्यतया शायद यह है कि प्रारम्भिक अवस्थाओं में नवजात पौधे बहुत अधिक नाजुक होते हैं और कीड़ों से खाये जाने के सर्वथा योग्य होते हैं। प्राकृतिक अवस्थाओं में पौधे की वृद्धि सम्भवतः

धीमी होती है।

पाले और तेज आंधी दोनों का पौधे पर शीघ्र असर पड़ता है। तीव्र पाले में फल सफेद से हो जाते हैं जैसे कि चबाले गये हों। भारतीय प्रायद्वीप में १८६६-१९०० में आंवले के पेड़ों को आंधी से असाधारण हानि हुई थी। इसी तरह १९१३-१४ के शुष्क सालों में हानि हुई थी। अनेकों वृक्ष मारे गये थे, तने से नीचे की ओर दरारें पड़ जाना एक व्यापी हानि थी। वृक्ष की पतली छाल धूप से नाम मात्र ही रक्षा कर पाती है।

वृक्ष के तने को ज़मीन से थोड़ा ऊँचे से काट लिया जाय तो काटे हुये स्थान से बहुत सी नवीन शाखाएँ निकल आती हैं। महीने के अनुसार इन शाखाओं की संख्या कम या अधिक होती है। अप्रैल से सितम्बर तक विभिन्न मासों में काटने से नवीन शाखाओं की संख्या इस प्रकार थी—अप्रैल १०० मई ६५, जून ६०, जुलाई १००, अगस्त १०० और सितम्बर १००। एक साल पुरानी नवीन शाखाओं की औसत ऊँचाई का माप ७.४ फीट था।

इतिहास

देवताओं का प्रिय होने से भारतवासी आंवले के वृक्ष को बहुत पवित्र मानते हैं। पत्र, पुष्पमालाएँ आदि चढ़ा कर इस

तो एक या दो सबल पौधे तेज़ी से बढ़ कर अन्य पौधों को दबा लेते हैं। पहले कुछ मासों में ये कुछ नाजुक होते हैं।

आंधी का इन पर बहुत असर होता है और ज़ोर की वर्षा से इन के बह जाने या मारे जाने का भय रहता है। कीड़ों, चूहों और गिलहरियों के हमले की भी इन्हें सम्भावना रहती है। छोटे पौधों की वृद्धि सन्तोषजनक शीघ्र होती है परन्तु बाद में यह कुछ मन्द हो जाती है।

प्राकृतिक अवस्थाओं में शीत ऋतु में और ग्रीष्म ऋतु के कुछ भाग में फल वृक्ष पर से गिरते हैं। ऊपर के मांसल आवरण के सूख जाने पर और अन्दर की कठोर गुठली सहित फट जाने पर बीज बाहर निकल पड़ते हैं। हिरण फलों को खा लेते हैं। जुगाली करते समय कठोर गुठली ज़मीन पर गिर पड़ती है और पड़ी-पड़ी सूख कर फट जाती है जिस से बीज ज़मीन पर बिखर पड़ते हैं। अंकुरोत्पत्ति वर्षा-ऋतु के आरम्भ में हो जाती है, परन्तु बहुत अधिक उदाहरणों में प्राकृतिक उत्पत्ति कम ही देखने में आती है। इस का कारण सम्भवतः कुछ तो यह हो कि बीजों की जननशक्ति बहुत उच्च नहीं है, परन्तु मुख्यतया शायद यह है कि प्रारम्भिक अवस्थाओं में नवजात पौधे बहुत अधिक नाजुक होते हैं और कीड़ों से खाये जाने के सर्वथा योग्य होते हैं। प्राकृतिक अवस्थाओं में पौधे की वृद्धि सम्भवतः

धीमी होती है।

पाले और तेज आंधी दोनों का पौधे पर शीघ्र असर पड़ता है। तीव्र पाले में फल सफेद से हो जाते हैं जैसे कि उबाले गये हों। भारतीय प्रायद्वीप में १८६६-१९०० में आंवले के पेड़ों को आंधी से असाधारण हानि हुई थी। इसी तरह १९१३-१४ के शुष्क सालों में हानि हुई थी। अनेकों वृक्ष मारे गये थे, तने से नीचे की ओर दरारें पड़ जाना एक व्यापी हानि थी। वृक्ष की पतली छाल धूप से नाम मात्र ही रक्षा कर पाती है।

वृक्ष के तने को ज़मीन से थोड़ा ऊँचे से काट लिया जाय तो काटे हुये स्थान से बहुत सी नवीन शाखाएँ निकल आती हैं। महीने के अनुसार इन शाखाओं की संख्या कम या अधिक होती है। अप्रैल से सितम्बर तक विभिन्न मासों में काटने से नवीन शाखाओं की संख्या इस प्रकार थी—अप्रैल १०० मई ६५, जून ६०, जुलाई १००, अगस्त १०० और सितम्बर १००। एक साल पुरानी नवीन शाखाओं की औसत ऊँचाई का माप ७.४ फीट था।

इतिहास

देवताओं का प्रिय होने से भारतवासी आंवले के वृक्ष को बहुत पवित्र मानते हैं। पत्र, पुष्पमालाएँ आदि चढ़ा कर इस

की पूजा करते हैं ।^१ उन का विश्वास है कि आंवला सब पापों को दूर कर देता है ।^२

आंवले के वृक्ष के बारे में एक पौराणिक गाथा इस प्रकार प्रसिद्ध है ।^३ भगवती और लक्ष्मी एक बार तीर्थ यात्रा को

- १ नमाम्यामलकीं देवीं पत्रमालादलंकृताम् ।
शिवविष्णुप्रियां दिव्यां श्रीमतीं सुन्दरप्रभाम् ॥

—गरुड पुराण, अ० २१५ ।

- २ चात्री हरति पातकम् ।

—स्कन्द पुराण ।

- ३ कदाचित् देवयात्राया प्रभासे पुण्यतीर्थके ।
सर्वे देवाः समायाताः दिने पुण्ये च कुत्रचित् ॥
तत्राहञ्च स्वयं लक्ष्मीरेकस्थाने समागते ।
तत्रावयोर्मतिर्जाता शिवविष्णुप्रपूजने ॥
अहं श्रियमवोचञ्च सामुद्रि शृणु मे मतिम् ।
स्वकल्पितेन द्रव्येण पूजयेऽहं हरिं प्रभुम् ॥
मामुवाच ततो लक्ष्मी गद्गदा सरभाषिणी ।
ममाप्येवं मतिर्जाता त्वमवोचः स्वयं यथा ॥
स्वकल्पितेन द्रव्येण पूजयेऽहं भिलोचनम् ।
सजये विजये देवि । नावेम्भूतयोस्तदा ॥
नयनेषु सुजातानि अमलाभ्रजलानि च ।
तानि नौ नयनेभ्यश्च निपेतुर्भुवि हे सखि ! ॥

निकलीं । भगवती ने लक्ष्मी से कहा, देवि ! आज मैं स्वकल्पित किसी नवीन द्रव्य से हरि की पूजा करनी चाहती हूं । लक्ष्मी ने उत्तर दिया कि त्रिलोचन को भी किसी नये पदार्थ से पूजने की हमारी इच्छा है । फिर दोनों की आंखों से निर्मल अश्रुजल भूमि पर गिरा । उसी से माघ मास के शुक्लपक्ष की एकादशी को आंवले की उत्पत्ति हुई । इस वृत्त को देख कर देव और ऋषि आनन्दोल्लसित हो उठे । तुलसी और बिल्व के समान ही यह पवित्र माना जाता है । इस के पत्तों से शिव और विष्णु दोनों की पूजा

ततो जाता द्रुमाः पृथ्वा चत्वारो विमलप्रभाः ॥

ख्याता आमलकी नाम्ना जाता कादमलाद् यतः ।

श्यामलच्छदवृन्दास्ते कर्बूरस्कन्धमूलकाः ॥

शिराग्रयितपत्रालीपत्रमालाकपत्रका ।

बिल्वस्य च तुलस्याश्च ये गुणा कथिता सखि ॥

ते ते गुणाः एव आमलक्यां समाहिताः ।

पत्रमालादलैरस्याः शिवविष्णुसुरेश्वरौ ॥

सर्वथा पूजितौ स्यातां सर्वयौ नास्त्यत्र संशयः ।

माघे मासि सितायां तामेकादश्या समुद्रवाम् ॥

शुभामलकीं दृष्ट्वा समेताः सर्वदेवता ।

न्हायस्ते सशिष्याश्च हर्षमापुः परं तदा ॥

होती है। माघ मास की एकादशी को इस की उत्पत्ति होने से उस दिन विष्णु देव की इस से पूजा करने से देव प्रसन्न होते हैं।

यह कथा गरुड़ पुराण के २१५ वें अध्याय में विस्तार से लिखी गई है। पुराणकार ने इस में माघ मास के साथ आंवले का विशेष सम्बन्ध स्थापित किया है। मैंने इस पर आयुर्वेदिक दृष्टि से विचार किया और माघ मास में आंवले के महत्व को जानना चाहा। करीब नवम्बर में आंवला बाजार में बिकने आ जाता है। प्रायः मार्च के अन्त तक बिकता रहता है और उस के बाद हरे आंवले का मौसिम समाप्त हो जाता है। मौसिम के अन्तिम दिनों के आंवले को चेती आंवला कहते हैं। मौसिम के आरम्भ-काल नवम्बर में जो आंवला बिकता है वह रस और वीर्य से सम्यक्तया भरपूर नहीं होता। माघ में जा कर यह पकने लगता है और आधे चैत तक यह इसी अवस्था में रहता है। यही काल है जिसमें आंवले के अन्दर रसायन और शक्ति देने वाले गुणों का बाहुल्य होता है। माघ मास में आंवले के अन्दर गुणों का परिपाक होने लगता है हमारी सम्मति में इसी लिए पुराणकार ने इस मास के साथ आंवले के विशेष महत्व का प्रतिपादन किया है। वृद्ध के प्रति पूज्य भाव होने से लोग इस को भली भांति

सींचते रहेंगे जिस से फलों के लिए आवश्यक पोषण उन्हें मिलता रहेगा ।

बहुत दिनों से आंवले ने लोकोक्ति में स्थान प्राप्त कर लिया है । संस्कृत के 'हस्तामलकवत्' मुहाविरे का हम दैनिक भाषा में बहुत प्रयोग देखते हैं । तुलसीदास ने भी इस मुहाविरे का प्रयोग किया है— 'जानहि तीनि काल निज ज्ञाना । करतलगत आमलक समाना ।'

घरेलू चिकित्सा में अनुमान से औषध लेने के लिए आंवले को परिमाण मान लिया करते थे । बच्चों को दी जाते वाली दवा का परिमाण बताते हुए कश्यप ने लिखा है कि विडङ्ग से बढ़ाते हुए आंवले से अधिक मात्रा में ओषधि नहीं दी जानी चाहिए ।^१

कौटिल्य (३२१--२६८ ईस्वीपूर्व) ने आंवले को खट्टे फलों में गिनाया है ।^२ इस का सिरका भी बनाया जाता

१ विडङ्गफलमात्रं तु जातमात्रस्य देहिनः ।

मेघजं मधुसर्पिर्भ्यां मतिमानुपकल्पयेत् ॥

वर्धमानस्य तु शिशोर्मासे मासे विवर्धयेत् ।

अथामलकमात्रं तु परं विद्वान्न वर्धयेत् ॥

—का० सं०, सू०, लेहाध्याय ।

२ वृक्षाम्लकरमर्दाम्रविदलामलकमातुलङ्गकोलबदरसौवीरक-

था ।^१

वैशम्पायन ने राजा शूद्रक को बताया था कि उस ने पके आंवले के फलों को जी भर कर स्वाद में खाया है ।^२

हुपनत्सांग (६२६-६४५) ने लिखा है कि पुंछ (काश्मीर) में ईख भी बहुत होती है, परन्तु अंगूर नहीं होते । आंवला, गूलर और मोच इत्यादि फल अच्छे तथा अधिक बोये जाते हैं । इन के जंगल के जंगल लगे हुए हैं । इन का स्वाद बहुत उत्तम होता है ।^३

माघ ने पहाड़ों पर चढ़ते रहने के कारण अत्युन्नत स्तनों वाली, आश्चर्य से फैलाये हुए नेत्रों से हरि को देखती हुई पहाड़ी स्त्रियों का निवास आमलकी बन में बताया है ।^४

परुषकादिः फलाम्लवर्गः ।

—कौटिलीय अर्थशास्त्र, आधि० २, अ० ३६ ।

१ देखें—कौ० अ०, अधि० २, अ० ३६ ।

२ किं वा नास्वादितम् । ... चूर्णितानि स्वेच्छया प्राचीना-मलकीफलानि ।

—कादम्बरी, पूर्वभाग ।

३ हुपनत्सांग का भ्रमण वृत्तान्त, अ० ३, पृ० १६३ ।

४ शैलाधिरोहाभ्यसनाधिकोद्धुरैः पयोधरैरामलकी वनाश्रिताः ।
तं पर्वतीयप्रमदाश्च चायिरे विकासविरुफारित विभ्रमेक्षणाः ॥

—शिशुपालवध, सर्ग १२; ५१ ।

मलक्का नदी और नगर का नाम विश्वास किया जाता है कि संस्कृत के मूल शब्द 'आमलक' से निकला है। पश्चिमीय मलयेशिया से मदोएरा के पूर्व तक यह नाम सामान्य रूप से व्यवहृत होता है।

उपयोगी भाग

हरा और सूखा फल, बीज, पत्र, मूल, त्वक् और पुष्प।

संग्रह

फाल्गुन-चैत्र में पूर्ण पक हो जाने पर वृक्ष पर से फलों को तोड़ लें और अच्छी तरह सुखा कर शुष्क वायुरहित कन-स्तरों में रखें।

मात्रा

ताजे फल का स्वरस — आधा से एक औंस।

सूखे फल का चूर्ण — चालीस से साठ ग्रेन।

रासायनिक संघटन

यह सुविदित है कि फलों के पकने पर उन में टैनिन एसिड की प्रतिशतकता घट जाती है। आंवला जब छोटा होता है तो पूरी तरह से कसेला होता है। जब पक जाता है तो भक्ष्य हो जाता है और स्वादु लगता है। अपक्व आंवले के शुष्क गूदे में पैंतीस प्रतिशतक टैनिन एसिड होता है परन्तु पके हुए फल में अत्यल्प परिमाण में मिलता है। फल के गूदे में गैलिक एसिड, निर्यास, शर्करा, एल्ब्युमिन,

काष्ठोज (सेलुलोज) और खनिज पदार्थ भी होते हैं ।

भारत और स्याम में टैनीन देने वाला यह अच्छा वृक्ष है । टैनीन निकालने के लिए फल, पत्ते और छाल सब समान रूप में प्रयुक्त होते हैं । भारत में किये गये विश्लेषण में—गुठली में छः प्रतिशतक, फल के छिलके में छब्बीस से तीस प्रतिशतक, सम्पूर्ण फल में उन्नीस प्रतिशतक, छोटी शाखाओं की छाल में उन्नीस से चौबीस प्रतिशतक और पत्तों में २३.७ प्रतिशतक टैनीन था । जावा में विभिन्न स्रोतों से प्राप्त की गई छाल में यह प्रतिशतकता १२.८ से २४ तक भिन्न-भिन्न थी ।

गुठली रहित फल का गूदा १००° शतांश पर सुखाया गया है । इस का संघटन निम्नलिखित ज्ञात हुआ—

ईथर सत्व का एक्स्ट्रैक्ट (गैलिक एसिड आदि)	११.३२
एल्कोहलिक सत्व (टैनीन, शर्करा आदि)	३६.१०
जलीय सत्व (गोंद आदि)	१३.७५
सोडा सत्व (एल्ब्युमिन आदि)	१३.०८
अशुद्ध काष्ठोज (सेलुलोज)	१७.८०
खनिज पदार्थ	४.१२
नमी और कमी	३.८३

१००.००

टैनीन निकालने के बाद फेहलिंग से गूदे के कषाय की परीक्षा में दस प्रतिशतक ग्लूकोज पाया गया ।

विश्लेषण करने पर बीजों में एक स्थिर तेल और गन्ध वाला रेज़िन पाया गया है । बीजों में कोई चारीयतत्व (एल्कलायड) नहीं प्राप्त हुआ ।

पत्तों में अठारह प्रतिशतक टैनिक एसिड होता है और थोड़े परिमाण में उड्डुनशील तेल या स्निग्ध पदार्थ होता है ।

गुण^१

आंवला हलका, शीतल और रूक्ष है । भोजनों में रुचि उत्पन्न करने वाला यह फल जी मचलाने को और उलटियों को रोकता है । पेट में गुड़गुड़ आवाज़ होने की अवस्था में, अफारे में और मलबन्ध में गुणकारी है । अत्यन्त शीतल होने से प्यास और शरीर की गरमी तथा जलन को शान्त करता है । पसीना लाता है, बुखार तथा उस की दाह को शान्त करता है, पित्त नाशक होने से पेटिक रोगों में गुणकारी है । बहते हुए खून को बन्द करने का (रक्तपित्त-

१क चक्षुष्यं सर्वदोषघ्नं वृष्यमामलकीफलम् ।

-सु०, सू०, अ० ४६; १४३ ।

ख स्वेदमेदःकफोत्क्लेदपित्तरोगविनाशनम् ।

रूक्षस्वादुकषायाम्लं कफपित्तहरं परम् ॥

-च०, सू०, अ० २७; १४५ ।

ग धात्री तद्विशेषेण वृष्या शीतैव वीर्यतः ॥

-द्र० गु० सं०, फल०; ३८ ।

नाशक) गुण इस में विशेष रूप से कहा जाता है । कफ-
नाशक है । शरीर में बढ़ी हुई चरबी को छांटता है । कफ-
पित्त के रोगों में यह परम गुणकारी है । आंखों तथा बालों
के लिए हितकर, टूटी हुई हड्डियों को जोड़ने वाला और
शोफ (इडीमा) नाशक है । अमृत के समान गुणकारी यह
थकान दूर करता है, मूत्र तथा प्रजनन संस्थान के रोगों में

घ आमलकं कषायाम्लं मधुरं शिशिरं लघु ।

दाहपित्तवमीमेहशोफघ्नं च रसायनम् ॥

कटुमधुरकषायं किञ्चिदम्लं कफघ्नम्

रुचिकरमतिशीतं हन्ति पित्तास्रतापम् ।

श्रमवमनविबन्धाध्मानविष्टम्भदोष-

प्रशमनममृताभं चाऽऽमलक्याः फलं स्यात् ॥

-रा० नि०, आम्नादि०; १५६ ।

ङ कषायं कटु तिक्तोष्णं स्वादु चाऽऽमलकं हिमम् ।

रसं त्रिदोषहृद् वृष्यं ज्वरघ्नं च रसायनम् ॥

-ध० नि०, गुडूच्यादि० ।

च रक्तपित्तप्रमेहघ्नं परं वृष्यं रसायनम् ॥

-भा० प्र०, हरीतक्यादि०; ३६ ।

छ तद्वद्वात्री स्वेदमेदोहराऽम्ला शुक्रला हिमा ।

भग्नसन्धानकृत्केश्या पिपासाकपपित्तहृत् ।

-कै० दे० नि०, ओ०व०; २२३ ।

लाभ करता है, वीर्य बढ़ाता है और अत्यन्त वृह्य रसा-
यन है ।

लवण रस को छोड़ कर शेष सब रस आंवले में
होते हैं ।^१

सूखे आंवले के गुण

तिक्त, अम्ल, कटु, मधुर तथा कषाय रक्तयुक्त है ।
त्रिदोषनाशक है, पित्त और कफ को विशेष रूप से नष्ट
करता है । चरबी (मेद रोग) को घटाता है, विष प्रभावों
को हटाता है । टूटी हुई हड्डियों को जोड़ने वाला, आंखों
तथा बालों के लिए हितकर, शरीर की धातुओं में वृद्धि कर
के कान्ति उत्पन्न करने वाला है ।^२

आंवले के बीजों के गुण

भाव मिश्र कहते हैं कि फल में जो वीर्य, गुण या
प्रभाव होते हैं वही गुण उस की गुठली या बीजों में सम-

ज तद्वद्भात्रीफल वृष्यं विशेषाद्रक्तपिशजित् ॥

—म० वि० नि०, अभगादि० २६ ।

१ विद्यादामलके सर्वान् रसाल्लवणवर्जितान् ॥

—च०, सू०, अ० २७; १४४ ।

२ आमलस्य फल शुष्कं तिक्तमम्लकटु स्मृतम् ॥

मधुरं तुवरं केश्यं भग्नसन्धानकारकम् ।

धातुवृद्धिकरं नेत्र्यं लेपनात् कान्तिकारकम् ॥

पिसं कफं तृषां घर्मं मेदोरोग विषं तथा ।

त्रिदोष नाशयत्येवं पूर्वाचार्यैर्निरूपितम् ॥

झने चाहिएं ।^१ आंवले के बीज मधुर, कषाय, वायु तथा पित्तनाशक, प्यास और वमन को शान्त करने वाले हैं ।
बुखार, खांसी, दमा और प्रदर को नष्ट करते हैं ।
पुंस्त्वशक्ति को बढ़ाते हैं ।^२

आंवले और हरड़ के गुणों में अन्तर^३

आंवले के गुण हरड़ के समान ही हैं । दोनों के गुणों

१ यस्य यस्य फलस्यैव वीर्यं भवति यादृशम् ।
तस्य तस्यैव वीर्येण मज्जानामपि निर्दिशेत् ॥

—भा० प्र०, हरीतक्यादि०; ४१ ।

२क ... मधुरः कषायः पित्तनाशनः ।
तृष्णाच्छर्द्यनिलघ्नश्च धात्रीमज्जा ... ॥

—द्र० गु० सं०, फल०; ४२ ।

ख तन्मज्जा तु तुवरः स्वादुस्तृद्धर्द्यनिलपित्तहा ॥

—कै० दे० नि०, ओ० व०; २२३ ।

ग तन्मज्जा प्रदरच्छर्दिर्वातपित्तज्वरापहा ।
कषाया मधुरा वृष्या श्वासकासनिबर्हणा ॥

३क तान् गुणांस्तानि कर्माणि विद्यादामलकीष्वपि ।
यान्युक्तानि हरीतक्या वीर्यस्य तु विपर्ययः ॥

—च०, चि० ।

ख तद्वदामलकशीतमम्लं पित्तकफापहम् ।

—अ० ह०, सू०, अ० ६; १५८ ।

ग हरीतकीसमं धात्रीफलं किन्तु विशेषतः ।

—भा० प्र०, हरीतक्यादि० ; ३६ ।

में अन्तर यह दिखाया जाता है कि आंवला शीत वीर्य है, हरड़ उष्ण वीर्य । इस में अम्ल रस विशेष रूप से विद्यमान रहता है, हरड़ में कषाय रस प्रबल है । यह मुख्यतया पित्तकफनाशक है, हरड़ वातकफनाशक है ।

त्रिदोषहर होने में हेतु

अम्ल रसयुक्त होने से वायु को, मधुर रसयुक्त तथा शीतल होने से पित्त को और रुद्ध तथा कषायरसयुक्त होने से कफ को दूर करता है ।^१

१क हन्ति वातं तदम्लत्वात् पित्तं माधुर्यशैत्यतः ॥

कफं रुद्धकषायत्वात् फलेभ्योऽप्यधिकं तु तत् ॥

—सु०, सू०, अ० ४६; १४३ ।

ख अम्लभावाज्जयेद्वातं पित्तं माधुर्यशैत्यतः ।

कफं रुद्धकषायत्वादेवमेतत्त्रिदोषनुत् ॥

—कृष्णात्रेय ।

ग हन्ति वातं तदम्लत्वात् पित्तं माधुर्यशैत्यतः ।

कफं कटुकषायत्वात् फलेभ्योऽप्यधिकं च तत् ॥

—द्र० गु० सं०, फल०; ३६ ।

घ हन्ति वातं तदम्लत्वात्पित्तं माधुर्यं शैत्यतः ।

कफं रुद्धकषायत्वात्फलं धात्र्यास्त्रिदोषजित् ॥

—भा० प्र०, हरीतक्यादि०; ४० ।

ङ अम्लत्वात्पवनं हन्ति पित्तं माधुर्यशैत्यतः ।

कफं रुद्धकषायत्वात्तस्मात्किमधिकं फलम् ॥

—म० वि० नि०, अभयादि० २६ ।

विपरीत क्यों नहीं ?

मदनपाल ने यहां शंका उठाई है कि अम्ल रसयुक्त होने से आंवला पित्त को क्यों नहीं पैदा करता ? मधुर और शीत होने से कफ को प्रकुपित क्यों नहीं करता ? रुक्ष तथा कषाय रसयुक्त होने से वायु को क्यों नहीं दूषित करता ? इस का समाधान वे करते हैं कि रस आदि हेतुओं के अतिरिक्त भी इस में विशेष सामर्थ्य है जिसके कारण यह त्रिदोषघ्न है ।^१

योग

आमलकी तेल—आमलकी स्वरस चार सेर, तिल तेल एक सेर, मन्दाग्नि पर तेल सिद्ध करें । छारण-पत्र (filter paper) में छान कर मनोनुकूल गन्ध डाल दें । यह तेल प्रति दिन सिर पर लगाया जाता है । सिर के दाह और शूल

च अम्लत्वाद्वातहरं प्रोक्तं माधुर्याच्चैव शीततः ।

पित्तनाशकरं चोक्तं सूक्ष्मत्वाच्च कषायतः ॥

कफनाशकरं प्रोक्तं पूर्वैर्वैद्यविशारदैः ।

१ कुर्यात्पित्तं तदम्लत्वात्कफं माधुर्यशैत्यतः ।

वातं रुक्षकषायत्वादेवं किञ्च विपर्ययः ॥

धान्यास्त्रिदोषहन्तृत्वं शक्त्यैव मुनिभिः स्मृतम् ।

सम्भावनादवशादुक्ता रसादेरपि हेतुता ॥

—म० वि० नि०, अभयदि०; २६-३० ।

को यह शान्त करता है ।

आमलक्यावलेह^१—आंवले के १ मन ११ सेर १६ तोला खरस में पांच सेर खण्ड डाल कर मंदाग्नि पर पकाएँ । मैल को नितार कर फेंक दें और गाढ़ा होने पर आग से उतार कर निम्न ओषधियों के चूर्ण को मिला दें—पिप्पली १ सेर ४८ तोला, मुलहठी १६ तोला, द्राक्षा १ सेर ४८ तोला, सोंठ ६ तोला और वंशलोचन १६ तोला । ठंडा होने पर १ सेर ४८ तोला शहद मिला लें ।

मात्रा—आधे से एक तोला ।

रोग—पाण्डु, कामला, पित्तरोग, शुक्रमेह आदि ।

आमलकी खण्ड^२—पचास तोला कूष्माण्ड (पेठे)

१ रसममालकानान्तु सुशुद्धं यन्त्रपीडितम् ।

द्रोणं पचेच्च मृद्वग्नौ तत्र चेमानि दापयेत् ॥

चूर्णितं पिप्पलीप्रस्थं मधुकं द्विपलं तथा ।

प्रस्थं गोस्तनिकायाश्च द्राक्षायाः किल पेक्षितम् ॥

शृङ्गवेरपले द्वे तु तुगाक्षीर्याः पलद्वयम् ।

तुलाद्धं शर्करायाश्च घनीभूतं समुद्धरेत् ॥

मधुप्रस्थसमायुक्तं स्नेहयेत् पलसम्मितम् ।

हलीमकं कामलाच्च पाण्डुत्वञ्चापकर्षति ॥

—भै० र०, पाण्डुरोगाधि०; १०८-१११ ।

२ स्विन्नपीडितकूष्माण्डन्तुलार्धं भृष्टमाज्यतः ।

को आठ तोले घी में भूनें । इस में आमलकी स्वरस, कूष्माण्ड स्वरस और शर्करापानक प्रत्येक सोलह तोले डाल कर पाक करें । पाक हो जाने पर निम्नलिखित ओषधियों का चूर्ण डाल दें । पिप्पली, जीरा, सोंठ, प्रत्येक दो तोला, काली मिरच एक तोला, धनियां, तालीस पत्र, चतुर्जातक, मोथा, प्रत्येक चौथाई तोला । शीत हो जाने पर आठ तोला शहद मिला दें ।

मात्रा—आधे से एक तोला ।

रोग—वमन, हृदयशूल, मूच्छा, अम्लपित्त, पित्तज्वर, उदर शूल, कमर दर्द, रक्तपित्त, खांसी, दमा आदि ।

प्रस्थाद्धं तुल्यखण्डञ्च पचेदामलकीरसात् ॥
 प्रस्थे सुस्विन्ने कूष्माण्डरसप्रस्थं विघट्टयन् ।
 दर्व्यापाकं गते तस्मिंश्चूर्णीकृत्य निधापयेत् ॥
 द्वे द्वे पले कणाजाजीशुण्ठीनां मरिचस्य च ।
 पलं तालीसधान्याकचातुर्जातकमुत्तकम् ॥
 कर्षप्रमाणं प्रत्येकं प्रस्थाद्धं मात्तिकस्य च ।
 पक्तिशूलं निहन्त्येव दोषत्रयं कृतञ्च यत् ॥
 छर्द्यम्लपित्तमूच्छाश्च कासश्वासाधसेचकम् ।
 हृन्मूलं रक्तपित्तञ्च पृष्ठशूलञ्च नाशयेत् ॥
 श्मयनमिदं श्रेष्ठं खण्डामलकसंश्लक्ष्णम् ।

—चं० से० सं०, परिणामशूल चि०; ८४-८६ ।

घात्र्यरिष्ट^१—दो हजार ताजे आंवलों को कुण्डी सोटे में पीस कर रस निकालें। इस में पिप्पली चूर्ण सोलह तोले और खाण्ड पांच सेर मिला कर पाक करें। खाण्ड घुल जाने पर उतार लें। ठण्डा होने पर आंवले के रस में अष्टमांश मधु मिला कर घी से स्विन्न किये हुए घड़े में रख दें। उचित काल बाद अरिष्ट बन जाने पर छान कर प्रयोग करें।

मात्रा—सवा से ढाई तोला।

रोग—कामला, पाण्डु, हृद्रोग, कास, हिक्का आदि।

आमलाद्य लोह^२—आमला, पिप्पली और मिश्री प्रत्येक

- १ घात्रीफलसहस्रे द्वे पीडयित्वा रसं भिषक् ।
 क्षौद्राष्टभागं पिप्पल्याश्चूर्णाद्धं कुडवान्वितम् ॥
 शर्कराद्धं तुलोन्मिश्र पक्वं स्निग्धघटे स्थितम् ।
 प्रपिवेत् पाण्डुरोगात्तो जीर्णो हितमिताशनः ॥
 कामलापाण्डुहृद्रोगवातासृग्विषमज्वरान् ।
 कासहिकारुचिश्चासानेषोऽरिष्टः प्रणाशयेत् ॥

—भै० र०, पाण्डुरोगाधि०; १११-११२।

चरकसंहिता, चिकित्सित स्थान, अध्याय १६, श्लोक ११० से ११३ तक में यही घात्र्यरिष्ट पढ़ा गया है।

- २ आमलापिप्पलीचूर्णं तुल्यया सितया सह ।
 रक्तपित्तहरं लौहं योगराजमिदं स्मृतम् ॥
 घृण्याग्निदीपनं बल्यमम्लपित्तविनाशनम् ।
 पित्तोत्थानपि वातोत्थान् निहन्ति विविधान् गदान् ॥

—र० सा० सं०, रक्तपित्ताधि०।

एक तोला, लोह भस्म तीन तोला, चूर्ण बनायें ।

मात्रा—दो रत्ती ।

रोग—रक्तपित्त, अम्लपित्त, अग्निमान्द्य आदि ।

धात्री लोह (१)^१—आंवले का चूर्ण चौंसठ तोला, लोह भस्म बत्तीस तोला, मुलहठी का चूर्ण सोलह तोला, सब को आंवले के स्वरस से सात भावनाएँ दें । सुखा कर शुष्क पात्र में बन्द कर के रखें ।

मात्रा—तीन से छः रत्ती ।

रोग—रक्तपित्त, अग्निमान्द्य, अफारा, पेट में गुड़गुड़ होना, पित्त के रोग ।

अनुपान—घी और शहद ।

- १ धात्री चूर्णस्याष्टौ पलानि चत्वारि लौहचूर्णस्य ।
 यष्टीमधुकरजश्च द्विपलं दद्यात्पुटे घृष्टम् ॥
 धान्याश्च क्वाथेन तच्चूर्णं भाव्यश्च सप्ताहम् ।
 चण्डातपेन संशुष्कं भूयः पिष्टं घटे स्थितम् ॥
 घृतेन मधुना युक्तं भोजनादन्तमध्यतः ।
 श्रीन्वारान्भक्षयेन्नित्यं पथ्यं दोषानुबन्धतः ॥
 भक्तस्यादौ नाशयेच्च दोषान्पित्तकृतानपि ।
 मध्ये चानाहविष्टब्धं तथान्ते आग्निमन्द्यताम् ।
 रक्तपित्तसमुद्भूतान् रोगान्हन्ति न संशयः ॥

धात्री लोह (२)^१—बत्तीस तोले जौ कौ एक सेर
अड़तालीस तोले पानी में चौंसठ तोला पानी शेष रहने तक
पकाएँ । इस क्वाथ में मण्डूर भरम बत्तीस तोला, शतावरी
का स्वरस चौंसठ तोला, आंवले का स्वरस चौंसठ तोला,
दही बत्तीस तोला, दूध बत्तीस तोला, विदारीकन्द का स्वरस

१ कुडवं शुद्धमण्डूरं यवञ्च कुडवन्तथा ।
पाकार्थञ्च जलं प्रस्थं चतुर्भागावशेषितम् ॥
शतावरीसस्याष्टावामलक्या रसस्य च ।
तथा दाध पयो भूमिकूष्माण्डस्य चतुःपलम् ॥
चतुःपलमिक्षुरसं दद्यात्तत्र विचक्षणः ।
प्राक्षिपेर्जारक धान्यं त्रिजात करिपिण्णली ॥
मुस्तं हरीतकीं चैव अश्रुं लौहं कटुत्रयम् ।
रेणुका त्रिफला चैव तालीशं स्वर्णकेशरम् ॥
कटुकं मधुकं रास्ना चाश्वगन्धा च चन्दनम् ।
एतेषा काषिकं भागं चूर्णयित्वा विनिःक्षिपेत् ॥
भोजनाद्यवसाने च मध्ये चैव समाहितः ।
तोलैकं भक्षयेन्नित्यमनुपानं पयस्तथा ॥
शूलमध्वविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ।
वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥
परिणामसमुत्थञ्च अन्नद्रवभवं तथा ।
सर्वशूलहरं श्रेष्ठं धात्रीलौहमिदं शुभम् ॥

—२० सा० स०, शूलगरोगचि०; १६-२३ ।

बत्तीस तोला, गन्ने का रस बत्तीस तोला डाल कर पकाएँ ।
पाकशेष काल में जीरा, धनियां, छोटी इलायची, तेजपत्र,
दालचीनी, गज पिप्पली, मोथा, हरड़, अभ्रक भस्म, लोह भस्म,
सोंठ, मरिच, पिप्पली, रेणुका, हरड़, बहेड़ा, आंवला, तालीश-
पत्र, नागकेसर, कुटकी, मुलहठी, रास्ना, असगन्ध और लाल
चन्दन प्रत्येक का चूर्ण मिलाएँ ।

मात्रा—चार से आठ रत्ती ।

रोग—शूल, अम्लपित्त, आदि ।

अनुपान—दूध ।

धात्री षट्पलक घृत^१—घी एक सेर अड़तालीस तोला,
आंवले का खरस बारह सेर चौंसठ तोला; कल्कार्थ—पिप्पली,
पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, यवक्षार, प्रत्येक आठ तोला,
पाकार्थ जल बारह सेर चौंसठ तोला । सिद्ध कर के खाण्ड
और सन्धव मिला कर प्रयोग करें ।

मात्रा—आधा तोला ।

रोग—गुल्म रोग

१ धात्रीफलानां खरसैः षडङ्ग पाचयेद् घृतम् ।

शर्करासैन्धवोपेतं तद्वितं सर्वगुल्मनाम् ॥

—भै० र०, गुल्मरोगाधि०, ८४ ।

आमलक घृत^१—प्रशस्त भूमि में उत्पन्न और अपने स्वाभाविक गन्ध, वर्ण और रस से युक्त आंवले के स्वरस और पुनर्नवा के कल्क से छः सेर बत्तीस तोले घी को यथाविधि सिद्ध करें। आंवले का स्वरस २४ सेर १२८ तोले और पुनर्नवा का कल्क १½ सेर आठ तोले लेना चाहिए। सिद्ध होने पर घृत को छान लें। फिर इसी प्रकार आंवले के स्वरस

१ आमलकाना भूमिजानां कालजानामनुपहतगन्धवर्णरसानामापूर्णरसप्रमाणवर्षायां स्वरसेन पुनर्नवाकल्कसंप्रयुक्तेन सर्पिषः साधयेदाढकं, अतः परं विदारीस्वरसेन जीवन्तीकल्कसंप्रयुक्तेन, अतः परं चतुर्गुणेन पयसा बलातित्रलाकप्रायेण शतावरीकल्कसंप्रयुक्तेन, अनेन क्रमेणैकेकं शतपाक सहस्रपाकं वा शर्कराक्षौद्रचतुर्भागसंयुक्तं सौवर्णं राजते मार्तिके वा शुचौ दृढे घृतभाविते कुम्भे स्थापयेत्। तद्यथोक्तेन विधिना यथाग्नि प्रातः प्रातः प्रयोजयेत्, जीर्णं च क्षीरसर्पिभ्यां शालिषष्टिकमश्नीयात्; अस्य त्रिवर्षप्रयोगाद्वर्षशतं वयोऽजरं तिष्ठति, श्रुतमवतिष्ठते, सर्वाभयाः प्रशाम्यन्ति, अप्रतिहतगतिः स्त्रीष्वपत्यवान् भवति ॥

बृहच्छरीरं गिरिसारसारं स्थिरेन्द्रियं चातिबलेन्द्रियं च।

अभृष्यमन्यैरतिकान्तरूपं प्रशस्तपूजासुखचित्तभाक् च ॥

बलं महद्वर्णविशुद्धिरप्रया स्वरो घनौघस्तनितानुकारी।

भवत्यपत्यं विपुलं स्थिरं च समश्नतो योगमिदं नरस्य ॥

—च०, चि०, अ० १, प्राणकामीय रसायन पाद; ४-६।

और पुनर्नवा के कल्क से पकाएँ । फिर छान लें । इस प्रकार सौ बार पकाएँ । फिर घी को छान कर विदारीकन्द के स्वरस और जीवन्ती के कल्क से पूर्वोक्त विधि से सौ बार पकाएँ । इस में भी प्रत्येक बार विदारीकन्द स्वरस २५ सेर ४८ तोले और जीवन्ती का कल्क १^१ सेर २ तोले लेना चाहिए । तदनन्तर घी को छान कर पुनः घी से चौगुने दूध, बला और अतिबला काथ और शतावरी के कल्क द्वारा पूर्वोक्त विधि से पकाएँ । प्रत्येक बार दूध २५ सेर ४२ तोले, बला और अतिबला भी इतना ही और शतावरी का कल्क डेढ़ सेर दो तोले लेना चाहिए । इसी प्रकार प्रत्येक प्रकार के पाक को एक हजार बार भी कर सकते हैं । घृत सिद्ध हो जाने पर उस से चतुर्थांश खाण्ड और मधु मिलाएँ । खाण्ड और मधु का मिलित प्रमाण डेढ़ सेर दो तोले होना चाहिए जिस में २ पाव ४ तोले शहद और इतनी ही खाण्ड होनी चाहिए ।

इस प्रकार दो विधियों से पाक हुआ । सौ बार पके हुए को शतपाक और हजार बार सिद्ध को सहस्रपाक कहते हैं । शतपाक की अपेक्षा सहस्रपाक अधिक गुणकारी होते हैं । यदि तीनों प्रकार से क्रमशः एक-एक बार पाक किया जाय तो इसे 'एक पाक' कहते हैं । यह सब से न्यून गुण होता है । शतपाक इस से अधिक और सहस्रपाक इस से भी अधिक गुणवान् होता है । खाण्ड और मधु

मिला लेने के बाद घृत को सोने या चांदी के अथवा घृत से भावित दढ़ मृत्पात्र में रखें। कुट्टि प्रावेशिक विधि से अग्निबल के अनुसार इस घृत का प्रातःकाल सेवन करें। घी पच जाने पर दूध और घी से शाली या सांठी के चावल खाएँ।

मात्रा—आधा तोला।

रोग—इस घृत को तीन साल पर्यन्त नियमित सेवन करने से बुढ़ापा दूर हो कर सौ साल आयु होती है। मस्तिष्क उद्बुद्ध होता है। स्मृति शक्ति बढ़ती है। एक बार सुनी हुई बात भूलती नहीं। सब रोग दूर होते हैं। बल और पौरुष बढ़ता है। शरीर सुडौल और पर्वत के समान बलवान् होता है। रूप अत्यन्त सुन्दर और तेजस्वी होता है। शरीर स्वस्थ और चित्त प्रसन्न रहता है। वाणी गम्भीर और प्रभावशाली होती है। लैङ्गिक विकार दूर होते हैं। सेवन करने वाला स्त्री सहवास के योग्य होता है और उस की सन्तानें बहुत पक्कमी होती हैं।

आमलक चूर्ण रसायन^१—६ सेर ३२ तोले आंवले के

१ आमलकचूर्णाढकमेकविशतिरात्रमामलकसहस्रभ्वरसपरि-
पीतं मधुघृताढकाभ्यां द्वाभ्यामेकीकृतमष्टभागपिप्पलीक शर्कराचूर्ण-
चतुर्भागसंयुक्तं घृतभाजनस्थं प्रावृषि भस्मराशौ निदध्यात्, तद्वर्षान्ते
सात्त्विकपथ्याशी प्रयोजयेत्, अस्य प्रयोगाद्वर्षशतमजरमायुस्तिष्ठतीति
समानं पूर्वेण ॥

-च०, चि०, अ० १, प्राणकामीय रसायन पाद : ८।

चूर्ण को एक हजार आंवलों के स्वरस से इकीस बार भावना दें। इस में शहद और घी प्रत्येक १२ सेर १३ छटांक, पिप्पली चूर्ण ६३ तोले, खाण्ड डेढ़ सेर आठ तोले मिलाएँ और घी से भावित मृत्पात्र में रख छोड़ें। प्रावृत् ऋतु में इसे राख के ढेर में गाड़ दें। वर्षा ऋतु समाप्त होने पर निकाल लें।

मात्रा—एक से दो तोला।

रोग—ठीक सात्व्य भोजन करता हुआ मनुष्य इसे सेवन करे तो उस के पास बुढ़ापा नहीं आता और उस की आयु सौ साल होती है। यह उत्कृष्ट रसायन है।

हरीतक्यादि योग^१—दस सेर आंवले के चूर्ण को आंवलों का रस पिला कर सुखाएँ और इस में चतुर्थांश तीक्ष्ण लोहे की भस्म मिलाएँ। इस में हरड़, बहेड़ा, आंवला, हल्दी, शालपर्णी, बच, वायविडङ्ग, गिलोय, सोंठ, मुलैठी और पिप्पली

१ हरीतक्यामलकविभीतकहरिद्रास्थिरावचाविडङ्गामृतवल्ली-विश्वभेषजमधुकपिप्पलीसोमवल्कसिद्धेन क्षीरसर्पिणा मधुशर्कराभ्यामपि च सन्नोयामलकस्वरसपरिपीतशतपलपरिमितमामलकचूर्णमयश्चूर्णचतुर्भाग-संप्रयुक्तं पाणितलमात्रं प्रातः प्रातः प्राश्य यथोक्तेन विधिना सायं सुगद्यूषेण पयसा वा ससर्पिष्कं शालिषष्टिकमश्नीयात्, त्रिवर्षप्रयोगादस्य वर्षशतमजरं वयस्तिष्ठति, अतमवतिष्ठते, सर्वामयाः प्रशाम्यन्ति, विषम-विषीभवति गात्रे, गात्रमश्वत् स्थिरी भवति, अदृश्यो भूतानां भवति।

मिलाएँ। सफेद खैर के कल्क से सिद्ध किए गये दूध से निकाला घी तथा मधु और खाएड मिला कर इसे प्रातः कुटिप्रावेशिक विधि से सेवन करें।

मात्रा—तीन से दस रत्ती। दिन में इसे ३.नेक बार आवश्यकतानुसार दे सकते हैं।

रोग—तीन वर्ष तक इस रसायन के निरन्तर सेवन से वृद्धावस्था से उन्मुक्त हो कर सौ साल आयु होती है। सब रोग दूर हो जाते हैं। शरीर में विष प्रभाव नहीं होता। शरीर पत्थर की तरह कठोर होता है। कोई कृमि तथा अन्य जीव इस रसायन-सेवी के शरीर पर आक्रमण नहीं कर सकते अर्थात् उस की रोग प्रतिरोधक शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि कृमि उस में रोग उत्पन्न नहीं कर सकते।

पथ्य—औषध पच जाने पर सायंकाल मूंग की दाल के रसे या दूध के साथ खूब घी डाल कर शाली या सांठी के चावल खाएँ।

यथाऽमराणाममृतं यथा भोगवतां सुधा ।

तथाऽभवन्महर्षीणां रसायनविधिः पुरा ॥

न जरां न दौर्बल्यं नातुर्यं निधनं न च ।

जगुर्वर्षसदृस्ताणि रसायनपराः पुरा ॥

—च०, चि०, अ० १, अभयामलकीय रसायन पाक्ष ७५-७७ ।

च्यवनप्राश^१—बिल्व, श्योनाक, अरणी, गाम्भारी और पाटला की जड़ की छाल प्रत्येक आठ तोला । बलामूल, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, मुग्दपर्णी, माषपर्णी, पिप्पली, गोखरू, छोटी कटेरी, बड़ी कण्टकारी, काकड़ाशृङ्गी, भुई आंवला, मुनक्का, जीवन्ती, पुष्कर मूल, अगर, हरड़, गिलोय, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक, कचूर, मोथा, पुनर्नवा, मेदा, छोटी

१ बिल्वाग्निमन्थौ श्योनाकः काश्मरी पाटलिर्बला ।
 पर्यश्चतस्रः पिप्पलयः श्वदष्टाबृहतीद्वयम् ॥
 शृङ्गी तामलकी द्राक्षा जीवन्ती पुष्करागुरु ।
 अभया चामृता ऋद्धि जीवकर्षभकौ शठी ॥
 मुस्तं पुनर्नवा मेदा एला चन्दनमुत्पलम् ।
 विदारी वृषमूलानि काकोली काकनासिका ॥
 एषा पलोन्मिताम्भागान् शतान्यमलकस्य च ।
 पञ्च दद्यात्तदैकत्र जलद्रोणे विपाचयेत् ॥
 ज्ञात्वा गतरसान्येतान्यौषधान्यथ तं रसम् ।
 तच्चा मलकमुद्धृत्य निष्कुलं तैलसर्षिषोः ॥
 पलद्वादशके भृष्टा दत्त्वा चार्धतुला भिषक् ।
 मत्स्यैण्डकायाः पूनाया लेहवत्साधु साधयेत् ॥
 षट्पलं मधुनाश्चापि सिद्धशीते समावपेत् ।
 चतुष्पलं तुगाक्षीर्याः पिप्पलीद्विपलं तथा ॥
 पलमेकं निदध्याच्च त्वगेलापत्रकेशरात् ।
 इत्थयं च्यवनप्राशः परमुक्तो रसायनः ॥

इलायची, लाल चन्दन, नीलोत्पल, विदारीकन्द, बांसे की जड़, काकोली और काकनासा प्रत्येक आठ तोला । आंवले पांच सौ (सवा छः सेर), इन्हें एक मन ग्यारह सेर सोलह तोले जल में पकाएँ । आंवलों को कपड़े की ढीली पोटली बांध कर डालना चाहिए । क्वाथ बन जाने पर आंवले की पोटली निकाल लें । क्वाथ को वस्त्रपूत कर लें ।

कासश्चासहरश्चैष विशेषेणोपदिश्यते ।
 क्षीणक्षताना वृद्धाना बालाना चाङ्गवर्धनः ॥
 स्वरक्षयमुरोगं हृद्रोगं वातशोणितम् ।
 पिपासा मूत्रशुक्रस्थान्दोषाश्चाप्यपकर्षति ॥
 अस्य माला प्रयुञ्जीत योपरुन्ध्यान्न भोजनम् ।
 अस्य प्रयोगाव्यवनः सुवृद्धोऽभूत्पुनर्युवा ॥
 मेघा स्मृति कान्तिमनामयत्वमायुःप्रकर्षं बलमिन्द्रियाणाम् ।
 स्त्रीषु प्रहर्षं परमाग्निवृद्धिं वर्णप्रसादं पवनानुलोम्यम् ॥
 रसायनस्यास्य नरः प्रयोगाल्लभेत जीर्णोऽपि कुटिप्रवेशात् ।
 जराकृतं रूपमपास्य सर्वं विभर्ति रूपं नवयौवनस्य ॥
 -च०, चि०, अ० १, अभयामलकीय रसायन पादः ६०-७२ ।

निम्नलिखित ग्रन्थों में भी व्यवनप्राश का पाठ है—अष्टांग हृदय, उधर स्थान, रसायन अध्याय, अध्याय ३६, श्लोक ३३ से ४१ तक । हारीत संहिता, तृतीय स्थान, अध्याय ६, क्षयरोगचिकित्सा, श्लोक ४६ से ६२ तक । चक्रदत्त, यक्ष्मचिकित्सा, श्लोक ४६से ५३ तक ।

अन्दर की ओषधियों को फेंक दें। आंवले में से गुठली निकाल कर उन्हें हाथ से अच्छी तरह कुचल दें। कपड़े में छान कर रेशे फेंक दें। छानी हुई आंवले की पीठी को तिल तेल और घी के एक सेर सोलह तोले यमक में भूनें। घी और तेल प्रत्येक अड़तालीस तोला लें। भुन जाने पर उतार कर अलग रख लें। छाने हुए क्वाथ में पांच सेर खाण्ड घोलें और आग पर रख कर मैल निकाल दें। आंवले की बनी हुई पीठी में इस खाण्ड मिश्रित क्वाथ को डाल कर आग पर चढ़ाएँ। हलकी-हलकी आग से पकाएँ। लेह की तरह सिद्ध हो जाने पर उतार लें। भूनते और पकाते समय लकड़ी के खौंचे से लगातार हिलाते रहना चाहिये जिस से पात्र के तले में औषध लग कर जल न जाय। शीतल हो जाने पर अड़तालीस तोले शहद, बत्तीस तोले वंशलोचन, सोलह तोले पिप्पली, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र और नाग केसर प्रत्येक दो तोला मिला कर आलोडित कर लें।

चरक संहिता में पठित काष्ठ्य द्रव्यों की संख्या और योगरत्नाकरोक्त संख्या एक समान ही है। परन्तु योगरत्नाकर में मुग्दपर्णी, मापपर्णी और काकानासा न पढ़ कर वृद्धि, क्षीर काकोली और महामेदा ये अष्टवर्गोक्त द्रव्य विशेष पढ़े

गये हैं ।^१ शार्ङ्गधर^२ ने काथ्य द्रव्यों में जीर काकोली और सहमेदा दो द्रव्य अधिक पढ़े हैं । इस से मिलित काथ्य द्रव्यों की मात्रा ३०४ तोला हो जाती है । चरक में काथ बन जाने की पहिचान लिखी है जब ओषधियों का सारा रस काथ में आ जाय । चक्रपाणि ने 'गतरमानि' की टीका करते हुए चतुर्थांश बचा लेने के लिए कहा है । अष्टांग हृदय में भी पादशेष रस से चतुर्थांश बचाने का अभिप्राय है । शार्ङ्गधर संहिता में अप्रमांश बचाने का विधान है । इस के

१ शृङ्गीतामलकीकणोत्पलबलापथ्याष्टवर्गामृता-
जीवन्तीघृतिचन्दनागुरुशटीद्राक्षाविदार्यम्बुदैः ।
वर्षाभूदशमूलपुष्करवृषैः सार्द्धं पृथक् पालिकै-
रब्द्रोणेन शतानि पञ्च विपचेदात्रीफलानामतः ॥

—योग त्नाकर ।

२ पाटलारणिकाश्मर्यबिल्वारलुकगोक्षुराः ।
पण्यौ बृहत्यौ पिप्पल्लः शृङ्गी द्राक्षामृताभयाः ॥
बला भूम्यामलकी वासा ऋद्धिजीवन्तिका शटी ।
जीवर्षभकौ मुस्तं पौष्करं काकनासिका ॥
मुग्दपर्णी माषपर्णी विदारी च पुनर्नवा ।
काकोल्यौ कमलं मेदे सूक्ष्मैलागुरुचन्दनम् ॥
एकैकं पलसम्मानं स्थूलचूर्णितमौषधम् ।
एकीकृत्य बृहत्पात्रे पञ्चामलशतानि च ॥

अतिरिक्त आंवले की पीठी को भूनने के लिए शार्ङ्गधर ने तैल का पाठ नहीं किया और अड़तालीस तोला घी के स्थान पर छप्पन तोला घी लेने के लिये कहा है। इसी प्रकार प्रक्षेप में दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र और नाग केसर को पृथक्-पृथक् एक तोला लेने के लिए कहा है जब कि चरक संहिता में इन की मात्रा दो-दो तोला है।

मात्रा—एक से दो तोला

रोग—कास, श्वास, स्वरभङ्ग, छाती व फेफड़े के रोग, हृद्रोग, वातरक्त और वीर्य दोषों को दूर करता है। वृद्धों के अङ्गों को बल देता है और बालकों के अवयवों को बढ़ाता है। इस के सेवन से मेधा, स्मृति, कान्ति, दीर्घ आयु, निरो-

पचेद् द्रोणजले क्षिप्वा ग्राह्यमष्टाशशोपितम् ।

ततस्तु तान्यामलानि निष्कुलीकृत्य वाससा ॥

दृढहस्तेन सम्मर्द्य क्षिप्वा तत्र ततो घृतम् ।

पलसप्तमितं तानि किञ्चिद्भृष्टाल्पवन्दिना ॥

ततस्तत्र क्षिपेत्काथं खण्डं चार्धतुलोन्मितम् ।

लोहवत्साधयित्वा च चूर्णीनीमानि दापयेत् ॥

पिप्पली द्विपला ज्ञेया तुगाक्षीरी चतुष्पला ।

प्रत्येकं च त्रिशणं स्यात् त्वगेलापत्रकेशरम् ॥

ततस्त्वेकीकृते तस्मिन् क्षिपेत् क्षौद्रं च षट्पलम् ॥

—शार्ङ्गधर संहिता ।

गता, इन्द्रियों की सबलता, देहाग्नि की दीप्ति, वर्ण की निर्मलता आदि गुण पुरुष में आते हैं। कुटी प्रावेशिक विधि से इसे प्रयोग करने वाला वृद्ध पुरुष भी बुढ़ापे के चिन्हों से रहित हो कर नव यौवन को प्राप्त करता है। अत्यन्त वृद्ध च्यवन ऋषि इसके सेवन से जवान हो गया था इस लिए इस का नाम च्यवनप्राश रसायन रखा गया है।

ब्राह्म रसायन^१—एक हजार (साढ़े बारह सेर) आंवलों को दूध की ऊष्मा में खिन्न करें। खिन्न करने की विधि निम्न-लिखित है— दूध भरी पत्तीली के ऊपर एक हाण्डी रखें। इस हाण्डा के तल में अनेक छोटे-छोटे छिद्र होने चाहिए। कपड़ मिट्टी से सन्धि बन्धन कर के हाण्डी में आंवलों को

१ यथोक्तगुणानामामलकानां सहस्रं पिष्टस्वेदनविधिना पयस ऊष्मणा सुखिन्नमनातपशुष्कमनस्थि चूर्णयेत्, तदामलकसहस्रस्वरसपीतं स्थिरपुनर्नवाजीवन्तीनागत्रलाब्राह्मसुवर्चज्ञामण्डूकपर्णाशतावरीशंखपुष्पी-पिप्पलीवचाविडङ्गखण्डगुप्तामृताचन्दनागुग्मधूकपुष्पोत्तलपद्ममालतीयु-वतायूथिकाचूर्णाष्टभागसंयुक्तं पुनर्नागत्रलासहस्ररत्नस्वरसगिपीतामनातप-शुष्कं द्विगुणितसर्पिषा क्षौद्रसर्पिषा वा क्षुद्रगुडाकृतिं कृत्वा शुचौ दृढे घृतभावित्रे कुम्भे भस्मराशेरधः स्थापयेदन्तर्भूमेः पक्षं कृतरक्षाविधान-मथर्ववेदविदा, पक्षात्यये चादधृत्य कनकरजतताम्रप्रवालकालायसचूर्णाष्ट-भागसंयुक्तमर्धकषवृद्ध्या यथाक्तेन विधिना प्रातः प्रातः प्रयुञ्जानोऽग्नि-बलमभिः समीक्ष्य जीर्णं च पष्टिकं पयसा ससर्पिष्कमुपसेवमानो यथोक्तान् गुणान् समुश्नत इति ।

ढाल दें। पतीली के नीचे आग जलाएं। दूध के वाष्प बन कर चठेंगे और वे आंवलों को खिन्न करेंगे। दूध इतना ढालना चाहिए कि उबालने पर ऊपर की हाण्डी में न चला जाय। तब भी उबाला आता मालूम दे तो पतीली के बाह्य पृष्ठ पर ठंडे पानी में भीगा कपड़ा रख दें, उबाला शान्त हो जायगा। ऊपर की हाण्डी के मुख को ढक्कन से ढक देना चाहिए। खिन्न हो जाने पर आंवलों की गुठली निकाल फेंकें और शेष भाग को छाया में सुखा लें। चूर्ण करें। आंवलों के इस चूर्ण को हजार ताजे आंवले का स्वरस पिलाएँ। रस ढाल कर रख दें और रोज घोटते रहें। रस सूख जाने पर इस का अष्टमांश निम्न द्रव्यों का चूर्ण मिलाएँ—शालपर्णी, पुनर्नवा, जीवन्ती, नागबला, ब्राह्मी, मण्डूकपर्णी, शतावरी, शङ्खपुष्पी, पिप्पली, वच, वायविडङ्ग, कौञ्च बीज, गिलोय, लाल चन्दन, अगर, मुलहठी, मदार के फूल, नीला कमल,

इदं रसायनं ब्राह्मं महर्षिगणसेवितम् ।

भवत्यरोगो दीर्घायुः प्रयुञ्जानो महाबलः ॥

कान्तः प्रजानां सिद्धार्थश्चन्द्रादित्यसमद्युतिः ।

श्रुतं धारयते सत्त्वमार्गे चास्य प्रवर्त्तते ॥

धरणीधरसारश्च वायुना समविक्रमः ।

स भवत्यविषः चास्य गात्रे संपद्यते विषम् ॥

—च०, चि०, अ० १, अभयामलक रसायनपादः ५६-५६ ।

श्वेत कमल, मालती के फूल, गुलाब की पंखुरियां और जूही के फूल। फिर इस चूर्ण में दो मन बीस सेर ताजी नाग-बला का रस डाल कर छाया में सुखाएँ। सूख जाने पर फिर पीस लें। एक भाग मधु तथा दो भाग घी मिला कर राब के सदृश बना लें। घृत भावित स्वच्छ और दृढ़ घड़े में बन्द कर दें। भूमि में गढ़ा खोद कर बारह या सोलह अँगुल उपलों की राख बिछा दें, उस पर घड़ा रख दें। घड़े के चारों ओर गढ़े को उपलों की राख से भर दें। घड़े के मुख के ऊपर तथा चारों ओर बारह-बारह सोलह-सोलह अँगुल राख आ जानी चाहिए। पन्द्रह दिन बाद घड़े को निकाल कर उस में सोना, चान्दी, प्रवाल, ताम्र और फौलाद की सम भाग में मिश्रित भस्मों का अष्टमांश डाल दें। ओषधि सेवन करते समय भी इसी अनुपात में भस्में मिलाई जा सकती हैं। इस रसायन को कुटी प्रावेशिक विधि से सेवन करना चाहिए।

आमलकावलेह^१—पूर्ण गुणयुक्त एक हजार (साढ़े बारह सेर) आवलों को ढाक की ताजी गीली लकड़ी की

१ यथोक्तगुणानामामलकानां सहस्रमाद्रपलाशद्रोण्यां सपिधानायां वाष्पमनुद्मवन्त्यामारण्यगोमयाग्निभिरुपस्वेदयेत्, तानि सुस्विन्नशीतान्युद्घृतकुलकान्यापोथ्याटकेन पिप्पलीचूर्णानामटकेन च विडङ्ग-तण्डुलचूर्णानामध्यर्धेन चाटकेन शर्कराचूर्णानां द्वाभ्यां द्वाभ्यामाटकाभ्या

बनाई गई द्रोणी में भर दें। द्रोणी का ढक्कन भी ढाक की लकड़ी का बना हो और मुख पर ठीक बैठ जाता हो कि वाष्प बाहर न निकल सकें। आंवलों से भरी हुई बन्द द्रोणी को उपलों की आग पर रखें। द्रोणी की गीली लकड़ी और आंवले के जलीय भाग के वाष्प से आंवले खिन्न हो जायंगे। खिन्न हो जाने पर आग से उतार कर खोल लें और ठण्डा होने दें। ठण्डा हो जाने पर गुठली और रेशे निकाल फेंकें। आंवलों को कुचल कर कपड़े में सं हथेली द्वारा मलकर छानने पर रेशे पृथक् हो जाते हैं। छाने हुए आंवलों में पिप्पली चूर्ण और छिलके रहित वायविडङ्ग प्रत्येक छह सेर बत्तीस तोले, खाण्ड नौ सेर अड़तालीस तोले, तिल तेल, घी और शहद प्रत्येक बारह सेर चौंसठ तोले यथा विधि मिला कर घी से भावित पवित्र और मज्जवृत पात्र में रखें। इक्कीस दिन पड़ा रहने के बाद प्रयोग करें।

मात्रा—आधे से एक तोला।

रोग—इस के नियमित सेवन से बुढ़ापा दूर होता है और आयु सौ वर्ष होती है। उत्कृष्ट रसायन है।

तैलस्थ मधुनः सर्पिषश्च संयोज्य शुचौ दृढे घृतभाविते कुम्भे स्थापयेदेक-
विंशतिरात्रमत ऊर्ध्वप्रयोगः, अस्य प्रयोगाद्द्वर्षशतमजरमायुस्तिष्ठति।

—च०, चि०, अ० १, प्राणकामीय रसायन पाद; १०।

आमलकायस ब्रह्म रसायन^१—माघ व फाल्गुन मास में सर्वगुण युक्त आंवलों को वृक्ष पर से अपने हाथ से तोड़ कर इकट्ठा कर लें । गुठलियां निकाल कर छाया में सुखा लें । इस शुष्क चूर्ण को आंवले के स्वरस की इक्कीस भावना दें प्रत्येक भावना के बाद चूर्ण को छाया में सुखाएं । पूणतया सूख जाने के बाद स्वरस डालना चाहिए । इक्कीस

१ करप्रचिताना यथोक्तगुणानामामलकानामुद्धृतास्थना शुष्क-चूर्णितानां पुनर्माघे फाल्गुने वा मासे त्रिःसप्तकृतवः स्वरसपरिपीताना पुनः शुष्कचूर्णीकृतानामढकमेकं ग्राहयेत्. अथ जीवनीयाना बृंहणीयाना स्तन्यजनना शुक्रवर्धनाना वयःस्थापनाना पट्विरेचनशताश्रितोयोक्ताना-मौषधगणाना चन्दनागुरुधवतिनिसखदिग्गशिशापासनसाराणा चाणुशः क्षिप्तानामभयाविभीतकपिप्पलीवचाचव्यचित्रकविडङ्गाना च समस्तानाम-ढकमेकं दशगुणेनाभिसा साधयेत् तस्मिन्नाढकावशेषे रसे मूप्ते तान्यामल-कचूर्णानि दत्वा गोमथाग्निभिर्वैशविदलशरतेजनाग्निभिर्वा साधयेत्प्रावदप-नयाद्रसस्य, तमनुरादग्धमुरहत्यायसीषु पात्रीष्वास्तार्य शोषयेत्, सुशुष्कं कृष्णाजिनस्योपरि दृष्टाद श्लक्ष्णपिष्टमयः स्यात्तथा निधापयेत् सम्यक् तच्चूर्णमयश्चचूर्णाष्टभागसप्रयुक्त मधुसपिभ्यामग्निबलमभिसर्माद्य प्रयो-जयेत् ।

एतद्रसायनं पूर्व वसिष्ठः कश्यपोऽङ्गिराः ।

जमदग्निर्भरद्वाजो भृगुरन्ये च तद्विधा ॥

प्रयुज्य प्रयता मुक्ताः भ्रमव्याधिजराभयात् ।

यावदैच्छंस्तपस्तेपुस्तत्प्रभावान्महाबलाः ॥

बार भावित यह चूर्ण छह सेर बत्तीस तोला लें । जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर काकोली, मुग्दपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुलहठी, सारिवा, राजक्षवक, बला, काकोली, क्षीर काकोली, श्वेतबला, पीतबला, वन कपास, विदारीकन्द, विधारा, खस, शालि, सांठी के चावल, गन्ना, इलुवालिका, दाभ, कुश, सरकण्डा, गुन्द्रा, इत्कट (तृणभेद), जीवकी, ऋषभक, काकोली, क्षीर काकोली, मुग्दपर्णी, माषपर्णी, मेदा, शतावरी, जटामांसी, कुलिंग, गिलोय, हरड़, आंबला, राम्ना, श्वेत अपराजिता, जीवन्ती, शतावरी, मण्डूकपर्णी, शालपर्णी, पुनर्नवा और चन्दन, अगर, धव, आबनूस, खदिर, शीशम, असन, इन के मध्य काष्ठों (heart woods) के छोटे-छोटे टुकड़े और हरड़, बहेड़ा, पिप्पली, वचा, चव्य, चित्रक, वाथविडङ्ग,

तपसा ब्रह्मचर्येण ध्यानेन प्रशमेन च ।

रसायनविधानेन कालयुक्तेन चायुषा ॥

स्थिता महर्षयः पूर्वं न हि किञ्चिद्रसायनम् ।

ग्राम्याणामन्यकार्याणां सिध्यत्यप्रयत्नात्मनाम् ॥

इदं रसायनं चक्रे ब्रह्मा वार्षसहस्रिकम् ।

जराव्याधिप्रशमनं बुद्धीन्द्रियबलप्रदम् ।

-च० , चि० , अ० १, करप्रचितीय रसायन पाद; २-७ ।

ये सब द्रव्य मिला कर छह सेर बत्तीस तोला लें। इन्हें एक मन चौबीस सेर जल में सिद्ध करें। बारह सेर तेरह छटांक जल शेष रहने पर कपड़े में छान लें। इस काथ में पहले से तैयार किया हुआ आंवलों का उपर्युक्त चूर्ण डाल दें। इस को उपलों की आग से या फाड़े हुए बांस की आग से अथवा सरकण्डे व तेजबल की अग्नि से धीरे-धीरे तब तक पकाएँ जब तक क्वाथ सूख न जाय। बहुत तेज आग न दें अन्यथा औषध के जल जाने का भय रहता है। क्वाथ भाग उड़ जाने पर औषध को निकाल कर लोहे के पात्र में फैला कर सुखा लें। अच्छी प्रकार सूख जाने पर काले मृग के चर्म पर रखी सिल पर चूर्ण को भली प्रकार बारीक पीस लें और लोहे के पात्र में रख छोड़ें। प्रयोग के समय इस चूर्ण का आठवां भाग लोह भस्म मिला लें।

मात्रा—चूर्ण सोलह रत्ती + लोह भस्म दो रत्ती।

रोग—यह रसायन बुढ़ापे और रोग के असर को दूर करता है। बुद्धि को कुशाम्र करता है। इन्द्रियों को बल देता है। आयु दीर्घ करता है। इस रसायन को ब्रह्मा ऋषि ने बनाया था। वसिष्ठ, कश्यप, अंगिरा, जमदग्नि, भारद्वाज, भृगु और अन्य अनेक महर्षियों ने इस रसायन का सेवन किया था जिस से रोग और बुढ़ापे के कष्टों से मुक्त हो कर वे सुख से तप करते रहे थे।

अनुपान—मधु और घृत ।

केवलामलक रसायन^१—इस रसायन को सेवन करने वाला एक साल तक केवल दूध पर निर्वाह करता हुआ गौओं के बीच में रहे और वहां जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी रहता हुआ मन्त्र में गायत्री मन्त्र का ध्यान करता रहे । एक साल बाद पौष, माघ व फाल्गुन की किसी शुभ तिथि में प्रयोग आरम्भ करे । प्रयोग से पूर्व तीन दिन उपवास करे ।

१ संवत्सरं पयोवृत्तिर्गवा मध्ये वनेत्सदा ।
 सावित्रो मनसा ध्यायन् ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः॥
 संवत्सरान्ते पौषी माघी वा फाल्गुनी तिथिम् ।
 ग्रहोपवासी शुद्धश्च प्रविश्यामलकवनम् ।
 बृहत्फलाढ्यमारुह्य द्रुमं शाखागतं फलम् ।
 गृहीत्वा पाणिना तिष्ठेज्जपन् ब्रह्मामृतागमात् ॥
 तदा ह्यवश्यममृतं वसत्यामलके क्षणम् ।
 शर्करामधु कल्पानि स्नेहवन्ति मृदूनि च ॥
 भवन्त्यमृतसंयोगात्तानि यावन्ति भक्षयेत् ।
 जीवेद्दर्पसहस्राणि तावन्त्यागतयौवनः ॥
 सौहित्यमेषा गत्वा तु भवत्यमरसन्निभः ।
 स्वयं चास्योपतिष्ठन्ते श्रीवेदा वाक्च रूपिणी ॥

—च०, चि०, अ० १, करप्रचितीय रसायन पाद ; ८-१३ ।

फिर स्नान आदि से शुद्ध हो कर आंवले के वन में किसी बड़े फल वाले आंवले के वृक्ष पर चढ़ कर शाखा में लगे हुए फल को हाथ से पकड़ कर ओम् का जप करे। तब आंवले को खाय। जितने आंवले खायगा उतने ही हजार साल युवा हो कर जीवित रहेगा। यदि भर पेट खा कर तृप्त हो जाय तो अमर सदृश ही हो जाता है अर्थात् उम्र की आयु बहुत दीर्घ हो जाती है और कान्ति, लक्ष्मी, वेद और सरस्वती स्वयं उस मनुष्य के पास उपस्थित हो जाती हैं।

सामान्य उपयोग

लकड़ी—जंगलों में आंवलों के वृक्षों को काट कर लकड़ी ले ली जाती है। जड़ से इस की फिर नई शाखाएँ निकल आती हैं, बड़ा होने पर उन्हें फिर काट लिया जाता है। इस प्रकार ईंधन के लिए इस में से पर्याप्त लकड़ी निकल आती है। लकड़ी की बलियाँ अच्छी बनती हैं। कृषि के औजार और फर्निचर बनाने के लिए उपयोगी है। यह घटिया इमारती लकड़ी है। सुखाते हुए मुड़ जाती है और दरारें पड़ जाती हैं। पानी में यह टिकाऊ होती है। इस लिए कुँएँ सम्बन्धी प्रयोजन में काम लाई जा सकती है। लकड़ी की छोटी कतरनें और छोटी शाखाएँ गदले पानी में

डालने से पानी साफ हो जाता है इस लिए कूप-वृत्तों को बनाने में इस का उपयोग बहुत किया जाता है ।

टैनीन—टैनीन के उत्पादन के लिए वृक्ष का विशेष महत्व कहा जाता है, परन्तु लकड़ी की दृष्टि से यह निश्चित रूप से कम मांग वाला वृक्ष है । रंगने और कमाने के लिए छाल की मांग बढ़ सकती है । वृक्ष से अधिक लाभ लेने की विधि यह है कि कुछ बड़ा होने पर वृक्ष को काट दिया जाय । फिर जड़ से नयी शाखाएं निकलेंगी । उन से छाल और ईंधन दोनों प्राप्त किये जा सकते हैं ।

चर्मकर्म में—फल, पत्ते और छाल सब में टैनीन होने से ये भारत के विभिन्न भागों में चर्मकर्म के लिए प्रायः हरड़ आदि किसी पक्के टैनीन पदार्थ के साथ मिला कर प्रयुक्त होते हैं । बंगाल के चमार कमाने के लिए पत्तों को बहुत अच्छा समझते हैं । त्रावन्कोर में छाल चर्मकर्म में काम आती है । भारत में किये गये वैज्ञानिक परीक्षणों के अनुसार उत्तम चमड़ा प्राप्त करने के लिए निम्न मिश्रण चर्मकर्म में अच्छा रहता है । आमले की छोटी शाखाओं की छाल पचास प्रतिशतक, ककरोँदे की तीस प्रतिशतक और धौरा या बाकली (*Anogeissus latifolia*, Wall.=एनोजीसस लैटिफोलिया) की बीस प्रतिशतक । इस मिश्रण से रंगा हुआ चमड़ा लालिमा लिए हुए भूरा होता है ।

कपड़ा रंगने के लिए—कपड़ा रंगने में भी आवले के विभिन्न भागों का उपयोग होता है। फलों से प्राप्त रंग काला सा भूरा होता है। फल अकेला बहुत कम प्रयुक्त होता है। बहेड़े और हरड़ की तरह काला रंग प्राप्त करने के लिए यह प्रायः लोहे के लवणों के साथ या अन्य वृक्षों की छालों के साथ प्रयोग में आता है। यह रंग को अधिक गूढ़ा कर देता है। टसर और मलबेरी पर इस से सुन्दर हलके भूरे रंग प्राप्त किये गये हैं। रुई पर बहुत बढ़िया रंग नहीं देता। छाल और पत्ते भी इसी तरह प्रयुक्त होते हैं और वही रंग देते हैं। पत्तों में हलके मैले और भूरे से पीले रंग के रज्जक पदार्थ स्वल्प परिमाण में होते हैं। ये पानी में विलेय हैं। टसर, रेशम, मलबेरी और ऊन पर इस रंग की हलकी परन्तु बहुत सुन्दर छायाएँ आती हैं। पत्तों के प्रयोग से रेशम पर सुन्दर भूरे रंग की छायाएँ प्राप्त की जाती हैं और लोह लवणों के साथ रंग काले में बदल जाता है। हाँगकौंग में चीनी लोग पत्तों को रंगने के लिए इस्तेमाल करते हैं। जावा में इन से चटाइयाँ रंगी जाती हैं। शिव सागर जिले में हरड़, जामुन और अमरूद की छाल के साथ आवले की छाल मिला कर काला रंग बनाने में काम आती है।

मलाया में फल भोजनों में मसाले के रूप में काम आता

है। भारत की तरह मलाया में भी इस का आचार और मुरब्बा डाला जाता है। डच ईस्ट इण्डीज में भी यह इसी तरह प्रयुक्त होता है। मुरब्बा बनाने के लिए भारत में बनारसी आंवले ने बहुत ख्याति प्राप्त की है। यह आंवला कलमें बांध कर तैयार किया जाता है। सामान्य आंवलों की अपेक्षा आकार में बनारसी आंवला लगभग तिगुना या चार गुना बड़ा होता है। मुरब्बा बनाने के लिए ताजे हरे फलों को एक-दो दिन चूने के पानी में डुबो रखें। फिर सादे जल में उबालें। जरा सा मृदु हो जाने पर काष्ठ की शलाका से सख्खिद्र कर दुगुनी या तिगुनी खाण्ड की चाशनी में डालें। जब फल पानी छोड़ दें तो आग पर रख कर जल भाग उड़ा दें। आंवलों के अन्दर अच्छी तरह चाशनी चली जाने पर मुरब्बा बन गया समझें।

सूखे फल मैल साफ करने वाले समझे जाते हैं और इस लिए साबुन के स्थान पर सिर धोने के काम आते हैं। रात को इन्हें पानी में भिगो कर रख देते हैं और अगले दिन इस पानी से सिर धोते हैं। यह बालों को मुलायम और लम्बा भी करता है, ऐसा विश्वास प्रचलित है।

चारा—कहते हैं कुछ पशु फलों को चाव से खाते हैं और पत्ते अच्छा चारा समझे जाते हैं।

गोंद—वृक्षों में से एक गोंद निकलती है। यह उपयोगी

नहीं होती ।

विडलवण बनाने के लिए—आंवले का प्रयोग विडलवण के निर्माण में किया जाता है । निर्माण विधि यह है—अठाईस सेर सांभर नमक को दस छटांक सूखे आंवलों के साथ मिला लें । इस में से चौथाई पदार्थ को तंग मुंह के गोल मृत्पात्र में डाल कर भट्टी में एक घण्टे तक आंच देते हैं । पात्र के अन्दर का पदार्थ गरम हो जाने पर बचे हुए पदार्थ को भी धीरे-धीरे मिलाने जाते हैं । सारा पदार्थ डाल चुकने के बाद इसे कोई छह घंटे की तेज लाल आंच दी जाती है । उसके बाद भट्टी और पात्र स्वयं ठण्डे होने दिये जाते हैं । बरतन को तोड़ने से २४ सेर विडल नमक प्राप्त हो जाता है ।

प्रभाव तथा चिकित्सा में उपयोग

भारतीय चिकित्सा का आंवला एक महत्वपूर्ण पदार्थ है । प्राचीनतम लेखक चरक सुश्रुत से लेकर आधुनिक लेखकों तक ने इसे बहुत महत्व दिया है । अनेक योगों में यह महत्वपूर्ण भाग लेता है और बहेड़े तथा हरड़ के साथ मिला कर त्रिफला रूप में यह प्रायः सब रोगों में विभिन्न रूपों में प्रयुक्त किया जाता है ।

ताज्जा फल वृषाशामक, मूत्रल और अनुलोमक होता है । शुष्क फल ग्राही और पाचक होता है । फूल शीतल

और सारक होते हैं। छाल में पके फल की माहकता होती है।

मुसलमान हकीम इसे हिन्दू चिकित्सकों की तरह प्रयोग करते हैं। वे इसे माही, तृषाशामक, हृद्य और शरीर के दोषों को शुद्ध करने वाला समझते हैं। शीतल और माही गुण के कारण वे इसे बाह्य प्रयोग में भी काम लाते हैं।

रसायन

आंवले का रसायन रूप में उपयोग राजा भोज लिखते हैं—आंवले के चूर्ण को घी, शहद और तेल मिला कर एक महीने तक भाने से वाक्पटुता, शरीर में कान्ति और नव-यौवन आता है।^१ आंवले के चूर्ण को पानी, घी या शहद के अनुपान से रात्रि में सेवन करते रहने से उदराग्नि बढ़ती है; नाक, कान तथा आंख स्वस्थ रहते हैं और जवानी प्राप्त होती है।^२ बुढ़ापे के प्रभाव से बचने के लिए आंवले के रस में शहद, मिश्री और घी मिला कर सेवन करना

१ मासमालकचूर्णमश्रतः साशमाक्षिकतिलैर्विमिश्रितम् ।

वाक्पटुत्तरचिरात्प्रजायते कान्तिमच्च नवयौवनं वपुः ॥

—रा० म०, रसायनाधि० ३३; ३८८ ।

२ चूर्णममालकजातमम्भसा सर्पिषाथ मधुना निशि ।

पीयमानमुदराग्निनासिकाश्रोत्रनेत्रबलयौवनप्रदम् ॥

—रा०, म०, रसायनाधि० ३३; ३९० ।

आहिए ।^१

गरुड़ पुराण के अनुसार इस के पानी से स्नान करते रहने से स्वस्थ रहता हुआ मनुष्य सौ साल तक लक्ष्मी सम्पन्न हो कर जीवित रहता है ।^२ उस के बाल सफेद नहीं होते ।^३ पुराणकार आंवले में सदा लक्ष्मी का निवास मानते हैं ।^४

निर्बल बच्चों को

भारीरिक और मानसिक दृष्टि से निर्बल बच्चों को आधे से एक तोला च्यवनप्राश प्रति दिन प्रातःकाल गाय के दूध से सेवन कराया गया है और प्रत्येक उदाहरण में आश्चर्यजनक उन्नति देखी गई है । रेडियो माल्ट और विभिन्न ब्रैण्डों के कौडलिवर ओयल आदि यद्यपि आजकल शक्ति-जनक ओषधियों के रूप में

१ धात्रीरसक्षौद्रसिताघृतानि हिताशनाना लिहता नराणाम् ।

प्रणाशमायान्ति जरा विकाराग्रन्था विशाला इव दुर्गहीताः ॥

—अ० ह०, उ०, अ० ३६; १४६ ।

२ श्रीकामः सर्वदा स्नानं कुर्वीतामलकैर्नरः ॥

—ग० पु०, अ० २१५ ।

३ यस्सदामलकैः स्नानं करोति स विनिश्चितम् ।

वलीपलितनिर्मुक्तो जीवेद्द्वर्षशतं नरः ॥

४ नित्यमामलकै लक्ष्मीर्नित्यं हरितगोमये ।

नित्यं शंखे च षड्मे च नित्यं शुक्ले च वासमि ॥

बहुत अधिक प्रयुक्त हो रहे हैं परन्तु बालक जितनी सुगमता से च्यवनप्राश को लेते हैं उतना दूसरी चीजों को नहीं लेते। कौडलिवर औयल (मछली का तेल) की अपेक्षा बच्चों के लिए यह अधिक सात्व्य पड़ता है। अरुचिकर गन्ध और स्वाद के कारण मछली के तेल से उत्पन्न होने वाले जी मचलाना आदि लक्षण च्यवनप्राश के सेवन में नहीं उत्पन्न होते।

मुख, गला, दांत

पित्त प्रकोप के कारण मुख में छाले पड़ गए हों या मुखपाक हो तो मूल की छाल को घिस कर शहद से लेप करने से लाभ होता है। पत्तों के कषाय से गरारे करने से भी आराम आ जाता है। आंवले और पिप्पली को डाल कर पकाई हुई यवागू गले के रोगों के लिए हितकर होती है।^१

आंवले में खाद्योज सी प्रचुर परिमाण में होती है इस लिए स्कर्वी में यह बहुत उपयोगी होता है। जिन बच्चों के दांत कमजोर हों, ठीक तरह न निकलते हों, बहुत भंगुर हों या शीघ्र ही कीड़ों से खाये जाते हों उन्हें रोज़ ताजे आंवले खाने चाहिये या इस के च्यवनप्राश आदि योग नियम से सेवन करने चाहिए। आंवलों को चबाने से या दांतों पर

१ कण्ट्या यवाना यमके पिप्पल्यामलकैः शृता ।

घिसने से दन्त रोगों में लाभ होता है ।^१

खाद्योज सी का प्रचुर स्रोत

आंवले में जितनी अधिक मात्रा में खाद्योज (विटामीन) सी रहता है इतना सम्भवतः किसी अन्य फल में नहीं । ताजे आंवले के रस में नारंगी के रस की अपेक्षा बीस गुणा अधिक सी रहता है । एक आंवले में डेढ़-दो संतरो (बड़ी नारङ्गी) के बराबर सी रहता है । प्रति सौ ग्राम आंवले में ६०० मिलीग्राम खाद्योज सी रहता है ।

फलों और सब्जियों को गरम करने, पकाने या सुखाने से उन के खाद्योज का अधिकांश या प्रायः सम्पूर्ण अंश नष्ट हो जाता है । परन्तु आंवला इस विषय का अपवाद है । पकाने पर भी इस का सब खाद्योज नष्ट नहीं होता । इस के तीन कारण हैं । एक तो आंवले में इतना खाद्योज सी रहता है कि कुछ नष्ट होने पर भी काफी खाद्योज बचा रह जाता है । दूसरे, आंवले में खटास होती है और खटास खाद्योज सी की बहुत कुछ रक्षा करती है, उस को नष्ट नहीं होने देती । तीसरे, आंवले में कुछ अन्य पदार्थ भी हैं जो खाद्योज सी की कुछ रक्षा करते हैं । इसी लिए आंवले के मुरब्बे में भी कुछ खाद्योज सी रह

१ धात्रीफलेन सघृष्टं दन्तरोगनिवारणम् ।

—हा० सं०, दन्तरोगचि०, अ० ४६; १२ ।

जाता है। आंवले को सुखा कर रखने से भी बहुत कुछ सी बचा रहता है।

सुखाने की अच्छी विधि

सुखाने की एक रीति यह है कि इसे हलके हाथ कूट कर छोटे-छोटे टुकड़ों में कर लिया जाय और धूप में डाल कर झटपट सुखा लिया जाय। सूख जाने पर गूदे को बारीक पीस लिया जाय। इस प्रकार बनाये चूर्ण में प्रति ग्राम दस से सोलह मिलिग्राम खाद्योज सी रहता है। विशेष रीतियों से सुखाने पर सी की और अधिक मात्रा सुरक्षित रह जाती है। चूर्ण के रखे रहने पर धीरे-धीरे खाद्योज नष्ट होता रहता है, विशेषकर यदि चूर्ण नमी वाले या गरम स्थान में पड़ा रहे। परन्तु फिर भी साधारण रीति से रखा रहने पर आंवला चूर्ण महीनों तक उपयोगी सिद्ध होता है। चूर्ण को यथासम्भव सूखे और ठण्डे स्थान में रखना चाहिए।

आंवले को रखने की एक और विधि यह है कि इस में नमक मिला दिया जाय। इस के लिए आंवलों को पहले खौलते पानी में छह-सात मीनट तक डुबो देना चाहिए, और फिर उन्हें नमक के खूब गाढ़े गोल में रख देना चाहिए। इस रीति से आंवले का खाद्योज सी बहुत कुछ सुरक्षित रह जाता है। जब आंवलों को बहुत देर तक

उबाला जाता है और फिर घी या तेल में तला जाता है और नमक मसाला डाला जाता है तो अधिकांश खाद्योज नष्ट हो जाता है ।

युद्ध काल का आवश्यक पदार्थ

आंवला चूर्ण से बनी टिकिये अब फौजी सिपाहियों को खाद्योज भी प्रदान करने के काम में आ रही हैं । १६१४-१८ की लड़ाई में मेसोपोटेमिया तथा अन्य क्षेत्रों में, जहां हरी साग सब्जियों की कमी थी या जहां वे मिल ही नहीं सकती थीं, अनेक सिपाहियों को स्कर्वी रोग हो गया था । गत समर में आंवला चूर्ण की टिकियों के प्रयोग के कारण कहीं भी स्कर्वी न हो पाया और इस प्रकार सैनिकों का स्वास्थ्य सुरक्षित रहा । सन् १६४० में जब दिसार के दुर्भिक्ष से आक्रान्त क्षेत्र में स्कर्वी प्रचण्ड रूप धारण कर रहा था तब ताज्जा आंवला इस रोग का अचूक इलाज सिद्ध हुआ था ।

भोजन सम्बन्धी उपयोगिता

भारत सरकार की रिपोर्ट (हेल्थ बुलेटीन नं० २३) में आंवले की भोजन सम्बन्धी उपयोगिता को बताते हुए इस में निम्न लिखित द्रव्यों का संघटन बताया गया है—

प्रोटीन

०.५ प्रतिशतक

वसा (ईथर एक्स्ट्रैक्टिव्स)

०.१ प्रतिशतक

खनिज पदार्थ	०.७ प्रतिशतक
रेशे	३.४ प्रतिशतक
कर्बोदित (कार्बोहाइड्रेट्स)	१४.१ प्रतिशतक
घूना (कैल्शियम)	०.०५ प्रतिशतक
प्रस्फुरक	०.०२ प्रतिशतक
जलीयांश	८१.२ प्रतिशतक

प्रति सौ ग्राम में लोहा १.२ मिलीग्राम होता है । प्रति सौ ग्राम में ऊष्मा उत्पन्न करने की क्षमता ५६ है । प्रति औंस में ऊष्मा इकाइयां सत्रह हैं ।

एक लाभप्रद व्यवसाय

बड़े पैमाने पर फल-संरक्षण का काम करने वाले लोगों तथा स्कवैश आदि फल-पेयों के निर्माताओं को मैं सलाह दूंगा कि यदि वे आम, सन्तरा, निंबू आदि के स्कवैश की तरह आंवले के स्कवैश को भी बाजार में रखें तो जनता में इस की अच्छी मांग पैदा हो जायगी और निर्माताओं के लिए यह अच्छे मुनाफे का धन्धा होगा । आंवला हमारे बड़े देश के अधिक भूभाग में जंगल में स्वयं पैदा होता है । इस की उत्पत्ति इतनी अधिक है कि पूरी पैदावार का हम ठीक तरह उपयोग नहीं कर पाते । जिन प्रदेशों में यह होता है वहां से पास के शहरों और मण्डियों में बिकने आ जाता है ।

आचार, मुरब्बे तथा दवाओं में प्रयोग किये जाने के बाद जो पैदावार बचती है वह सुखा कर रख ली जाती है। हमारा विश्वास है कि इन उपयोगों के बाद भी पैदावार का एक बड़ा भाग नष्ट हो जाता है। स्कैश के रूप में यदि इस का प्रयोग आरम्भ कर दिया जाय तो बिश्वास है कि सारी पैदावार का हम पूरा लाभ उठा सकेंगे जिस से हमारी राष्ट्रीय सम्पत्ति में भी वृद्धि होगी। इस का व्यवसाय आरम्भ करने वालों को मैं एक उदाहरण देता हूँ। पठानकोट के आसपास पहले निम्बू, खट्टा आदि साइट्रस जाति के कुछ फल बड़े परिमाण में पैदा होते थे। मौसम में इकट्ठे किये जा कर जब ये स्थानीय मण्डी में आते थे तो इन का मूल्य प्रायः एक रुपया प्रति मन हुआ करता था और अच्छा ग्राहक न मिलने से बहुत सी पैदावार यों ही खराब हो जाती थी। फल संरक्षण की शिक्षा प्राप्त एक युवक बी० एस० सी० को उस इलाके में फल-संरक्षण का काम शुरू कर के साइट्रस फलों का उपयोग करने की सलाह दी गयी। जब से वह कारखाना वहां खुला और इस के रसों से स्कैश बनने लगे तो उन फलों की अच्छी खपत हो जाने से इन की कीमत पहले से दस गुना अधिक हो गयी। उस इलाके के लोगों को इस से अपनी पैदावार की पूरी कीमत मिलने लगी।

आंवला स्ववैश की लोकप्रियता

हमारे देश में युद्ध-जनित असाधारण परिस्थितियों के कारण फलों, शाक-सब्जियों की भी जो सामान्य कमी है उस के कारण सर्व साधारण को जीवन के लिए आवश्यक खाद्य पदार्थ खाद्योन्नति सी भी पर्याप्त नहीं मिल रहा है। इस कमी को पूरा करने के लिए हमारे पास सब से अधिक सस्ता और बहुत बड़े पैमाने में मिलने वाला आंवला ही फल है। भारत सरकार का जंगल विभाग इस महायुद्ध में इसी प्रयोजन के लिए फौजियों को आंवला देता रहा है। यह आंवला सूखी शकल में जाता था और इस का यह रूप भोजन की अपेक्षा दवा अधिक प्रतीत होता था। आंवला दवा के साथ-साथ एक महत्वपूर्ण भोजन भी है। इस के ताजे रस को सुरक्षित कर के जो स्ववैश बनाये जायेंगे उन का भोजनों के रूप में हमारे घरों में, होटलों और रेस्तरांओं में बहुत उपयोग होगा। ताजे आंवलों का स्वाद खट्टा होता है। इस की खटास में जो हलका सा कसेलापन होता है उस की अपनी विशेषता है। पञ्जाबी की एक प्रसिद्ध कहावत का आशय है कि वृद्धजनों की बात का और आंवले के स्वाद का बाद में ही महत्व पता चलता है। प्रकट रूप में आंवला खट्टे और कसेले स्वाद वाला एक फल है परन्तु यह कहावत इस में छिपे हुए उस मिठास की ओर संकेत करती है जिस का स्वाद बाद में

खाया करता है। आंवले के ताजे रस का रंग बहुत सुन्दर सफेदी लिए हरा सा होता है। स्वाद, रूप, रंग और सस्तापन तथा मांस आदि सभी दृष्टियों से आंवले के स्ववैश तथा दूसरे प्रकार के पेय अच्छे लोकप्रिय होंगे, ऐसी सम्भावना है।

महाम्रोतस् के रोग

भोजन के आदि, अन्त या मध्य में किसी समय भी आंवला खाया जा सकता है।^१ भोजन से पांच-सात मिनट पहले खाया गया आंवला पाचक रसों को उत्तेजना दे कर भूख बढ़ाने का काम करेगा। बीघ में खाने से यह भोजन को पचाने में सहायता देगा। अजीर्ण में आंवले के अनेक योगों का प्रयोग किया जाता है। लुधा-उत्तेजक रूप में आंवले का मुरब्बा और आचार खाया जाता है। महाम्रोतस् पर आंवले का शामक और अनुलोमक प्रभाव होता है। आमाशय में पित्तप्रकोप के कारण अम्लपित्त हो जाने पर प्रातःकाल आमलकी खण्ड दिया जाता है अथवा भोजन के पीछे आधा तोला आमलकी चूर्ण को पानी के साथ दिया जाता है। खट्टे डकारों के साथ अम्लयुक्त आमाशयिक रस

१ आदावन्ते च मध्ये च भोजनस्य प्रशस्यते।

निरत्ययं दोषहरं फलेष्वामलकीफलम् ॥

मुख में आता है और गले में दाह पैदा करता है, अम्लपित्त के ये लक्षण इस के सेवन करने से तीन दिन में दूर हो जाते हैं ।^१ पैत्तिक शूल में आंवले के रस में चीनी मिला कर देने से शीघ्र आराम आ जाता है ।^२ पैत्तिक गुल्म (वायु-गोला) के रोगियों को आंवले के काढ़े में खारड मिला कर सेवन कराना प्रशस्त समझा जाता है ।^३ आंवले के ताजे रस में शहद और पिप्पली मिला कर चाटने से हिचकी बन्द हो जाती है ।^४ वातिक वमन में आंवले के रस में चन्दन को घिस कर शहद से चटाते हैं ।^५

१ भुक्तान्ते वारिणा पीतं चूर्णं धात्रीफलोद्भवम् ।

त्र्यहान्निहन्त्यम्लपित्तं कण्ठदाहसमायुतम् ॥

—भै० २०, अम्लपित्ताधि०; १८ ।

२ पिबेत् सशर्करं तद्यः पित्तशूलनिषूदनम् ।

...

...

...

॥

—च० ६०, शूल चि० ।

३ धात्रीकवाथः सितायुक्तं शस्यते पित्तगुल्मिनाम् ॥

—भै० २०, गुल्माधि०; १८ ।

४ पिप्पली मधुयुक्तो वा रसो धात्रीकपित्तयोः ।

—च०, चि०, अ० २१ ।

५ आमलक्या रसेनाथ घृष्टं चन्दनकं मधु ।

गुष्ठिकामलमानेन लेहो हन्ति वमि ध्रुवम् ॥

—हा० सं०, चि०, अ० ४२ ।

शुष्क फल अतिसार और प्रवाहिका में ग्राही रूप से बहुत दिया जाता है। ग्रहणी और अतिसार में तीन माशा धात्री चूर्ण दिन में तीन बार दिया जाता है। चिरस्थायी प्रवाहिका में ताजे आंवले खूब खाने चाहिए। ताजे फल कारस अतिसार और प्रवाहिका में ग्राही, लेपक और बलदायक रूप में एक से तीन ड्राम की मात्रा में दिन में तीन-चार बार पिलाया जाता है।

पर्शिया में आंवले को उदर-कृमिहर रूप में इस्तेमाल करते हैं।

हस्तिचिकित्सक आमले के वृक्ष की छाल को हाथी की आमाशय सम्बन्धी सब शिकायतों की चिकित्सा समझते हैं।

जिगर के रोग

आमले का चूर्ण यकृत और आमाशय के लिए बहुत गुणकारी है। सूखे आंवलों का चूर्ण लोहे की भस्म के साथ पाण्डु, कामला और अजीर्ण के लिए उपयोगी औषध समझा जाता है। आंवले का चूर्ण, लोह भस्म, सोंठ, मरिच, पिप्पली और हल्दी के चूर्ण को एकत्र मिला कर घी, शहद और खाण्ड के साथ मिला कर कामला तथा हलीमक में देने से लाभ होता देखा गया है।^१

श्वास संस्थान

श्वास-संस्थान के लिए आंवला और उस के ज्यवनप्राश आदि योग विशेष गुणकारी समझे जाते हैं। पुरानी खांसी और जुकाम में ज्यवनप्राश का प्रयोग बहुत होता है। पुरातनकास में ज्यवनप्राश उत्तेजक क्रियाशील कफनिस्सारक का काम करता है और फेफड़ों को शक्ति देता है। सर्दियों में जुकाम और खांसी की प्रवृत्ति वाले लोगों के लिए इस का सेवन बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। दूध में पकाये आंवले के चूर्ण को घी मिला कर खांसी में देने से लाभ होता है।^१ आंवले के स्वरस में शहद और पिप्पली मिला कर चाटने से वेदनानुगामी श्वास में लाभ होता है। ताजा फल फेफड़ों की शोध में सेवन कराया जाता है।

क्षय की प्रवृत्ति में

क्षय की प्रवृत्ति वाले मनुष्यों को प्रति दिन ज्यवनप्राश सेवन से लाभ होता है। क्षय की प्रारम्भिक अवस्था में भी इस के उपयोग से बहुत लाभ होता देखा गया है। कैल्शियम,

भक्षणाश्च विनिर्घ्नन्ति कामलाश्च हलीमकम् ॥

-२० सा० सं०, पाण्डुकामला चि०; २।

१ चूर्णमामलकाना वा क्षीरपक्वं घृतान्वितम्।

-अ० ह०, चि०, अ० ३।

लोह लवण तथा अनेक शक्तिप्रद वानस्पतिक ओषधियों का मिश्रण होने से च्यवनप्राश सब अङ्गों को पुष्टि देता है और इस का नियमित सेवन शरीर में रोग प्रतिरोधक शक्ति पैदा करता है। पहले जो आमलकी के योग दिये गये हैं उन सब की यह उपयोगिता है इसी लिए वे योग रसायन कहे जाते हैं।

रक्तपित्त, नक्सीर

खून आने (रक्तपित्त) में खाण्ड मिले आंवले के चूर्ण की फक्की दी जाती है। नासारक्तस्राव (नक्सीर) में आंवले के योग पित्त प्रकोप के शमन के लिए दिये जाते हैं। आमलकी शीतकषाय से नासिका का सेचन किया जाता है और घी में भूने हुए आंवले के कल्क का सिर पर लेप किया जाता है। चक्रपाणि का अनुभव है कि यह लेप नाक से आते हुए रुधिर को इस प्रकार रोक देता है जैसे जलधारा के वेग को बांध रोकता है।^१ जिन्हें नक्सीर फूटने की शिकायत हो जाया करती है उन्हें ताजे आंवले या आंवले का रस सेवन करना चाहिए। आंवलों का मौसम न हो तो आधी छटांक सूखे आंवलों को सोते समय आठ गुने पानी

१ नासाप्रवृत्तं रुधिरं घृतभृष्टं श्लक्ष्णपिष्टमामलकम्।

सेतुरिव तोयवेगं रुणद्धि मूर्ध्नि प्रलेपेन ॥

में भिगो कर सुबह जल नितार लें और शहद मिला कर पी जाया करें ।

मदात्यय

शराब अधिक पीने से होने वाले (मदात्यय) रोगों में आंवले के चूर्ण में चीनी मिला कर फकी लेनी चाहिए ।

मस्तिष्क और सिर के रोग

शिरोऽभिघात के कारण सिर में रक्त-संचय हो जाय तो आंवले के कल्क को घी के साथ मिला कर क्षत स्थान पर और सिर पर लेप कर देते हैं ।^१ गरमियों में सिर के रक्त-संचय को हटाने के लिए आंवले का तेल लगाया जाता है । मस्तिष्क के रक्त-संचार में कुछ बाधा हो, सिर व नेत्रों में जलन अनुभव होती हो तथा सिर दर्द की प्रवृत्ति और विचारों में गड़बड़ी रहती हो तो आंवले का तेल सिर पर मलने से लाभ होता है । कुछ ही दिनों में जलन शान्त हो जाती है और मस्तिष्क की विचार शक्ति ठीक हो जाती है ।

चौंसठ तोले तिल के तेल और आंवले के १२८ तोले रस में पुण्डरीक काष्ठ, मुलहठी, पिप्पली, लाल चन्दन, नीलो-

१ तथा मलक्याः फलमेव पिष्ट्वा घृतेन खण्डेन प्रलेपनं वा ।

निवार्यते मस्तकजं क्षतं च शिरोऽर्तिसंधान् विनिहन्ति चैतत् ॥

-हा० सं०, चि०, अ० ४२ ।

फर, प्रत्येक एक तोले का कल्क डाल कर विधिपूर्वक तेल पका लें। सिर के सब रोगों में यह नाक के अन्दर टपकाने से लाभ करता है।^१ सिर पकना आदि सिर के बाहरी रोगों में आंवला, अमलतास के कोमल पत्ते, लाख और पनवाड़ के बीजों का लेप करने से शीघ्र लाभ होता है।^२

बालों के लिए

भीतरी और बाहरी प्रयोग में आंवला बालों के लिए हितकर है। आंवले के जल से सिर धोना बहुत गुणकारी है। आमलकी तेल के दैनिक व्यवहार से बाल झड़ने बन्द हो जाते हैं। तिल, आंवला, पद्म केसर और मुलहठी के चूर्ण में शहद मिला कर सिर पर लेप करने से केशों की पुष्टि होती है, उनकी जड़ें मजबूत होती हैं और वे काले भी हो जाते हैं।^३ आंवले को आम की गुठली के साथ पीस कर

१ प्रपौण्डरीकमधुकपिप्पलीचन्दनोत्पलैः ।

कार्षिकैस्तैलकुडवो द्विगुणामलकीरसः ॥

सिद्धः सप्रतिमर्शः स्यात्सर्वमूर्धगदापहः ।

—च०, चि०, अ० २६; २७६-२७७ ।

२ धात्रीफलारग्वधबालपत्रलाक्षा विमिश्रः प्रपुनाडबीजैः ।

प्रलेपितो नाशमुपैति पुंसा सुदारुणो दारुणकः क्षणेन ॥

—रा० म०, शिरोरोग० १; १७ ।

३ तिलाः सामलकाः पद्मकिञ्जलको मधुकं मधु ।

सिर पर लेप करने से बाल घने और लम्बे होते हैं ।^१

हृदय के रोग

बाहरी तथा भीतरी प्रयोग में शीतल होने से आंवला पित्त को शान्त करता है । पित्त प्रकोप से हृत्कम्प और हृदय शूल हो तो आंवले से बनाई दवाएं देनी चाहिएं । पैत्तिक रोगों में आंवले के मुरब्बे का उपयोग किया जाता है, प्रति दिन प्रातः दूध से लिया जाता है और भोजनों में भी खाया जाता है ।

ज्वर

मलाया में पत्तों का कषाय ज्वर में देते हैं और शिरो-वेदना या शिरोभ्रम में पत्तों का कल्क माथे पर रखा जाता है । पिपासा शान्ति के लिए मूल का फाण्ट बना कर दिया जाता है । ज्वरों में पसीना लाने के लिए भी बीजों का फाण्ट दिया जाता है । छोटा नागपुर में आंवले के कल्क को गरम कर के खसरे की फुन्सियों पर लेप करते हैं । विसर्पज्वर (एरिसिपलिस) में आंवले का रस घी मिला कर देना

वृंहयेद्रज्जयेञ्चैतत्केशान्मूर्ध्नः प्रलेपनात् ।

—च०, चि०, अ० २६; २७६-२७७ ।

१ माकन्दबीजसहितामलकप्रलिप्तो

मूर्ध्नः शिरोरुहभरः समुपैति वृद्धिम् ॥

—रा० म०, शिरोरोगाधि० १; ११ ।

चाहिए। रोगी को मलबन्ध हो तो इसी में त्रिवृतमूल चूर्ण मिला कर देने से लाभ होता है।^१ विष विकारों में रोगी को दिये जाने वाले शाक के रसों को स्वादु बनाने के लिए आंवले का रस डाल कर खट्टा कर लेते हैं।^२

मूत्र मार्ग के रोग

मूत्र मार्ग में आंवला पित्त प्रकोप को शान्त करता है। शर्करा मिश्रित शुष्क फल चूर्ण मूत्रमार्ग की दाह, मूत्र-कुच्छ्र आदि पैत्तिक रोगों में लाभकारी है। कफज मूत्रकुच्छ्र में आंवले के साथ छोटी इलायची खाने से लाभ होता है।^३ ताजे फलों का रस मधु के साथ एक से तीन ड्राम की मात्रा में मूत्रल रूप में दिया जाता है। आंवले के कषाय में भी मधु या खाण्ड मिला देने से स्वादु शीतल पेय बन जाता है और यह मूत्रल का काम करता है। कौंकण में ताजी छाल

१ रसमामलकाना वा धृतमिश्रं प्रदापयेत् ।

स एव गुरुकोष्ठाय त्रिवृन्मूलयुतो हितः ॥

—च०, चि०, अ० ११ ।

२ धात्री दाडिममम्लार्थे ।

—च०, चि०, अ० २३; २२५ ।

३ पिबेन्मद्येन सूक्ष्मैला धात्रीफलरसेन वा ।

—अ० ह०, चि०, अ० ११; १० ।

का रस शहद और हल्दी के साथ पूयमेह (गनोरिया, सूजाक) में दिया जाता है। पूयमेह के रोगियों के लिए ताजे फल प्रति दिन खाना लाभदायक है। आधी छटांक सूखे आंवले रात को एक पाव पानी में भिगो कर सुबह जल नितार लें। इस में शहद डाल कर पीना सुजाक, मूत्रकृच्छ्र और दाह को शीघ्र दूर करता है। यह पेय अच्छा मूत्रल है और शीतल होने से मूत्रमार्ग की दाह आदि को भी शान्त करता है। साफ किशमिश या मुनकों को रात भर पानी में भिगो कर सुबह उन्हें हाथ से कुचल डालें। इस में आंवले का स्वरस और शहद मिला कर पिएं। ताजे आंवले न मिल सकें तो सूखे आंवलों का शीत कषाय बना लिया जा सकता है। पूयमेह के रोगी इस उत्तम स्वादु और बलदायक शर्बत को प्रति दिन तीन बार एक-एक गिलास पी सकते हैं। यह पेशाब खुल कर लाता है जिस से मूत्र-प्रणाली का प्रचालन हो जाता है। मूत्ररक्तस्राव में फलों का कषाय लाभदायक है। पेशाब जब कठिनाई से आता हो और उस के साथ खून भी निकलता हो तो आंवले के रस को गन्ने के रस और शहद के साथ लेना चाहिए।^१ मूत्र के दोषों से पीड़ित रोगियों के लिए सुश्रुत ने बताया है कि आंवलों को गन्ने की तरह पेर कर उन्हें

१ धात्रीरसं जेल्लुरसं पिबेद्वा कृच्छ्रे सरक्ते मधुना विमिश्रम्।

—बं० से०, मूत्रकृच्छ्राधि०।

खूब सारा रस पी लेना चाहिए ।^१ मूत्राशय के क्षोभ में वस्ति प्रदेश पर फलों के कल्क का लेप उपयोगी होता है । इस कल्क में नीलोफर, केसर और गुलाब की पंखड़ियां भी मिलाई जा सकती हैं । पेशाब रुक जाने की अवस्था में वस्ति प्रदेश पर इस लेप को लगाने से लाभ होता है ।

मधुमेह

मधु मिश्रित आमलकी स्वरस मधुमेह में लाभकारी होता है । मधुमेही की पिपासा शान्ति के लिए ताजे फलों का चूसना उत्तम तृपाशामक का कार्य करता है । बीजों का फाट भी मधुमेह में दिया जाता है । मधुमेह धनिकों का रोग समझा जाता है । वे यदि अपनी आरामतलबी की आदतें बदल कर सादा खान-पान और रहन-सहन अख्यार कर ले तो उन्हें आंवला अधिक लाभ पहुंचा सकता है । सुश्रुत कहते हैं कि चाहे कितना भी धनी हो उसे मुनियों की तरह श्यामाक व नीवार धानों पर निर्वाह करते हुए और आमलकी फलों का भोजन करते हुए हिरणों के साथ रहना चाहिए ।^२

१ प्रपीड्यामलकानान्तु रसं कुडवसम्मितम् ।

पीत्वाऽगदो भवेज्जन्तुर्मूर्त्रदोपरुज्जतुरः ॥

—सु०, उ०, अ० ५८ ।

२ महाधनो वा श्यामाकनीवारवृत्तिरामलकफलाहारो मृगैः सह वसेत् ।

—सु०, चि०, अ० ११ ।

प्रमेह

आंवले के रस में पिसी हुई हल्दी और शहद मिला कर चरक प्रमेहों में देते हैं ।^१ आंवले के खरस को शहद के साथ हारीत सब प्रकार के प्रमेहों के निवारण के लिए निरन्तर चिरकाल तक सेवन करने की सिफारिश करते हैं ।^२ एक तोला आंवले के रस को प्रति दिन शहद के साथ सेवन करने से शुक्रमेह^३ और बहुमूत्रता नष्ट होती है ।^४ बहेड़े के साथ फलों के कषाय का अन्तः प्रयोग उत्पादक अंगों के स्वाव में अत्युत्तम प्राही कार्य करता है ।

स्त्रियों के उत्पादक अङ्गों के रोग

रक्तप्रदर में आंवले के योग पित्त-प्रकोप की शान्ति के

१ क्षौद्रेण युक्तामथवा हरिद्रा पिवेद्रसेनामलकीफलानाम् ।

-च०, चि०, अ० ६; २५ ।

२ आमलकस्य खरसं मधुना च विमिश्रितम् ।

... .. सर्वमेहरोगनिवारणम् ॥

-हा० सं०, प्रमेह चि०, अ० २८; ४३ ।

३ शुक्रमेहरो दृष्टः क्षौद्रेणामलकी रसः ।

-भै० २०, शुक्रमेहाधि०; १७ ।

४ बात्रीफलस्य रसकं मधुना च पिवेत्सदा ।

बहुमूत्रक्षयं कुर्यात्... .. ॥

-भै० २०, बहुमूत्राधि०; ८ ।

लिए दिए जाते हैं। छह-सात मासे आवले का कल्क बना कर शहद के साथ प्रदर में आते हुए खून को रोकने के लिए और गर्भाशय से होते हुए रक्तस्राव को बन्द करने के लिए दिया जाता है। श्वेत प्रदर में आवले के बीज को पानी के साथ रगड़ कर शहद या खाण्ड मिला कर देते हैं। ताजे आवले के रस को या सूखे आवले के चूर्ण को भी शहद के साथ श्वेद प्रदर में देने से लाभ होता है।^१ योनि में गरमी और जलन रहती हो तो ताजे फल के रस में मिश्री^२ या शहद मिला कर निरन्तर पीना चाहिए। सूखे या ताजे आवले को जल में पीस कर वस्ति भाग पर किया गया लेप वस्तिशूल, योनिशूल, मूत्रनिग्रह^३ और दाह को दूर करता है।

मृगी

३ सेर १६ तोले घी में १ मन ११ सेर १६ तोले आवले

१ जलेनामलकाद्बीजकल्कं वा ससिता मधु ।

मधुनाऽऽमलकाच्चूर्णं रस वा लेहयेत् सिते ॥

—च०, चि०, अ० ३० ।

२ धात्रीरसं सितायुतं योनिदाहे पिबेत् सदा ।

—भा० प्र०, योनिरोगचि० ।

३ आमलक्याश्च कल्केन वस्तिभागं प्रलेपयेत् ।

तेन प्रशाम्यति क्षिप्रं नियमान्मूत्रनिग्रहः ॥

—भा० प्र०, योनिरोगचि० ।

के रस और १६ तोले मुलहठी के कल्क को डाल कर विधिपूर्वक घृत पाक करें। यह सिद्ध धी आधे तोले की मात्रा में वैश्विक प्रकृति वाले मृगी के रोगी को दिया जाता है।^१

गठिया

गठिया (वातरक्त) के सब प्रकारों में रोगी को आंवले के रस में पुगना धी पका कर पीने के लिए देना चाहिए।^२

बवासीर

खूनी बवासीर के रोगी को भोजनों में आंवलों को विविध रूपों में खाना चाहिए और पित्तप्रकोप की शान्ति के लिए आंवले के योगों का सेवन करना चाहिए। बवासीर के रोगी को लश्सी पर रहते हुए आंवले का प्रयोग करना प्रशस्त समझा जाता है।^३

ज्वर

सूखे आंवले के कषाय से क्षत स्थानों को धोने से खून

१ मधुकद्विपले कल्के द्राणे चामलकीरसात् ।

तद्वत्सिद्धं घृतप्रस्थं पिशापस्मारभेषजम् ॥

—च०, चि०, अ० १०; २६ ।

२ सर्वेषु पुराणघृतमामलकरस विपक्वं वा पानार्थे ।

—सु०, चि०, अ० ५ ।

३ एष एव आमलकी गुडूचीषु तक्रकल्पः ।

—सु०, चि०, अ० ६ ।

बहना बन्द हो जाता है। इसी की पट्टी कर दी जाय तो जखम साफ हो कर धीरे-धीरे ठीक हो जाता है। बड़ौदा में आंवले का रस दुर्गन्धित त्रणों पर उत्तम लेप समझा जाता है। गौज को रस में भिगो कर त्रणों पर रखें और पट्टी बांध दें। आवश्यकतानुसार दिन में दो बार या प्रतिदिन एक बार गौज बदल कर नई पट्टी बांधी जा सकती है। कुष्ठहर दस ओषधियों में चरक ने आंवले का पाठ किया है।^१

आंख के रोग

नेत्रों में से रक्तसंचय को हटाने के लिये आमलकी शीतकषाय से नेत्र धोए जाते हैं। सूखे आंखों को रात भर पानी में भीगा रहने दें। प्रातः छान कर इस से आंख धोएं। नेत्राभिष्यन्द में इस से बहुत लाभ होता है। इस शीतकषाय को ठण्डा या गरम जैसा आंख को सुखकर प्रतीत हो वैसा प्रयोग किया जा सकता है। आंवले के रस को आंखों में डालने से नूतन अभिष्यन्द में लाभ होता है।^२ नेत्रपटल-शोथ (Conjunctivitis) में पत्तों के कल्क का बाह्य प्रयोग होता है। आंवले के काथ से आंखों में परिषेचन करने

१ देखिए च०, सू०, अ० ४; ३७।

२ धात्रीफलनिर्वासी नवदृक्कोपं निहन्ति पूरणतः।

-च० द०, नेत्ररोगचि०; ५।

से आंखों के विकारों में लाभ होता है ।^१ वृक्ष पर लगे हुए आंवले को सुई से चीरा देने से निकले हुए रस को आंखों में डालने से सम्पूर्ण आंखों के रोग दूर हो जाते हैं ।^२ आंवले के रस में काला सुरमा, शहद और घी को कुछ दिन घोटें । रस सूख जाने पर इसे पित्तज और रक्तज नेत्र रोग में आजते हैं ।^३ आंवला, सेन्धा नमक और पिप्पली को सम-परिमाण में लें और थोड़ी सी काली मिरच मिला कर घोटें । बहुत बारीक हो जाने पर शहद मिलाएं । यह रसक्रिया अंधेपन और पटल को नष्ट करती है ।^४

- १ क्वाथः सुशीतो नयने निषिक्तः सर्वप्रकारं विनिहन्ति शुक्रम् ॥
-भै० २०, नेत्ररोगाधि०: ७१ ।
- २ तदस्यविद्धमामलकरसः सर्वाक्षिरोगनुत् ।
-च० ६०, नेत्ररोग चि०: ३६ ।
- ३ धात्रीरसाञ्जनक्षौद्रसर्पिभिस्तु रसक्रिया ।
पित्तरक्ताक्षिरोगधनी तैमिर्यपटलापहा ॥
-च०, चि०, अ० २६; २५८ ।
- ४ धात्रीसैन्धवपिप्पल्यः स्युरल्पमरिचाः समाः ।
क्षौद्रयुक्ता निहन्त्यान्ध्यं पटलं च रसक्रिया ॥
-च०, चि०, अ० २६; २५६ ।



त्रिफला

त्रिफला आयुर्वेद का प्रसिद्ध द्रव्य है। आयुर्वेद में हरड़, बहेड़े और आंवले का प्रयोग सम्मिलित रूप में त्रिफला नाम से अधिक हुआ है। इस लिये इस के तीनों अंगों का पहले वर्णन करने के बाद भी सम्मिलित त्रिफला का पृथक् वर्णन किया जा रहा है।

संस्कृत के नाम^१

त्रिफला, फलत्रिका, फलत्रय (तीन फलों का समूह); फलोत्तमा (उत्तम गुणकारी फल); श्रेष्ठा, फलश्रेष्ठा (श्रेष्ठ फल); वरा (रसायन में श्रेष्ठ फल)।

१क हरीतक्याश्चामलक्याः विभीतकस्य च फलम् ।

त्रिफलेत्युच्यते वैद्यैः...

—हा० सं०, क०, अ० २ ।

ख हरीतकी चामलकं विभीतकमिति त्रयम् ।

त्रिफला त्रिफली चैव फलत्रय फलत्रिके ॥

—रा० नि०, मिश्रकादि०; ३ ।

ग पथ्याविभीतधालीणां फलैः स्यात्त्रिफला समैः ।

फलत्रिकं च त्रिफला सा वरा च प्रकीर्तिता ॥

—भा०, प्र०, हरीतक्यादि०; ४२ ।

अन्य भाषाओं में नाम

भारतीय भाषाओं में इसे प्रायः सर्वत्र त्रिफला कहते हैं। अंग्रेजी में इस का नाम थ्री माइरोबैलन्स है जो फलों के त्रिक को देख कर रक्खा गया है।

उपयोगी भाग तथा संग्रह

रसायनार्थ लिये जाने वाले हरड़, आंवला आदि फल हिमालय पर्वत पर उत्पन्न होने चाहिएं। श्रेष्ठ हिमालय पहाड़ ओपधियों की उत्कृष्ट भूमि है। इस लिये अपनी ऋतुओं में उत्पन्न हुये फलों को हिमालय से ही समय-समय पर यथाविधि ग्रहण करें। फल रस और वीर्य से पूर्ण होने चाहिएं, सूर्य की धूप, जल, छाया और वायु से तृप्त होने चाहियें। जले हुये, सड़े हुए, चोट खाये हुये, और रोगाक्रान्त न हों।

घ फलोत्तमा फलश्रेष्ठा च फलत्रयम् ।

फलत्रिकं वरा ज्ञेया पथ्याधात्रीविभीतकैः ॥

—कै० दे० नि०, ओ० व०; २२६ ।

ङ त्रिफलैतत्त्रयेण स्वाद्वरा श्रेष्ठा फलोत्तमा ।

—म० वि० नि०, अभयादि० ।

१ ओषधीना पराभूमिर्हिमवान् शैलसत्तमः ।

तस्मात्कालानि तज्जानि ग्राहयेत्कालजानि तु ॥

इतिहास

यूल और बूर्नेल (१६०३) के अनुसार प्राचीन काल से त्रिफला भारत से निर्यात किया जा रहा है । द्रव्यगुण के मध्यकालीन ग्रन्थों में यह बहुत प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था । कुछ काल बाद अंग्रेजी चिकित्सा में से ये चीजें लुप्त हो गई । हैनबरी और फ्लुकिजर के महान् ग्रन्थ फार्माको-ग्राफिया में इन्हें कोई स्थान नहीं दिया गया । रौयल (Royle) के अनुसार अरब और कुछ मध्यकालीन ग्रीक लेखकों ने त्रिफला का वर्णन किया है । मध्यकालीन फार्माकोपिया में पांच प्रकार के फलों को त्रिफला (माइरोबेलन) कहते थे । हरड़, बहेड़ा, आंवला के अतिरिक्त पीली तथा काली दो प्रकार की हरड़ों के फलों को भी सम्मिलित कर के उन का त्रिफला बनता था । गार्सिया ने त्रिफला को तीनफला लिखा है । पीली हरड़, काली हरड़ और बहेड़े को मिला कर वह तीन-फला नाम देता है । गार्सिया के अनुसार आंवला गोआ में चिकित्सा प्रयोजनों में काम नहीं आता था । यह केवल चर्म-कर्म में काम आता था । गार्सिया द'और्ता जिन अरब चिकित्सकों

आपूर्णरसवीर्याणि काले काले यथाविधि ।

आदित्यसलिलच्छायापवनप्रीणितानि च ॥

यान्यजग्धान्यपूतीनि निव्रणान्यगदानि च ।

—च०, चि०, अ० १; ३६-३८ ।

से परामर्श करता था वे त्रिफला को देलेगी कहते थे। इस शब्द से ठीक-ठीक क्या बोध होता है यह कइना कठिन है। सम्भवतः लिखने की भूल में यह अलेलेगि अर्थात् इहलीलज से बन गया हो।

मौलाना सैयद सुलेमान नदवी ने 'अरब और भारत के सम्बन्ध' (१६३०, पृष्ठ १२४) में बताया है—'अरबी में दो शब्द सब से बढ़ कर विलक्षण हैं, जिन में से एक तो दवा का नाम है और दूसरा खाय पदार्थ का। दवा में इतरीफल है, जो इतना अधिक प्रसिद्ध है और प्रत्येक चिकित्सक तथा रोगी जिस का व्यवहार करता है। हिजरी चौथी शताब्दी में मुहम्मद खवारिज्म (मफातीहुल् उलूम, पृष्ठ १८६) ने लिखा है कि यह हिन्दी शब्द त्रिरीफला (त्रिफला) है। यह तीन फलों अर्थात् हर, बहेड़े और आंवले से बनता है।'

'इसी प्रकार की एक और दवा का नाम अंबजात है। खवारिज्मी कहता है—'भारत में आम नाम का एक फल होता है। उसी को शहद, नीबू और हरें में मिला कर 'अंबजात' बनाते हैं।' मौलाना सुलेमान के खयाल में 'सम्भवतः इस को गुड़म्बा या आमों का आचार या मुरब्बा कहना चाहिए।'

त्रिफला का अनुपात

हरड़, बहेड़ा और आंवला ये तीनों फल आकार और

भार में कम अधिक होते हैं इस लिए उन को त्रिफला में किस अनुपात से लिया जाय ? अष्टाङ्ग हृदय की व्याख्या में अरुणदत्त ने इस पर इस प्रकार प्रकाश डाला है—‘बहेड़े का नाम क्योंकि कर्षफल है इस लिए इसे एक कर्ष लेना चाहिए । अथवा एक कर्ष भार वाला बहेड़े का फल लेना चाहिए । श्रेष्ठ हरड़ की पहिचान बताते हुए उस का भार में दो कर्ष होना भी एक विशेषता बताई जाती है । इस लिए हरड़ का प्रमाण भी दो कर्ष नियत समझना चाहिए ।^१ कैयदेव आदि लेखकों ने हरड़, बहेड़े और आंवले को संख्या में क्रमशः एक, दो और चार लेने के लिए लिखा है ।^२ अरुणदत्त ने इस हिसाब से आंवले का भार आधा कर्ष निश्चित कर लिया है ।^३ अरुणदत्त के मत में संख्या में लिये जाने वाले हरड़, बहेड़ा और आंवला यदि क्रमशः १, २ और ४ के अनुपात में लिये जा रहे हैं तो भार में ये स्वतः ही समान-समान हो

१ देखे—अष्टाङ्ग हृदय, सूत्र स्थान, अ० ६; श्लोक १५ की व्याख्या में अरुणदत्त की टीका ।

२ एका हरीतकी योज्या द्वौ च योज्यौ विभीतकौ ।

चत्वार्यामलकानीति त्रिफला प्रोच्यते बुधैः ॥

—कै० दे० नि०, ओ० व०; २२६-२३१ ।

३ देखें—अष्टाङ्ग हृदय, सू०, अ० ६, श्लोक १५ की व्याख्या में अरुणदत्त की टीका ।

जायंगे । भावमिश्र ने भी इन को समान भाग में लेने के लिए लिखा है ।^१ हरीत एक भाग हरड़, दो भाग बहेड़ा और तीन भाग आंवले को मिला कर त्रिफला बनाते हैं ।^२ मदन पाल ने तीन भाग हरड़, छह भाग बहेड़ा और बारह भाग आंवले से त्रिफला बनाया है ।^३

आचार्यों के मतों में इस भिन्नता से ओषधियों के स्टैण्डर्ड को स्थिर रखने में बड़ी भारी कठिनाई पैदा हो जाती है । इस से बचने के लिए हमारी सम्मति में गुठली और बीज रहित तीनों फलों के केवल गूदे समान भाग में लेना श्रेयस्कर रहेगा ।^४

१ पथाविभीतकधात्रीणां फलैः स्यात्त्रिफला समैः ।

फलत्रिक च त्रिफला सा वरा च प्रकीर्त्तिता ॥

—भा० प्र०, हरीतक्यादि०; ४० ।

२ एकभागो हरीतक्या द्वौ भागौ च विभीतकम् ।

आमलक्यास्त्रिभागश्च सहैकत्र प्रयोजयेत् ॥

—हा० सं०, क०, अ० २ ।

३ हरीतक्यास्त्रयो भागाः शिवा द्वादशभागिकाः ।

पट्भागः स्युर्विभीतस्य त्रिफलेयं प्रकीर्त्तिता ॥

—म० पा० नि०, अभयादि०; ३० ।

४ अतश्चामृतकल्पानि विद्यात्कर्मभिरीदृशैः ।

हरीतकीनां शस्यानि भिषगांमलकस्य च ॥

—च०, चि०, अ० १; ३५ ।

ह्रस्व त्रिफला

गोविन्द दास ने हरड़, बहेड़ा और आंवला इन तीनों फलों को महती त्रिफला नाम दिया है। इस लेखक की ह्रस्व त्रिफला यह है—गाम्भारी, द्राक्षा तथा फालसे के मिले हुए फल।^१

मधुर त्रिफला

नरहरि पण्डित ने दाख, गाम्भारी और खजूर इन तीन मोठे फलों के त्रिक को मधुर त्रिफला नाम दिया है।^२

त्रिफला शब्द से सामान्यतया सर्वत्र महती त्रिफला का ही महण होता है।

गुण^३

त्रिफला दीपक, भोजन में रुचि पैदा करने वाली और

१ पथ्या विभीतकं धात्री त्रिफला महती स्मृता।

ह्रस्वा काश्मर्यमृद्धीकापरुषकफलानि च ॥

—भै० २०, परिभाषाप्रकरण; १५।

२ द्राक्षाकाश्मर्यखजूरी फलानि मिलितानि तु।

मधुरात्रिफला ज्ञेया मधुरादिफलत्रयम् ॥

—रा० नि०, मिश्रकादि०; ४।

३ त्रिफला कफपित्तघ्नी महाकुष्ठविनाशिनी।

आयुष्या दीपनी चैव चक्षुष्या व्रणशोधिनी ॥

वर्णप्रदायिनी घृष्टा विषमज्वरनाशिनी।

उलटियों को रोकने वाली है। वायु गोला (गुल्म) को ठीक करती है। चरबी (मेद) बढ़ जाने तथा श्लेष्म वृद्धि को और मूत्र के रोगों (मेह) को हटाती है। कफ तथा पित्त की नाशक है। अनुलोमक, बवासीर को नष्ट करने वाली, रक्त-पित्तहर और विषमज्वर (मलेरिया) नाशक है। जख्मों को साफ कर के उन्हें शीघ्र भरती है। खुजली, कुष्ठ आदि

दृष्टिप्रदा कण्डुहरा वामगुल्मार्शनाशिनी ॥

सर्वरोगप्रशमनी मेधास्मृतिकरी परा ।

—हा० सं०, क०, अ० २ ।

ख इय रसायनवरा त्रिफलाऽद्यामयापहा ।

रोपणी त्वग्गदक्लेदमेदोमेहकफास्रजित् ॥

—अ० ह०, सू०, अ० ६; १५६ ।

ग त्रिफला कफपित्तघ्नी मेहकुष्ठहरा सरा ।

आयुष्या दीपनी रुच्या विषमज्वरनाशिनी ॥

—भा० प्र०, हरीतक्यादि०; ४३ ।

घ त्रिफला पित्तकफहृद्रसायनवरा सरा ।

रोपणी कुष्ठमेहास्रक्लेदमेदोविनाशिनी ॥

चक्षुष्या दीपनी हृद्या विषमज्वरनाशिनी ।

—कै० दे० नि०, श्रो० व०; २३० ।

ङ त्रिफला कुष्ठमेहास्रकफपित्तविनाशिनी ।

चक्षुष्या रोपणी हृद्या वयसः स्थापनी सरा ॥

—म० वि० नि०, अभयादि० १ ।

त्वचा के रोगों को, त्वचा की विवर्णता को और महाकुष्ठ (गलित कुष्ठ) को भी ठीक कर देती है । घिस कर लगाने से त्वचा की विवर्णता को दूर कर देती है । नेत्ररोगनाशक, दृष्टि शक्ति को बढ़ाने वाली, आंखों के लिए हितकर, आयु को बढ़ाने वाली, आयु को स्थिर करने वाली, मेधा तथा स्मृति बढ़ाने वाली, हृदय के लिए हितकर, सब रोगों को शान्त करने वाली श्रेष्ठ रसायन है ।

मधुर तथा शीत होने से पित्त को और रुक्ष तथा कषाय होने से कफ को नष्ट करने का गुण त्रिफला में है ।^१

योग

त्रिफलादि काथ—त्रिफला, गिलोय, वासा, किराततिका, कटुकी, निम्ब सब समान भाग में ले कर कषाय बनाएँ ।

मात्रा—एक से चार औंस ।

रोग—कामला, पाण्डु, रक्तपित्त, अम्लपित्त, त्वक् रोग, आदि ।

त्रिफलादि चूर्ण—त्रिफला चार तोला, मुलैठी दो तोला, लोह भस्म एक तोला, चूर्ण बनाएँ ।

मात्रा—चार से छह रत्ती ।

१ पित्त माधुर्यशैत्यन्तु कफ रुक्षकषायनुत् ।

त्रिफलैतत्त्रयेण स्याद् वरा श्रेष्ठा फलोत्तमा ॥

—म० पा० नि०, अभयादि०; ३१ ।

रोग—पाण्डु, कामला, अर्शस्, नेत्ररोग, पलित रोग ।

अनुपान—मधु-घृत ।

अभयावटक^१—हरड़ बारह तोले, त्रिफला, सोंठ, मिरच और पिप्पली प्रत्येक चार तोला, अजमोदा, चव्य, चित्रक, वायविडङ्ग, अम्लवेत, सेंधा नमक और वच प्रत्येक दो तोला, दालचीनी, तेजपत्र, इलायची प्रत्येक तीन तोला, सब का सूक्ष्म चूर्ण करें । १२० तोला गुड़ मिला कर एक-एक तोले की गोली बनाएँ ।

मात्रा—एक या दो गोली ।

रोग—प्लीहोदर, अर्श, गुल्म, मन्दाग्नि, पाण्डु, कामला आदि ।

त्रिफलादिक्षार^२—हरड़, बहेड़ा, आंवला, अपगजिता,

१ अभयाफलत्रयाणां पलत्रयं त्रिकटुकात्पलमेकञ्च ।

दीप्यकचव्यकचित्रकविडङ्गवृक्षांस्त्रिधुवचार्धपलैः ॥

त्वक्पत्रैलाकषैश्चिभिर्युक्तं सुचूर्णितं सूक्ष्मम् ।

त्रिशद्गुडपलम्हिताः कर्त्तव्यास्तरुसंमितावटकाः ॥

अभयावटकानाम्ना प्लीहार्शगुल्मजठरापहराः ।

पाण्डूवामयकामलानां मन्दाग्नीनां सर्वदा शस्ताः ॥

—अ० से० सं०, उदररोगाधि०; ५१-५३ ।

२ त्रिफला कटभी चव्यं बिल्वमध्यमयोरजः ।

रोहिणी कटुका मुस्तं कुष्ठं पाठा च हिङ्गु च ॥

मध्य बिल्वगिरी, लोहभस्म, कटुकी, मोथा, कुष्ठ, पाठा, होंग, मुजैठी, मुष्कक्षार, यवक्षार, सोंठ, काली मिरच, पिप्पली, वच, वायविडङ्ग, पिप्पलीमूल, सर्जक्षार, नीम की छाल, चित्रक, मूर्वामूल, अजवायन, इन्द्रजौ, गिलोय और देवदारु प्रत्येक १ तोला, सैन्धव, सौंचला, विड, औद्धिद और सामुद्र नमक प्रत्येक आठ तोला, इन्हें २ सेर ३२ तोला दही और १ सेर १६ तोले घी तथा इतने ही तेल में मिला कर मन्दाग्नि पर अन्तर्धूम जलायें ।

मात्रा—एक से दो माशे तक ।

मधुकं मुष्ककयवक्षारौ लिङ्गकं वचाम् ।
विडङ्गं पिप्पलीमूलं स्वर्जिका निम्बचित्रकौ ॥
मूर्वाजमोदेन्द्रयवान् गुडूची देवदारु च ।
कार्षिकं लवणानां च पञ्चानां पलिकान्पृथक् ॥
भागान्दध्नि त्रिकुडवे घृततैलेन मूर्च्छितान् ।
अन्तर्धूम शनैर्दग्ध्वा तस्मात्पाणितलं पिवेत् ॥
सर्पिषा कफवाताशं ग्रहणीपाण्डुरोगवान् ।
प्लीहमूत्रग्रहश्वसद्विकाकासक्रिमिज्वरान् ॥
शोषातिसारौ श्वयथुं प्रमेहानाहहृद्ग्रहान् ।
हृन्त्यात्सर्वे विषं चैव क्षारोऽग्निजननो वरः ॥
जीर्णे रसैर्वा मधुरैरश्नीयात्पयसाऽपि वा ।

—च०, चि०, अ० १५; १८८-१९४ ।

रोग—कफ वातज अर्श, ग्रहणी, पाण्डु रोग, प्लीहा, श्वास, कास, कृमि, अग्निमान्द्य आदि ।

फलारिष्ट^१—हरड़ और आंवला प्रत्येक १ सेर ४८ तोला, इन्द्रायण, कैथफल का गूदा, पाठा, चित्रकमूल प्रत्येक सोलह तोला के यवकुट चूर्ण को २ मन २२ सेर ३२ तोले पानी में पकाएँ । एक चौथाई पानी बच जाने पर उतार कर छान लें और दस सेर गुड़ घोल दें । घृतसिक्त घड़े में पन्द्रह दिन तक रखा रहने के बाद छान कर प्रयोग करें । चरक ने यद्यपि घातकी पुष्प का पाठ नहीं किया पर ३२ तोला धाय के फूल डाल देना चाहिये ।

१ हरीतकी फलप्रस्थं प्रस्थमामलकस्थ च ॥

विशालाया दधित्थस्य पाठाचित्रकमूलयोः ।

द्वे द्वे पले समापोथ्य द्विद्रोणे साधयेदपाम् ॥

पादावशेषे पूते च रसे तस्मिन् प्रदापयेत् ।

गुडस्यैका तुला वैद्यस्तत्स्थाप्यं घृतभाजने ॥

पक्षस्थितं पिवेदेनं ग्रहण्यर्शोविकारवान् ।

हृत्पाण्डुरोगं प्लीहानं कामला विषमज्वरम् ॥

वर्चोमूत्रानिलकृतान्विबन्धानग्निमार्दवम् ।

कासं गुल्ममुदावर्तं फलारिष्टो व्यपोहति ॥

अग्निमन्दीपनो ह्येष कृष्णाग्नेयेण भाषितः ।

मात्रा—सवा से ढाई तोला तक ।

रोग—ग्रहणी, अर्श, हृद्रोग, पाण्डु, कामला, प्लीहा, मलबन्ध, अग्निमान्द्य, कास, वातरोग आदि ।

फलत्रिकाद्यरिष्ट^१—त्रिफला, चित्रक, पिप्पली, अजवायन, लोह भस्म, वायविडङ्ग, प्रत्येक का चूर्ण ३२ तोला, मधु १२८ तोला, जल १ मन ११ सेर १६ तोला और १० सेर पुराने गुड़ को घृत भावित पात्र में डाल कर मुख बन्द करें और यव-राशि में रक्खें ।

मात्रा—एक से ढाई तोला ।

रोग—हृद्रोग, पाण्डुरोग, प्लीहा आदि के कारण होने वाली शोथ, गुल्म आदि ।

अभयारिष्ट(१)^२—हरड़ ६४ तोला, आंवले १२८ तोला, कैथ की मज्जा १ सेर, इन्द्रायण आध सेर, वायविडङ्ग, पिप्पली,

१ फलत्रिकं चित्रकपिप्पली च सदीप्यकं लोहरजो विडङ्गम् ।

चूर्णीकृतं कौडविकं द्विरंशं क्षौद्रं पुराणस्य तुला गुडस्य ॥

मासं निदध्याद् घृतभाजनस्थं यवेषु तानेव निहन्ति रोगान् ॥

—च०, चि०, अ० १२; ३८ ।

२ हरीतकीना प्रस्थार्धं प्रस्थमामलकस्य च ॥

स्यात्कपित्थाद्दशपलं ततोऽर्धा चेन्द्रवारुणी ।

लोध, काली मिरच, एलवालुक प्रत्येक १६ तोला इन सब को ५ मन ४ सेर ६४ तोले जल में पकाएँ । १ मन ११ सेर १६ तोले शेष रह जाने पर २० सेर गुड़ घोल कर घृत सिंगध घड़े में बन्द कर दें । १५ दिन बाद निकाल लें और छान कर बोतलों में भर दें ।

मात्रा—सवा से ढाई तोला ।

रोग—महणी, पाण्डु, तिल्ली, हृद्रोग, अर्श, कुमि, ज्वर, राजयक्ष्मा आदि ।

विडङ्गं पिप्पली लोध्रं मरिच सैलवालुकम् ॥

द्विपलाशं जलस्यैतच्चतुद्रोणे विपाचयेत् ।

द्रोणशेषे रसे तस्मिन्पूते शीते समावपेत् ॥

गुडस्य द्विशतं तिष्ठेत्तत्पक्वं घृतभाजने ।

पक्षादूर्ध्वं भवेत्पेया ततो मात्रा यथाबलम् ॥

अस्याभ्यासादरिष्टस्य नश्यन्ति गुदजा द्रुतम् ।

महणीपाण्डुहृद्रोगप्लीहगुरुमोदरापहः ॥

कुष्ठशोफारुचिहरो बलवर्णाम्रिवर्धनः ।

सिद्धोऽयमभयारिष्टः कामलाश्चित्रनाशनः ॥

कुमिग्रन्थिबुर्दव्यङ्गराजयक्ष्मज्वरान्तकृत् ।

च०, चि०, अ० १४; १३६-१४४ ।

वाग्भट्ट इस अरिष्ट में १२८ तोला घातकीपुष्प भी डालने का

विधान करते हैं—

शिवा गुग्गुलु^१—हरड़, बहेड़ा और आंवला प्रत्येक ३२ तोला को ६ सेर ३२ तोला जल में चौथाई पानी शेष रहने तक पकाएँ । वस्त्रपूत कवाथ में एरण्ड तेल १६ तोला शुद्ध गन्धक ३ तोला और शुद्ध गुग्गुलु १६ तोला डाल कर पकाएँ । पाक शेष के समय निम्न लिखित प्रत्येक द्रव्य का एक तोला चूर्ण डाल कर मिला दें—रास्ना, विडङ्ग, मिरच, पिप्पली, दन्तीमूल, जटामांसी, सोंठ और देवदारु ।

सलिलस्य बहे पक्त्वा प्रस्थार्धमभयात्वचम् ॥
प्रस्थं धान्ना दशपलं कपित्थाना ततोऽर्धतः ।
विशाला रोध्रमरिचकृष्णावेल्लैलवालुकम् ॥
द्विपलाशं पृथक्पादशेषे पूते गुडाक्षुले ।
दत्त्वा प्रस्थं च भातक्याः स्थापयेद् घृतभाजने ॥
पक्षारस शीलितोऽरिष्टः करोत्यग्निं निहन्ति च ।
गुदजग्रहणीपाण्डुकुष्ठोदरगरज्वरान् ॥
श्वथुप्लीहहृद्रोगगुल्मयक्ष्मवमीकृमीन् ।

—अ० ह०, बि०, अ० ८; ६४-६८ ।

- १ शिवाविभीतामलकीफलानां प्रत्येकशो मुष्टिचतुष्टयञ्च ।
तोयाटके तत्त्ववथितं विधाप पादावशेषे त्ववतारणीयम् ॥
एरण्डतैलं द्विपलं निधाप पिचुत्रयं गन्धकनामकस्य ।
पचेत्पुरस्यात्र पलद्वयञ्च पाकावशेषे च त्रिचूर्ण्य दद्यात् ।

मात्रा—छः रत्ती से चार माशा ।

रोग—आमवात, कटिशूल, गृध्रसी आदि ।

त्रिफलादि घृत^१—गौ का घी ३½ सेर त्रिफला का क्वाथ १३ सेर, दूध ३½ सेर, कल्क के लिये त्रिफला ६४ तोले; यथा-विधि सिद्ध करें ।

मात्रा—आधा तोला प्रतिदिन सायंकाल सेवन करें ।

रोग—तिमिर रोग ।

त्रिफलादि घृत (१)^२—घृत ३½ सेर, त्रिफला क्वाथ १३ सेर, शतावरी का रस १३ सेर, कल्क के लिये मुलैठी ६४

राम्ना विडगं मरिचं कणा च दन्ती जटा नागरदेवदारु ।

प्रत्येकशः कोलमितं तथैषा विचूर्ण्य निःक्षिप्य निर्योजयेच्च ॥

आमवाते कटीशूले गृध्रमी क्रोष्टुर्शीर्षिके ।

न चान्यर्दास्ति भैषज्यं यथायं गुग्गुलुः स्मृतः ॥

—र० सा० सं०, आमवातनि०: १६-२० ।

१ त्रिफलाक्वाथकल्काभ्यां सपयस्कं शृतं घृतम् ।

तिमिराण्यचिराद्वन्ति पीतमेतन्निशामुखे ॥

—भै० र०, नेत्ररोगाधि०: १७२ ।

२ फलतिका भीरुकपायसिद्धं कल्केन यष्टीमधुकस्य युक्तम् ।

सर्पिः समं क्षौद्रचतुर्थभागं हन्यात्त्रिदोषं तिमिरं प्रवृद्धम् ॥

—भै० र०, नेत्ररोगाधि०: १७२ ।

तीला, यथाविधि घृत पाक करें ।

मात्रा—आधा तोला ।

रोग—विशेषज तिमिर ।

अनुपान—मधु ।

महात्रिफलादि घृत ^१—गौ का बी सवा तीन सेर, त्रिफला काथ सवा तीन सेर (मिलित त्रिफला १२८ तोला, काथार्थ

- १ त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृंगरसस्य च ।
वृषस्य च रसप्रस्थं शतावय्याश्च तत्समम् ॥
अजाक्षीरं गुडूच्याश्च आमलावया रसं तथा ॥
प्रस्थं प्रस्थं समाहृत्य सर्वैरेभिर्घृतं पचेत् ॥
कल्कः कणासिता द्राक्षा त्रिफला नीलमुत्पलम् ।
मधुकं क्षीरकाकोली मधुपर्णी निदिग्धिका ॥
तत्सामु सिद्धं विशाय शुभे भाण्डे निधापयेत् ।
ऊर्ध्वपानमधःपानं मध्ये पानञ्च शस्यते ॥
यावन्तो नेत्ररोगास्तान् पानादेवापकर्षति ।
नक्तान्धे तिमिरे काचे नीलिष्ठापटलाबुधे ॥
अभिध्यन्देऽधिमन्धे च पद्मकोपे च दारुणे ।
नेत्ररोगेषु सर्वेषु वातपित्तकफेषु च ॥
अदृष्टि मन्ददृष्टिञ्च कफवातप्रदूषिताम् ।
स्त्रवतो वातपित्ताभ्या सकण्डूवासन्नदूरदृक् ॥
श्वेदप्रदृष्टिकरं सद्यो बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ।

जल तेरह सेर, शेष सवा तीन सेर), भांगरे का रस सवा तीन सेर, बांसे का रस सवा तीन सेर, शतावरी का रस सवा तीन सेर, बकरी का दूध सवा तीन सेर, गिलोय का स्वरस सवा तीन सेर, आंवले का रस सवा तीन सेर; कल्क द्रव्य—पिप्पली, द्राक्षा, त्रिफला, नीलोत्पल, खांड, मुलहठी, क्षीर काकोली, छोटी कटेरी सब मिला कर ६४ तोला; यथाविधि घृत सिद्ध करें ।

मात्रा तथा सेवन विधि—आधा तोला घृत भोजन से पूर्व, मध्य तथा अन्त में सेवन करें ।

रोग—रात्र्यन्ध, आंख दुखना, पड़वाल, मन्ददृष्टि, नेत्र-कण्डू, नेत्रस्त्राव, आसन्न दृष्टि (समीप दृष्टि अर्थात् पास की चीजों को देखने की आंख में क्षमता होना और दूरस्थ द्रव्यों का न देखना), दूरदृष्टि आदि नेत्र रोग ।

त्रैफल घृत^१—घृत सवा तीन सेर, त्रिफला काथ पौने

सर्वनेत्रामयं हन्यात् त्रिफलाद्यं महद् घृतम् ।

—भै० २०, नेत्ररोगाधि०: १७३-१८० ।

- १ त्रिफलाच्यूप्रणं द्राक्षा मधुकं कटुरोहिणी ।
प्रपौण्डरीक सूक्ष्मैला विडङ्गं नागकेशरम् ॥
नीलोत्पल शारिखे द्वे चन्दनं रजनीद्वयम् ।
कार्षिकैः पयसा तुल्यं त्रिगुणं त्रिफलारसम् ॥
घृतप्रस्थं पचेदेतत् सर्वनेत्ररुजापहम् ।

दस सेर (त्रिफला पौने चार सेर, जल उनतालीस सेर, शेष पौने दस सेर); कल्क के लिए त्रिफला, त्रिकटु, द्राक्षा, मुल-हठी, वायविडङ्ग, नाग केसर, नीलोपत्तल, अनन्तमूल, कृष्ण सारिवा, लाल चन्दन और हल्दी प्रत्येक दो तोला; यथा विधि सिद्ध करें ।

मात्रा—आधा तोला ।

रोग—तिमिर, नेत्रस्त्राव, कामला, प्रदर, कण्डू, खालित्य तथा आंखों के सब रोगों में यह लाभ करता है, दृष्टि को निर्मल करता है ।

महानील तैल^१—बहेड़े का तेल १२ सेर ६४ तोला,

तिमिरं दोषामास्तावं कामला काचमर्बुदम् ॥

विसर्प प्रदरं कण्डू रक्तं श्वयथुमेव च ।

खालित्य पलितं चैव केशाना पतनं तथा ॥

विषमज्वरमर्माणि शुक्रश्चाशु व्यपोहति ।

अन्ये च बहवो रोगा नेत्रजा ये च वर्त्मजाः ॥

तान् सर्वान्नाशयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ।

न चैतस्मात्परं किञ्चिदृषिभिः काश्यपादिभिः ॥

दृष्टिप्रसादनं दृष्टं यथा स्यात् त्रैफलं घृतम् ।

—भै० र०, नेत्ररोगाधि०; १८१-१८६ ।

१ आदित्यवल्ल्या मूलानि कृष्णै सैरेयकस्य च ।

सुरसस्य च पत्राणि फलं कृष्णशणस्य च ॥

आंवले का रस १ मन ११ सेर १६ तोला; कलंक द्रव्य—
 सूरजमुखी की जड़, नीली भिन्टी की जड़, सम्हालू के पत्ते,
 काले फूल वाले सन के फल, भांगरा, मकोय, मुलहठी,
 देवदारु प्रत्येक एक सेर, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला,
 रसौत, पुण्डरीक काष्ठ, मंजीठ, लोध, काला अगर, नीलोफर,
 आम की गुठली, काला कर्दम, कमल नाल, लाल चन्दन,

मार्कवः काकमाची च मधुकं देवदारु च ।
 पृथग्दशलाशानि पिप्पल्यस्त्रिफलाञ्जनम् ॥
 प्रपौण्डरीकं मञ्जिष्ठा लोध्रं कृष्णगुरुत्पलम् ।
 आम्रास्थि कर्दमः कृष्णो मृणाली रक्तचन्दनम् ॥
 नीली भल्लातकास्थीनि कासीसं मदयन्तिका ।
 सोमराज्यसनः शस्त्र कृष्णो पिण्डीतचित्रकौ ॥
 पुष्पाऽर्जुन काश्मर्पाण्याम जम्बूफलानि च ।
 पृथक् पञ्चपलाशानि तैः पिष्टैः शरकं पचेत् ॥
 वैभीतकस्य तैलस्य धात्रीरमचतुर्गुणम् ।
 कुर्यादादित्य पाकं वा यावच्छुष्को भवेद्रसः ॥
 लोहपात्रे ततः पूतं संशुद्धमुपयोजयेत् ।
 पाने नस्तः क्रियाया च शिरोभ्यङ्गे तथैव च ॥
 एतच्चक्षुष्यमायुष्यं शिरसः सर्वरोगनुत् ।
 महानीलमितिख्यातं पलितघ्नमनुत्तमम् ॥

नीली की जड़, भिलावे की गुठली, हीरा कसीस, मेंहदी के पत्ते, काली जीरी, असन की छाल, लोह चूर्ण, काला मैनफल, काला चित्रक, अर्जुन और गाम्भारी के फूल, जामुन के कच्चे फल, प्रत्येक आध सेर। विधि पूर्वक लोहे के बर्तन में आग पर पकाएं। सूर्य-पाक करना हो तो कल्क, द्रव और तेल को मिला कर लोहपात्र में डाला धूप में रखें। जलीयांश सूखने तक धूप में पड़ा रहने दें और कभी-कभी हिलाते रहें। सूख जाने पर तेल को साफ़ कपड़े में छान लें।

रोग—आंखों के लिए हितकर है, सिर के सब रोगों को दूर करता है, बाल गिरने और सफेद बालों में सब से उत्तम है और आयु को बढ़ाता है।

सेवन विधि—व्रतन त्रिरेचन आदि द्वारा यथा दोष संशोधन के पश्चात् पान, नस्य तथा सिर पर मालिश में उपयोग करना चाहिए।

हरीतक्यादि योग^१—हरड़, बहेड़ा, आंवला और पांचों पञ्चमूल का क्वाथ १० मन ६ सेर ४८ तोले, इतना ही विदारीकन्द का स्वरस; दूध २० मन १६ सेर १६ तोले,

१ हरीतक्यामलकविभीतकपञ्चपञ्चमूलनिर्यूहेण पिप्पलीमधुमधू-
ककाकोलीक्षीरकाकोल्यात्मगुताजीवकर्षभकक्षीरशुक्लाकल्कसंप्रयुक्तेन वि-
दारीस्वरसेन क्षीराष्टगुणसंप्रयुक्तेन च सर्पिषः कुम्भं साधयित्वा प्रयुञ्जानो-
ऽग्निबलसमा मात्रा, जीर्णे च क्षीरसर्पिर्भ्यां शालिषष्टिकमुष्णोदकानुपान-

पिप्पली, मुलहठी, महुए के फूल, काकोली, क्षीर काकोली, कौंच बीज, जीवक, ऋषभक और क्षीर विदारी का कल्क २५ सेर ४८ तोले, गौ घृत २ मन २२ सेर ३२ तोले यथाविधि सिद्ध करें ।

मात्रा तथा सेवन विधि—पाचन शक्ति के अनुसार आधे से एक तोले की मात्रा में सेवन करें ।

पथ्य—औषध जीर्ण हो जाने पर दूध और घी के साथ शाली व साठी के चावल खाएं । गरम पानी पिएं ।

रोग—इस का नियमित सेवन शरीर के अंगों को बल देता है, बुद्धि तीव्र करता है, बुढ़ापे को दूर करके आयु दीर्घ करता है ।

अष्टाङ्ग संग्रहकार^१ के अनुसार इस में द्रव्यों का परिमाण निम्न लिखित है—घी २ मन २२ सेर ३२ तोला, हरड़ आदि का क्वाथ ५ मन ५ सेर ८ तोले, विदारीकन्द का

मश्रन्, जराव्याधिपापाभिचारव्यपगतभयः शरीरेन्द्रियबुद्धिबलमतुलमुपलभ्याप्रतिहतसर्वारम्भःपरमायुरवाप्नुयादिति ॥

—च०, चि०, अ० १, अभयामलकीय रसायन पाद; ७४ ।

१ अभयामलकविभीतकपञ्चात्मकपञ्चमूलनिर्युहै ।
वल्लीपलाशकरसे द्विगुणे क्षीरेऽष्टगुणे च विपचेत् ॥
घृतस्य कुम्भं मधुकं मधूकं काकोलियुग्मं च बला स्वगुप्ताम् ।
सक्षीरशुक्लमूषभं सजीवमुष्णाम्बुपस्तच्च पिवेद्गुणाढ्यम् ॥

—अष्टाङ्ग संग्रह ।

खरस ५ मन ५ सेर = तोले, दूध २० मन १६ सेर १६ तोले और पिप्पली आदि का कल्क २५ सेर ४ = तोले ।

चार रसायनें?—आंवला और हरड़; आंवला और बहेड़ा; हरड़ और बहेड़ा या आंवला; हरड़ और बहेड़ा; इन चारों में से किसी एक पर ढाक की ताज़ी गीली छाल अच्छी प्रकार लपेट दें और उस के ऊपर मिट्टी लेप कर दें । इसे उपलों की अग्नि में खिन्न करें । पलाश की छाल तथा अपने जलीय भाग के बाष्पों से अन्दर के पदार्थ खिन्न हो जायँगे । सम्पुट को आग से बाहर निकाल कर खोल लें और गुठलियों को निकाल फेंकें । इस प्रकार खिन्न और गुठलियों से रहित उस योग को १०० सेर ले कर ऊखल में कुचलें । यदि आंवले

१ अथामलकहरीतकीनामामलकबिभीतकाना हरीतकीबिभीतकानामामलकहरीतकीबिभीतकाना वा पलाशत्वगवनद्धानां मृदावलितानां कुकूलखिन्नानामकुलानां पलसहस्रमुदूखले संपोथ्य दधिघृतमधुपललतैलशर्करासंप्रयुक्तं भक्षयेदन्नभुग्यथोक्तेन विधिना तस्यान्ते यवाग्वादिभिः प्रकृत्यवस्थापनं, अभ्यङ्गोत्पादनं सर्पिषा यवचूर्णैश्च, अयं च रसायनप्रयोगः प्रकर्षोद्विस्तावदग्निबलमभिसमीक्ष्य प्रतिभोजनं यूषेण पयसा वा षष्टिकः ससर्पिष्कः, अतः परं यथासुखविहारः कामभक्ष्यः स्यात्; अनेन प्रयोगेण-र्षयः पुनर्युवस्वमवापुः, बभूवुश्चानेकवर्षशतजीविनो निर्विकाराः परं शरीरबुद्धीन्द्रियबलसमुदिताः, चेरुश्चास्यन्तनिष्ठया तप इति ।

—च०, चि०, अ० १, अभयामलकीय रसायनपाद; ७३ ।

और हरड़ों का योग हो तो दोनों द्रव्य समान-समान भाग में लें ।

सेवनविधि तथा पथ्य—इस में दही, घी, मधु, तिल कल्क, तिल तेल तथा खाण्ड मिला कर कुटी प्रावेशिक विधि से खाएं और कोई आहार न करें । इस के पश्चात् पेया आदि के क्रम से पथ्य पर रहते हुए स्वाभाविक भोजन पर आ जाएं । प्रति दिन घी की मालिश और जौ के आटे से उबटन करना चाहिए । अग्निबल के अनुसार अधिक से अधिक दिन में दो बार इस योग का सेवन करना चाहिए । भोजन में घृतयुक्त साठी के चावल को यूप या दूध के साथ खाएं ।

रोग—असमय में होने वाले बुढ़ापे के प्रभावों को दूर करता है, उत्तम रसायन है ।

जितने दिन तक इस रसायन का सेवन किया जाय उस से दुगुने दिनों तक यवागू, यूप, दूध, साठी के चावल आदि पथ्य में खाने चाहिए और घी की मालिश तथा जौ का उबटन करना चाहिए ।^१

१ प्रयोगान्ते ततो द्विगुणं कालं यवागूयूपक्षीरघृतषष्टिकात्रमाहारोऽभ्यञ्जनं सर्पिरुद्धर्तनं यवचूर्णमिति ।

ब्राह्म रसायन—पांचों पञ्चमूलों में प्रत्येक पृथक्-
पृथक् १ सेर, हरड़ १०००, ताजे आंवले ३०००, इन्हें
एकत्र ले कर दस गुने जल में क्वाथ बनाएं। हरड़ और आंवले
तोल में लेने हों तो साढ़े बारह सेर हरड़ और साढ़े छत्तीस
सेर आंवले लेने चाहिये। हरड़ और आंवलों को अन्य काष्ठ्य
द्रव्यों के साथ खौला डालने के स्थान पर पतले कपड़े की
ढीली पोटली में बांध कर डालने से सुविधा रहती है। दसवां

- १ पञ्चाना पञ्चमूलाना भागान्दशपलोन्मितान् ।
हरीतकीसहस्रं च त्रिगुणामलक नवम् ॥
विदारीगन्धा बृहती पृश्निपर्णी निदिग्धिका ।
विद्याद्विदारीगन्धाद्यं श्वदंष्ट्रा पञ्चम गणम् ॥
बिल्वाग्निमन्थस्योनाकं काश्मर्यमथपाटलाम् ।
पुनर्नवा शूर्पण्यौ बलामैरण्डमेव च ॥
जीवकर्पभकौ मेदा जीवन्ती सशतावरीम् ।
शरेक्षुदर्भकाशाना शालीना मूलमेव च ॥
इत्येषा पञ्चमूलाना पञ्चानामुपकल्पयेत् ।
भागान्यथोक्तास्तत्सर्वं साध्यं दशगुणोऽम्भसि ॥
दशभागावशेषं तु पूतं तं ग्राहयेद्रसम् ।
हरीतकीश्च ताः सर्वाः सर्वाण्यामलकानि च ॥
तानि सर्वाण्यनस्थीनि फलान्यापोथ्य कूर्चनैः ।
विनीय तस्मिन्नियूहे चूर्णानीमानि दापयेत् ॥

भाग शेष रहने पर पात्र को आग पर से उतार लें और काथ को छान लें । हरड़ और आंवलों की गुठली निकाल फेंकें और रेशे निकाल दें । प्राप्त हरड़ और आंवलों की पीठी को छाने हुये कषाय में डाल दें और उस में निम्न द्रव्य डाल दें— मण्डूकपर्णी, पिप्पली, शङ्खपुष्पी, केवटी मोथा, नागर मोथा, बायविडङ्ग, लाल चन्दन, अगर मुलहठी, हल्दी, वच. नाग-केसर, छोटी इलायची और दालचीनी प्रत्येक का चूर्ण ३२ तोले, मिश्री १ मन ३० सेर, तिल तेल २५ सेर ४८ तोला,

मण्डूकपर्ण्याः पिप्पल्याः शङ्खपुष्पाः प्लवस्य च ।
 मुस्ताना सविडङ्गाना चन्दनागुरुणोस्तथा ॥
 मधुकस्य हरिद्राया वचायाः कनकस्य च ।
 भागाश्चतुष्पलान् कृत्वा सूक्ष्मैलायास्त्वचस्तथा ॥
 सितोपलासहस्रं च चूर्णितं तुलयाऽधिकम् ।
 तैलस्य द्वाढकं तत्र दद्यात्त्रीणि च सर्पिणः ॥
 साध्यमौदुम्बरे पात्रे तत्सर्वं मृदुनाऽग्निना ।
 ज्ञात्वा लेहमदग्धं च शीतं क्षौद्रेण संसृजेत् ॥
 क्षौद्रप्रमाणं स्नेहार्धं तत्सर्वं घृतभाजने ।
 तिष्ठेत्संमूर्छितं तस्य मात्रा काले प्रयोजयेत् ॥
 या नोपरुन्ध्यादाहारमेवं मात्रा जरा प्रति ।
 षष्टिकः पयसा चात्र जीर्णं भोजनमिध्यते ॥
 वैखानसा बालखिल्यास्तथा चान्ये तपोधनाः ।
 रसायनमिदं प्राप्य बभूवुरमितायुषः ॥

घी ३८ सेर ३२ तोला । इन सब को मन्द-मन्द अग्नि पर कलई किये हुये ताम्र-पात्र में पकाएँ । जब लेह ठीक बन जाय उतार लें । दग्ध न होने दें । ठण्डा होने पर घी और तेल के मिलित परिमाण से आधा—३२ सेर—विशुद्ध मधु मिला दें और अच्छी प्रकार मिल जाने पर घी से भावित पात्र में रख छोड़ें ।

इस रसायन लेह को च्यवनप्राशावलेह की तरह भी पकाया जा सकता है । विधि इस प्रकार है—क्वाथ पाक के समय

मुक्त्वा जीर्णं वपुश्चाग्र्यमवापुस्तरुणं वयः ।

वीततन्द्राक्लमश्वासा निरातङ्गाः समाहिताः ॥

मेधास्मृतिबलोपेताश्चिररात्रं तपोधनाः ।

ब्राह्मं तपो ब्रह्मचर्यं चैरुश्चात्यन्तनिष्ठया ॥

रसायनमिदं ब्राह्ममायुष्कामः प्रयोजयेत् ।

दार्ढमायुर्वयश्चान्यं कामाश्चेष्टान् समश्नुते ॥

—च०, चि०, अ० १, अभयामलकीय रसायनपादः ३६-५५ ।

वाग्भट्ट ने भी इस योग को दिया है । इस में घी और तेल का परिमाण चरक से दुगुना है ।

पथ्यासहस्रं त्रिगुणधात्रीफलसमन्वितम् ।

पञ्चाना पञ्चमूलानां सार्धं पलशतद्वयम् ॥

जले दशगुणे पक्त्वा दशभागस्थिते रसे ।

आपोथ्य कृत्वा व्यस्थीनि विजयामलकान्यथ ॥

आंवले और हरड़ की पोटली डाल दें। क्वाथ तैयार हो जाने पर इन की गुठलियां निकाल फेंकें और इन्हें पीस कर कपड़े में हाथ से मल कर छान लें। कपड़े में बचे हुये रेशे आदि को फेंक दें। छानने से प्राप्त पीठी को तेल और घी के यमक में भून लें। मृदु भुन जाने पर वस्त्र से छाना हुआ क्वाथ और मिश्री डाल दें। मन्द-मन्द पकाएँ। ठीक पक जाने पर नीचे उतार लें और मण्डूकपर्णी आदि का चूर्ण मिला कर लकड़ी के खोंचे से अच्छी तरह मिला दें। शीतल होने पर शहद मिलाएँ।

मात्रा—आधे से एक तोला। इस मात्रा से भूख बन्द हो जाय तो अग्नि बल के अनुसार मात्रा कम या अधिक की जा सकती है।

विनीय तस्मिन्नियूहे योजयेत्कुडवाशकम् ।

त्वगेलामुस्तरजनीपिप्पल्यगुरुचन्दनम् ॥

मण्डूकपर्णीकनकशङ्खपुष्पीवचाप्लवम् ।

यष्ट्याह्वयं विडङ्गं च चूर्णितं तुलयाधिकम् ॥

सितोपलार्धभारं च पात्राणि त्रीणि सर्पिषः ।

द्वे च तैलात्पचेत्सर्वं तदग्नौ लेहतां गतम् ॥

अवतीर्णं हिम युञ्ज्याद्विशैः क्षौद्रशतैस्त्रिभिः ।

ततः खजेन मथितं निदध्याद्घृतभाजने ॥

या नोपरुन्ध्यादाहारमेकं मात्रास्य सा स्मृता ।

षष्टिकः पयसा चाऽत्र जीर्णे भोजनमिष्यते ॥

रोग—तन्द्रा, क्लम, श्वास आदि रोगों को यह रसायन दूर करती है और दीर्घ आयु प्रदान करती है ।

पथ्य—औषध के जीर्ण होने पर दूध के साथ साठी के चावल खाना चाहिये ।

इस योग में और हरीतक्यादि योग में वर्णित पांच पञ्च-मूल ये हैं—

पहला पञ्चमूल—शालपर्णी (विदारिगन्धा), पृश्निपर्णी, छोटी कण्टकारी, बड़ी कटैली और गोखरू । इसे विदारी-गन्धाद्यगण या क्षुद्र पञ्चमूल भी कहते हैं ।

दूसरा पञ्चमूल—बिल्व, श्योनाक, गाम्भारी, पाटला और अरणी । इसे महत्पञ्चमूल कहते हैं ।

तीसरा पञ्चमूल—पुनर्नवा, मुग्दपर्णी, माषपर्णी, बला और एरण्ड ।

चौथा पञ्चमूल—जीवक, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती और शतावरी ।

पांचवां पञ्चमूल—सरकण्डा, ईख, दर्भ, कास और शालि की जड़ ।

वैखानसा बालखिल्यास्तथा चाऽन्येतपोधनाः ।

ब्रह्मणा विहितं धन्यमिदं प्राश्य रसायनम् ॥

तन्द्राभ्रमक्लमवलीपलितामयवर्जिताः ।

मेघास्मृतिबलोपेता बभूवुरमितायुषः ॥

—अ० ह०, उ०, अ० ३६; १५-२३ ।

इन में से जो लुप हैं या जिन की जड़ें छोटी होती हैं उन की सम्पूर्ण जड़ ही लेनी चाहिये और जो बड़े वृक्ष हैं जैसे महापञ्चमूल उन की जड़ की छाल ली जानी चाहिये ।

इन पांचों पञ्चमूल की प्रत्येक ओषधि १ सेर लेनी चाहिए । इस प्रकार प्रत्येक पञ्चमूल पांच सेर होगा और पांचों पञ्चमूल २५ सेर होंगे ।

उपयोग

प्रायः नब्बे प्रतिशतक योगों में त्रिफला डाला जाता है । प्राचीन आयुर्वेदिक ऋषियों ने इस को बहुत उपयोगी समझा था ।

रसायन

सुप्रसिद्ध विद्वान् वाग्भट ने इस की प्रशंसा करते हुए यहां तक लिखा है कि त्रिफला सब रोगों को नाश कर के मेधा, स्मृति और बुद्धि को बढ़ाती है ।^१ हारीत का अनुभव है कि मनुष्यों के लिए हितकर, सर्वत्र प्रयुक्त की जाने वाली, सब रोगों को शान्त करने वाली त्रिफला शीघ्र ही शरीर को कान्तिमान् और तेजवान् बनाती है ।^२ रसायन रूप में

१ त्रिफला सर्वरोगधनी मेधायुःस्मृतिबुद्धिदा ॥

—अ० ह०, उ०, अ० ३६; ४३ ।

२ एषा नराणां हितकारिणी च सर्वप्रयोगे त्रिफला स्मृता च ।

त्रिफला बहुत महत्वपूर्ण द्रव्य समझा गया है । शरीर को रोगों से बचाने और स्वास्थ्य वृद्धि के लिये भी त्रिफला का प्रतिदिन सेवन किया जाता है । खेदक, सारक, वाजीकरण और सामान्य बल्य तथा रसायन ओषधियों में आमलकादि वर्ग में सुश्रुत^१ ने आंवले और हरड़ को गिनाया है ।

रसायन रूप में त्रिफला को सेवन करने की एक विधि चरक और गोविन्दास^२ लिखते हैं—आहार के प्रथम दो बहेड़े, भोजन के पश्चात् चार आंवले और आहार के परिपक्व हो जाने पर एक हरड़ घी और मधु के साथ खाना चाहिये ।

सर्वामयाना शमनी च सद्यः सतेजकान्ति प्रतिमा करोति ॥

—हा० सं०, क०, अ० २; १३ ।

१ त्रिफला सर्वरोगघ्नी लिभागघृतमूर्छितः ।

वयसः स्थापनं चापि कुर्यात्सततसेविता ॥

—सु०, सू०, अ० ४५; ७१ ।

२ जरणान्तेऽभयामेका प्राग्भुक्ते द्वे विभीतके ॥

भुक्त्वा तु मधुसर्पिभ्या चत्वार्यामलकानि च ॥

प्रयोजयेत्समामेका त्रिफलाया रसायनम् ।

जीवेद् वर्षशतं पूर्णमजरोऽव्याधिरेव च ॥

—भै० २०, रसायनाधि०; ३-४ । और

—च०, चि०, अ० १, करप्रचितीयरसायन पाद; ४०-४१ ।

इस त्रिफला रसायन का एक वर्ष तक प्रयोग करने से मनुष्य बुढ़ापे और व्याधि से रहित हो कर दीर्घ काल तक जीवित रहता है। चरक^१ त्रिफला सेवन की कुछ विधियां लिखते हैं—

त्रिफला के कल्क को नये लोहपात्र में लेप करें। चौबीस घण्टे बाद उसे उतार कर शहद के शर्बत में घोल कर पी जायँ। यह पच जाने पर खूब घी डाले हुये चावल आदि का भोजन करें। एक वर्ष तक इस रसायन का सेवन करना चाहिये।

त्रिफला दस तोला, मुलहठी दो तोला, वंशलोचन

-
- १ त्रैफलेनायसीं पात्रीं कल्केनालेपयेन्नवाम् ।
 तमहोरात्रिकं लेपं पिबेत्क्षौद्रोदकाप्लुतम् ॥
 प्रभूतस्नेहमशनं जीर्णं तत्र प्रशस्यते ।
 अजरोऽरुक् समाभ्यासाजीवेच्चैव समाः शतम् ॥
 मधुकेन तुगाक्षीर्या पिप्पल्या क्षौद्रसर्पिषा ।
 त्रिफला सितया चापि युक्ता सिद्धं रसायनम् ॥
 सर्वलोहैः सुवर्णेन वचया मधु सर्पिषा ।
 विडंगपिप्पलीभ्या च त्रिफला लवणेन च ॥
 संवत्सरप्रयोगेण मेघास्मृतिबलप्रदा ।
 भवत्यायुषप्रदा धन्या जरारोगनिबर्हणी ॥

—च०, चि०, अ० १, करप्रचितीय रसायन पाद; ४२-४६ ।

आठ तोला, पिप्पली चार तोला और खाण्ड बारह तोले के कपड़छन चूर्ण को तीन माशा की मात्रा में प्रातः सायं शहद और घी मिला कर चाटना चाहिये। यह उत्तम रसायन ओषधि है। पाचन-संस्थान को बल देती है। फेफड़ों और छाती की मांसपेशियों को शक्ति देती है।

हरड़ एक तोला, बहेड़ा एक तोला, आंवला एक तोला, चांदी, बज्र, सीसक, ताम्बा, यशद और लोहा प्रत्येक की भस्म सोलह रत्ती, सुवर्ण भस्म एक तोला, वचा, वाय-विडङ्ग और सेंधा नमक प्रत्येक एक तोला, इन का चूर्ण बना कर एक साल तक प्रयोग करें। यह रसायन है। दो से चार रत्ती की मात्रा में शहद और घी के साथ सेवन की जाती है।

उपर्युक्त सब रसायनों मेधा, स्मृति, बुद्धि, बल और आयु को बढ़ाती हैं। रोगों को नष्ट कर के शरीर में रोगक्षमता को बढ़ाती हैं।

रसायन द्रव्य रूप में भस्मों का प्रयोग आयुर्वेद में बहुत होता है। भस्मों के मारण के लिए त्रिफला बहुत प्रयुक्त होता है। गोपाल कृष्ण भट्ट ने सामान्य पुटपाक और लोह मारण के लिए उपयोगी त्रिफलादि गण में इस का पाठ किया है।^१

अनुपान भेद से रोग नाशकता

हारीत संहिता^१ से ली गई नीचे की तालिका में यह दिखाया गया है कि भिन्न-भिन्न रोगों में किन-किन औषधियों के साथ त्रिफला का प्रयोग करना चाहिये ।

नाम रोग	नाम औषध
वातिक रोग	घी और गुड़ ।
पैत्तिक रोग	शहद और खाण्ड ।
श्लैष्मिक रोग	सोंठ, मिरच और पिप्पली ।

... .. लोहमारकः ।

... .. प्रोक्तस्त्रिफलादिरयं गणः ।

सामान्यपुटपाकार्थमेतानिच्छन्ति सूरयः ॥

-२० सा० स०, अ० १; ३२५-३२६ ।

- १ वाते घृतगुडोपेता पिरो समधुशर्करा ।
 श्लेष्मे त्रिकटुकोपेता मेहे समधुवारिणा ॥
 कुष्ठे च घृतसंयुक्ता सैन्धवेनाग्निमान्द्यहा ।
 चक्षुर्धावनके क्वाथो नेत्ररोगनिवारणः ॥
 घृतेन हरते कण्डू' मातुलुङ्गरसैर्वमिम ।
 गुल्मार्शोगुडसूरणैः स स्यात्तु गुणकारकः ॥
 क्षीरेण राजयक्ष्माणं पाण्डुरोगं गुडेन च ।
 भङ्गगजरसेनापि घृतेन सह योजितः ॥

मेह रोग	शहद और जल ।
कुष्ठ	घी ।
अग्निमान्द्य	सेधा नमक ।
कण्डू	घी ।
वमन	बिजोग निम्बु का रस ।
गुल्म और अर्श	गुड़ और जिमिकन्द ।
राजयक्ष्मा (क्षय)	दूध ।
पाण्डु	गुड़ ।
बाल पक्का	भांगरे का रस ।
मेधा बढ़ाने के लिए	घी ।
सब प्रकार के पुराने उबर	दूध और गुड़ के साथ त्रिफला कषाय ।
शोफ, कामला, पाण्डु, उदररोग	गोमूत्र ।
अतिसार, ग्रहणी	लस्सी (तक) ।

वलीपलितहन्ता च तथा मेधाकरः स्मृतः ।

सक्षीरः सगुडः क्वाथः सर्वजीर्णज्वरापहः ॥

शोफे तथा कामलपाण्डुरोगे तथोदरे मूत्रयुताहिता च ।

क्षीणेन्द्रिये जीर्णज्वरे च यक्ष्मे क्षीरेण युक्ता त्रिफला हिता च ॥

स्थान्नेत्ररोगे च शिरोगदे च कुष्ठे च कण्डूव्रणपीडने च ।

मूत्रग्रहे कामलकेऽग्निमान्द्ये जलेन पीतस्त्रिफलादि कल्कः ॥

-हा० सं०, क०, अ० २; ६-१५ ।

निर्बलता, जीर्णज्वर, यक्ष्मा दूध ।

नेत्ररोग, शिरोरोग, कुष्ठ,

कण्डू, व्रण, मूत्राघात, कामला,

अग्निमान्द्य आदि

जल ।

ऋतु त्रिफला

हरड़ की तरह त्रिफला को भी सब ऋतुओं में सब रोगों के शमन के लिये रसायन रूप में सेवन किया जाता है । चार तोले त्रिफला में एक तोला गुड़ और आधा तोला सोंठ मिला कर सरदियों में दूध के अनुपान से लें । गरमियों के चार महीनों में चार तोले त्रिफला में एक तोला खाण्ड मिला कर दूध के अनुपान से लें । चार तोले त्रिफला और एक तोला सोंठ मिला कर बरसात के चार महीनों में दूध से लें ।^१

पेट के रोग

त्रिफला के कषाय का नियमित सेवन शीतल, पाचक और पाचन संस्थान के लिये बल्य का काम करता है । त्रिफला, दन्तीमूल और रोहेड़े की छाला के एक तोला कषाय

१ सशीतकाले गुडनागरेण सशर्करा क्षीरयुता तथोष्णे ।
वर्षासु शुण्ठीसहिता फलतिका फलत्रिका सर्वरुजाहरा स्यात् ॥

में सोंठ, काली मिरच, पिप्पली और यवक्षार का मिलित चूर्ण सोलह रत्ती डाल कर उदर रोगों में पीने से लाभ होता है।^१ भस्मक रोग में निम्न लिखित चूर्ण आधे से चार रत्ती की मात्रा में देने से रोग वश में किया जा सकता है^२—हरड़, बहेड़ा, आंवला, मोथा, बायविडङ्ग, मिश्री, पिप्पली और अपामार्ग के बीज प्रत्येक एक तोला और लोह भस्म आठ तोला ।

जिगर और तिछी

यकृत और प्लीहा के रोगों के लिए त्रिफलादि चूर्ण या अन्य त्रिफला के योग लाभदायक होते हैं । कामला में यकृत से पित्त का निर्हरण करने के लिए त्रिफला कषाय या त्रिफलादि क्वाथ दिया जाता है । पाण्डु में निर्बल मनुष्य को प्रतिदिन गुड़ और हरड़ का सेवन करना चाहिए ।^३

१ पिवेत्कषायं त्रिफलादन्तीरोहीतकैः शृतम् ।

व्योषक्षारयुतं जार्णे रसैरद्यात्तु जाङ्गलैः ॥

—च०, चि०, उदरचि०, अ० १३; १४८ ।

२ त्रिफलामुस्तवेल्लैश्च सितया कण्ठया समम् ।

खरमञ्जरिबीजैश्च लौहं भस्मकनाशनम् ॥

—र० सा० सं०, अजीर्णचि०; १०० ।

३ दुर्बलस्य प्रयोज्या तु नित्यं गुडहरीतकी ।

—का० सं०, प्लीहहलीमकचि० ।

यकृत रोगों में उपयोग की जाने वाली मण्डूर की शुद्धि के लिए उसे बहेड़े की लकड़ी की आग में तपा-तपा कर गोमूत्र में आठ बार बुझाया जाता है ।^१

मलबन्ध

अनुलोमन के रूप में त्रिफला का प्रयोग एक प्रचलित घरेलू दवा है । रात को सोते समय दो-तीन माशे त्रिफला चूर्ण को दूध के साथ खा लेने से अनुलोमक कार्य हो जाता है । कई लोग रात में त्रिफला को शीतल जल में भिगो कर रख छोड़ते हैं और सुबह उठते ही पानी में मसला कर और कपड़े में छान कर मधु मिला कर पी लेते हैं । कुछ लोग त्रिफला के प्रयोग को रुद्धताजनक समझते हैं । ऐसे व्यक्ति त्रिफला चूर्ण को बादाम रोगन के साथ मिला कर अनुलोमन के लिये ले सकते हैं ।

हरड़ और आंवला प्रत्येक चार ड्राम और रेवन्द चीनी एक ड्राम ले कर एक पाइण्ट पानी में कषाय बनाएँ । दो औंस की मात्राओं में यह कषाय दिन में तीन बार दिया जा सकता है । इस से अच्छा अनुलोमन हो जाता है । साथ ही यह पेशाब को भी खुल कर लाता है ।

१ दग्ध्वाक्षककाष्टैर्मलमायसं तु गोमूत्रनिर्वापितमष्टवारान् ।
विचूर्ण्य लीढं मधुनाचिरेण कुम्भाह्वयं पाण्डुगदं निहन्ति ॥

चिरस्थायी मलबन्ध के लिये त्रिफला के चूर्ण, कषाय या अवलेह का निरन्तर सेवन करना चाहिये । विरेचक दस ओषधियों में चरक^१ ने हरड़, बहेड़े और आंवले का परिगणन किया है । तीनों द्रव्यों के समान भाग चूर्ण को बादाम के तेल और मधु में मिला कर आठ दिन तक बन्द रख कर चिरस्थायी मलबन्ध में व्यवहार किया जाता है । बादाम तेल मिश्रित यह त्रिफलावलेह एक से चार चम्मच की मात्रा में प्रतिदिन या सप्ताह में दो बार लिया जा सकता है ।

गुल्म

पिप्पली और मधुयुक्त त्रिफला के अन्तः प्रयोग से गुल्म का भेदन हो जाता है ।^२ पित्तगुल्म जैसे एपेण्डिसाइटिस में त्रिफला कषाय के साथ त्रिफला गुग्गुलु का निरन्तर सेवन कराया जाय और अन्य भोजनों को कम कर के दूध विशेष रूप से दिया जाय तो बहुत लाभ होता है ।

१ द्राक्षाकाश्रमर्यपरुषकाभयामलकबिभीतककुवलवदरकर्कन्धु-
पीलूनीति दशेमानि विरेचनोपगानि भवन्ति ।

-च०, सू०, अ० ४; १४ (२४) ।

२ त्रिफलायाः प्रयोगैश्च पिप्पलीक्षौद्रसंयुतैः ।

-च०, चि०, अ० २१; १२६ ।

शूल

हरड़, बहेड़ा और आंवला प्रत्येक का चूर्ण एक तोला और तीन तोला लोह भस्म को मिला कर दो रत्ती की मात्रा में दूध के साथ शूल शान्ति के लिये दिया जाता है ।^१ बंगसेन^२ इसे एक और विधि से प्रयोग करते हैं—त्रिफला के स्वरस में लोह भस्म को पकाएँ और त्रिदोषज शूल के शमन के लिये गुड़ के साथ इस का प्रयोग करें । त्रिफला, लोह भस्म और मुलहठी मिला कर मधु और घी के साथ मिश्रित कर चाटने से भी त्रिदोषज शूल नष्ट होता है ।^३ त्रिफला और अमलतास के क्वाथ में मधु और खाण्ड का प्रक्षेप दे कर पीने से रक्तपित्त, दाह तथा शूल दूर

१ तीक्ष्णायश्चूर्णसंयुक्त त्रिफलाचूर्णमुत्तमम् ।

क्षारेण पाययेद्धीमान् सद्यः शूलनिवारणम् ॥

—२० सा० सं०, शूलरोगाचि०; ३ ।

२ अक्षामलकशिवाना स्वरसैः पक्वं सुलोहजञ्च रजः ।

सगुडं यद्युपभुंक्ते मुञ्चति त्रिदोषजं शूलम् ॥

—ब० से० सं०, परिणामशूलचि०; ४३ ।

३ त्रिफला लोहचूर्णन्तु यष्टीमधुकमेव च ।

मधुसर्पियुतं लिह्याच्छूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥

—ब० से० सं०, परिणामशूलचि०; २८ ।

होते हैं।^१

व्रण आदि शल्यकर्म सम्बन्धी अवस्थाओं में

व्रणों पर त्रिफला का अन्तः तथा बाह्य दोनों प्रयोग होता है। बन्द पात्र में जला कर बनाई हुई त्रिफला की भस्म एक भाग और वैजलीन चार भाग मिला कर मरहम बनाई जाती है। यह उत्तम व्रण-रोपक का काम करती है। व्रणों के रोपण के लिए तथा फिरंग व्रणों पर भी यह लेप लगाया जाता है। शोथ युक्त व्रणों में क्लेद, पाक, स्राव, गन्ध और वेदना को दूर करने के लिए त्रिफला के क्वाथ में विशुद्ध गुग्गुलु मिला कर पिया जाता है।^२ विद्रधि, नाड़ीव्रण, गण्डमाला, और दूसरे लम्बे चलने वाले व्रणों में निम्नलिखित गोलियां निरन्तर सेवन करने से लाभ होता है— त्रिफला तीन तोला, पिप्पली दो तोला और गुग्गुलु पांच तोला; पांच-पांच यव की गोलियां बनाएँ। प्रतिदिन दो से चार गोली तक त्रिफला कषाय के अनुपान से ली जानी

१ त्रिफलारग्वधक्वाथं सक्षौद्रं शर्करान्वितम् ।

पाययेद्रक्तपित्तघ्नं दाहशूलनिवारणम् ॥

—भै० २०, शूलरोगाधि०: ३० ।

२ ये क्लेदपाकस्तुतिगन्धवन्तो व्रणा महान्तः स्रक्चः सशोथाः ।
प्रयान्ति ते गुग्गुलुमिश्रितेन पीतेन शान्तिं त्रिफलारसेन ॥

—भै० २०, व्रणशोथाधि०; ४४ ।

चाहिँएँ । इस के निरन्तर सेवन के साथ-साथ बाह्य उपचार भी जारी रखना चाहिये । वाग्भट^१ दीर्घकालप्रसक्त ग्रन्थि में त्रिफला का प्रयोग करते हैं । ग्रन्थिविसर्प में ग्रन्थि पर त्रिफला का लेप किया जाता है ।^२ मुखपाक और मुख-स्फोट में त्रिफला कषाय के गण्डूष करने चाहिएँ तथा त्रिफला का अन्तः प्रयोग भी करना चाहिये जिस से कोष्ठ की शुद्धि हो जाय । त्रिफला के कषाय को गोमूत्र में पका कर पीने से अण्डकोषों की शोथ नष्ट होती है ।^३

मूत्र तथा प्रजनन संस्थान

मेहरोग जैसे शुक्रमेह, रक्तमेह, पूयमेह, मधुमेह, बहुमेह आदि में त्रिफला के चूर्ण और कषाय^४ विशेष उपकारक होते हैं । सम्भवतः यकृत के शोधक होने के कारण त्रिफला मेह-

१ दीर्घकालप्रसक्ते तु ग्रन्थौ त्रिफला प्रयुज्जीत ।

—अ० ह, चि०, अ० २० ।

२ त्रिफलायाः प्रयोगैश्च

—अ० ह०, चि०, अ० १६, विसर्पचि०; २६ ।

३ फलत्रिकोद्भवं क्वाथं गोमूत्रेण साधितम् ।

वातश्लेष्मोद्भवं शोथं हन्यात् वृषणसम्भवम्॥

—भै० २०, शोथाधि०; ४३ ।

४ ... त्रिफला कषायमुत्क्वाथ्य पिवेत्प्रमेही ।

—च०, सू०, अ० ६; २५ ।

रोगहर होता है। चरक ने सूत्र स्थान के तेईसवें अध्याय में मेह और मूत्र सम्बन्धी रोगों के नाश के लिए जो योग दिये हैं उन में अधिकांश में अन्य द्रव्यों के साथ त्रिफला का प्रयोग किया गया है। मेहरोगों में और मूल सम्बन्धी विकारों में त्रिफला के नियमित प्रयोग करने से लाभ होता है। सब प्रमेदों में त्रिफला काथ पिया जाता है। पूर्यमेह में अन्तः उपचार के साथ-साथ त्रिफला कषाय में थोड़ा सा कत्था तथा फिटकरी डाल कर कुछ दिन तक उत्तरवस्ति देते हैं।

स्त्रियों के रोग

स्त्रियों के उत्पादक अंगों के रोगों में भी आंवले और हरड़ का प्रयोग किया जाता है। सुश्रुत ने मुस्तादि वर्ग में आंवले और हरड़ का पाठ किया है। इस गण के गुण गर्भाशय और योनि रोगों को दूर करना, स्तन्य दूध को शुद्ध करना आदि हैं। रक्त प्रदर में बहुत अधिक भी रक्त जाता हो तो आंवला, हरड़ और रसौत को सम भाग में जल के साथ

१ त्रिफलायास्तयैव च ।

... .. यान्ति मेहादयः शमम् ॥

-च०, सू०, अ० २३; १७ ।

२ ... त्रिफला कषायमुत्प्रेष्य पिवेत्प्रमेही ।

-च०, चि०, अ० ६; २५ ।

पीने से बन्द हो जाता है ।^१

मदात्यय, उरुस्तम्भ

मदात्यय में त्रिफला चूर्ण को घी, शहद और खाण्ड में मिला कर सेवन किया जाता है ।^२ उरुस्तम्भ में कटुकी चूर्ण तथा मधु के साथ त्रिफला का सेवन किया जाता है ।^३

त्वचा के रोग

चिरस्थायी त्वक् रोगों में त्रिफला के चूर्ण, गुग्गुलु, घृत आदि का कुछ काल निरन्तर सेवन करने से विशेष लाभ होता है । कुष्ठघ्न दस ओषधियों में चरक संहिता में हरड़ और आंबला भी परिसंख्यात हैं ।^४

१ धात्री च पथ्या च रसाञ्जनञ्च विचूर्ण्य सर्वं सजलं निपीतम् ।
अनन्तरक्तसवमुग्रवेगं निवारयेत् सेतुरिवाम्बुवेगम् ॥
-२० सा० सं०, प्रदर चि०; १६ ।

२ त्रिफला वा प्रयोक्तव्या सघृतक्षौद्रशर्करा ।
-अ० ह०, चि०, अ० ७; १०४ ।

३ लिह्याद् वा त्रिफलाचूर्णं क्षौद्रेण कटुकायुतम् ।
-भै० २०, उरुस्तम्भाधि०; १० ।

४ खदिराभयामलकहरिद्रारुकरसप्तपर्णारिग्वधकरवीरविडङ्गजातिप्र-
बाला इति दशेमानि कुष्ठघ्नानि भवन्ति ॥
-च०, सू०, अ० ४; १४ (१३)

आंख के रोग

त्रिफला आंख के लिये हितकर द्रव्य है ।^१ इस के कषाय से प्रति दिन प्रातःकाल आंख धोने से आंखों के रोग नष्ट होते हैं^२ और फिर दुबारा नहीं होते ।^३ भोजन और रहन-सहन को नियमित कर के प्रति दिन सायंकाल त्रिफला चूर्ण को घी और शहद के साथ मिला कर सेवन करने से आंखों के सब विकार दूर होते हैं । आंखों के रोगों में वैद्य कालोदास त्रिफला को मुलहठी, निर्मली या दारुहल्दी के साथ रात को डालते हैं ।^४ घीकंवार के रस से त्रिफला को सात

- १ त्रिफला ।
चक्षुष्यः ... कथितो भिषग्भिरियम् ॥
—भै० २०, नेत्ररोगाधि०; ६५ ।
- २ चक्षुर्धावनके काथो नेत्ररोगनिवारणः ।
—हा० सं०, क०, अ० २; ७ ।
- ३ जाता रोगा विनश्यन्ति न भवन्ति कदाचन ।
त्रिफलायाः कषायेण प्रतर्नयनधावनात् ॥
—च० ६०, नेत्ररोगचि०; ६६ ।
- ४ यस्त्रैफलं चूर्णमपथ्यवर्जं सायं समभ्रातिहविर्मधुभ्याम् ।
स मुच्यते नेत्रगतैर्विकारैर्भूत्यैर्यथा क्षीणधनो मनुष्यः ॥
—च० ६०, नेत्ररोगचि०; ६५ ।
- ५ त्रिफला मधुकेन संसृक्ता कतकेनापि सदारु रात्रिणे ।

बार भावना देते हुए खूब रगड़ते हैं। फिर धीकंवार के गूदे में रख कर पुटपाक की विधि से पका लेते हैं। आंखों के रोगों में शहद के साथ इस का उपयोग करते हैं।^१ हरड़ तीन, बड़ेड़े छह और बारह आंवलों को १२८ तोले जल में सिद्ध करें, सोलह तोला शेष रहने पर छान लें। इस काथ को पीने से अभिष्यन्द, नेत्रस्राव, आंखों की लालिमा, आंखों के आगे अन्धेरा आना, नेत्रशोथ तथा नेत्रशूल आदि रोग नष्ट हो कर आंखें निर्मल हो जाती हैं।^२ नेत्रस्राव में दोषों की विवेचना करके त्रिफला क्वाथ को मधु, धृत अथवा पिप्पली चूर्ण के साथ मिला कर पीना चाहिए।^३ हरड़ की गुठली की

नयनामापजित् ॥

—वै० म०, पटल १६; १८।

१ कन्यास्वरसम्पिष्टः त्रिफला सप्तवारकम् ।

पुनस्तत्स्थः पुटे स्विन्नः सक्षौद्रः नेत्ररोगहः ॥

—वै० म०, प० १६; २४।

२ पथ्यास्तिस्त्रो विभीतक्यः पङ् धान्यो द्वादशैव तु ।

प्रस्थाद्धैः सलिलक्वाथमष्टभागावशेषितम् ॥

पीत्वाभिष्यन्दमास्त्रावं रागञ्च तिमिरं जयेत् ।

संरम्भरागशूलास्रनाशनं दृक् प्रसादनम् ॥

—च० द०, नेत्ररोगचि०, ४५-४६।

३ स्त्रावेपु त्रिफलाक्वाथं यथादोषं प्रयोजयेत् ।

गिरी तीन भाग, बहेड़े की मींगी दो भाग और आंवले के बीज एक भाग को एक साथ पीस कर वर्ति बनाएं। इस को घिस कर आंजने से आंखों की लाली तथा नेत्र के रोहे शीघ्र नष्ट होते हैं।^१

तिमिर रोग में त्रिफला क्वाथ में घी मिला कर प्रति दिन सेवन करने से लाभ होता है।^२ पैत्तिक तिमिर रोग में प्रचुर घृत मिश्रित, वातज तिमिर रोग में तेल मिश्रित और कफज तिमिर रोग में मधु मिश्रित त्रिफला का प्रयोग किया जाता है।^३ त्रिफला के कल्क, क्वाथ अथवा चूर्ण को प्रति दिन शहद या घृत के साथ सेवन करने से सम्पूर्ण तिमिर रोग नष्ट होते हैं।^४

क्षोद्रेणाज्येन पिपल्या मिश्र ॥

—मै० २०, नेत्ररोगाधि०, २०६।

१ पथ्याक्षधात्रीफलमप्यत्रांजमिद्वयेकभागैर्विदधीत वर्तिम् ।

तथाञ्जयेदसमतिप्रगाढमदणोर्दरेत् कोपमतिप्रवृद्धम् ॥

—मै० २०, नेत्ररोगाधि०, २०८।

२ सघृतं वा वराक्वाथं शीलयेत्तिमिरामयी ।

—च० ६०, नेत्ररोगाधि०, ६६।

३ लिह्यात् सदा वा त्रिफलां सूचूर्णिता घृतप्रगाढा तिमिरेऽथ पित्तजे ।

समीरजे तैलयुता कफात्मके मधुप्रगाढा विदधीत युक्ततः ॥

—मै० २०, नेत्ररोगाधि०, ६६।

४ कल्कः क्वाथोऽथवा चूर्णं त्रिफलाया निषेवितम् ।

आंवले का स्वरस एक प्रस्थ, इतना ही घी और मुलहठी एक पल । हलकी आग पर पकाएं । इस तेल को लगाने से अन्धों को दृष्टि प्राप्त होती है, सफेद बाल काले हो जाते हैं । इस का नस्य खोई हुई दृष्टिशक्ति को पुनः लौटा देता है ।^१

बवासीर

अर्श में त्रिफला का प्रयोग किया जाता है । त्रिफला के घूर्ण को तक्र के अनुपान से अर्श में प्रयोग कराएं ।^२

ज्वर

त्रिफला विषमज्वरहर, कफपित्तहर और मलस्रंसक होने से शरीर से मल-भूत, पित्त का निर्हरण करती है । विषम-ज्वर में त्रिफला कवाथ में शहद डाल कर कुछ दिन पिलाने

मधुना हविषा वापि समस्ततिमिरान्तकृत् ॥

—च० द०, नेत्ररोगचि०; ६४ ।

१ आमलकरसप्रस्थः सर्पिः प्रस्थः पलं च मधुकस्य ।

संभृत्य सर्वमेतद्वैद्यो मृद्वग्निना विपचेत् ॥

अन्धमनन्धं कुर्यात्पलितमपलितं तथैव दृढदत्तम् ।

एतन्नस्तः करणं गतामपि निवर्तयति दृष्टिम् ॥

—नावनीतक, प्रक० २; १४-१५ ।

२ ... तक्रयुतां त्रिफलां वा प्रयोजयेत् ।

—च०, चि०, अ० १४; ६६ ।

से ज्वर जाता रहता है। शहद के स्थान पर गुड़^१ का भी प्रयोग किया जा सकता है। हारीत^२ लिखते हैं—आंवला, हरड़, पिप्पली, वच, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़ बहेड़ा, आंवला, दालचीनी, इलायची और तेजपत्र का क्वाथ मल को पतला करता है, कफ को हटाता है, ज्वर का नाश करता है और अग्नि को उद्दीप्त करता है।

खांसी, जुकाम

हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच और पिप्पली प्रत्येक के सम भाग चूर्ण को एक माशा प्रति दिन शहद के साथ चाटने से खांसी दूर होती है।^३ भगवान् बुद्ध को एक बार जुकाम हो गया। जीवक ने उसे विरेचनीय द्रव्यों से भावित कमलों की तुखार दी। उस से ३२ छीकें आईं। इस से भी जुकाम गया नहीं। जीवक ने गुड़-हरीतकी को मण्ड के

१ गुडप्रगाढा त्रिफलां पिवेद्वा विषमार्दितः ।

—च० द०, ज्वरचि०; २०३ ।

२ आमलक्यभया कृष्णाषड्ग्रन्था त्रित्रिकन्तथा ।

मलमेदी कफान्तको ज्वरनाशनदीपनः ॥

—हा० सं०, ज्वर चि०, अ० २; ८२ ।

३ त्रिफलाव्योषचूर्णञ्च समभागं प्रकल्पयेत् ।

मधुना सह पानात् तु दुष्टकासं नियच्छति ॥

—२० सा० सं०, कासचि०; ६० ।

अनुगान से दिया । भगवान् ठीक हो गये ।^१

बाल रंगने के लिए

हरड़, बहेड़ा, आंवला और लोहचूर्ण को किसी अम्लद्रव से पीस लेने पर उत्तम केशराग (खिजाब) बन जाता है ।^२ नावनीतक (लगभग दूसरी शती ईस्वी पूर्व) के दसवें अध्याय, दूसरे प्रकरण में त्रिफला के योगों से बालों को रंगने की अनेक विधियां बताई गई हैं । कुछ विधियां यहां दी जाती हैं । नावनीतक में केशरञ्जन के जिन द्रव्यों का नाम आया है प्रायः वे सब वाग्भट द्वितीय (८ वीं या ६ वीं शती ईस्वी पश्चात्) के अष्टाङ्ग हृदय में भी आये हैं ।

हरड़ और आंवले के पानी से पहले सिर को धोएं । फिर अलम्बुषा और नील को एक साथ घोट कर बनाये कल्क का गरम लेप सिर पर कर दें । इस से बाल सफेद नहीं होंगे ।^३

१ ... भगवन् यद्येवं गुडहरीतकी भक्ष्य । मण्डानुपूर्वी च कुरुष्वेति । भगवता तथा कृतम् । स्वस्थो जातः ।

—गिलगित मैनुस्क्रिप्ट्स, जिल्द ३, भाग २, पृष्ठ ४७ ।

२ अयश्चूर्णोऽम्लपिष्टश्च रागः सत्रिफलोवरः ॥

—च०, चि०, अ० २६; २७८ ।

३ अभयामलकाभ्याञ्च पूर्वं प्रक्षालयेच्छिरः ।

अलम्बुकञ्च संगृह्य पीपेनीलिकया सह ॥

हमड़, बहेड़ा, आंवला, नील, नीला कमल, पिण्डारक के फल, काला सुरमा, पिप्पली मूल, लाल बांसे (सहचर) के पत्ते, प्रत्येक एक तोला लें । इस में जामुन की जड़ की मिट्टी तथा अर्जुन के फलों का काढ़ा और दो कुड़व तिल तेल मिलाएं । सारे मिश्रण को बहेड़े के तेल में मन्दाग्नि पर धीरे-धीरे पकाएं । इस का पन्द्रह दिन नस्य देने से सोलहवें दिन सफेद बाल नहीं दीखते, मिर काला हो जायगा । मुख और आंखें सुन्दर दीखती हैं । उस श्रीसम्पन्न के सिर के बाल काले हो जाते हैं । विद्वानों में श्रेष्ठ अगस्त्य भगवान् ने ऐसा बताया है ।^१

तेनोष्णेन शिरो लिपेत्पलितं न भविष्यति ॥

- ना० नी०, प्रक० २, ६-७ ।

- १ त्रिफला च समा कुर्भीली नीलोत्पलाणि च ।
 अक्षमान्पृथग्भागाफलं पिण्डारकस्य च ॥
 अञ्जनं पिप्पलीमूलं पत्रं सहचरस्य च ।
 जंबूकषायः कर्तव्यः जंबूमूलाच्च मृत्तिकाम् ॥
 ककुभस्य फलं कुर्यात् द्वौ तैलकुडवौ तथा ।
 एतद्वैभीतके तैले शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥
 म [०००] सराहा [नि] नस्तः कर्मस [माच] रेत् ।
 ततः षोडशमेह्यहि न श्वेतः कृष्णमूर्धजः ॥
 सुवक्तनयनः श्रीमान्भवेन्नीलशिरोरुहः ।

त्रिफला, लाल फूल वाले बांसे (सहचर) के फूल, जामुन, गाम्भारी, अर्जुन के फूल, आम की गुठली की गिरी, पिण्डारक के फल, हीरा कसीस, असन के फूल, नील, नीलोत्पल, भिस की गांठें, अञ्जन, कर्दम, लोहचूर्ण, दोनों कटेली, सफेद तथा काली सारिवा, चमेली, भृङ्गराज का रस और बहेड़े का तेल। इस में असन का काढ़ा मिला कर लोह पात्र में दस दिन तक पड़ा रहने दें। हलकी आंच पर पकाएं। मूंग और उड़दों में रखे सिरके को आधे परिमाण में मिलाएं। पन्द्रह दिन तक इसे सुगन्धित स्थान पर रखा रहने दे कर प्रयोग करें। त्रिफला के प्रयोग से शुद्ध कर लिये गये शरीर वाले को एक सिप्पी भर यह तेल नस्य में लेना चाहिए। खिचड़ी खाये। सावधानि से उत्तम स्थान पर रहे। नाक द्वारा एक प्रस्थ तेल सेवन कर लेने के बाद सफेद सिर वाला फिर काले बालों वाला हो जाता है।'

इत्युवाचेह भगवान् अगस्त्यो वदतां वरः ॥

—ना० नी०, प्रक० २; ११-२०।

- १ त्रिफलासहचरकुसुमं जंबूकाभ्र्यककुभकुसुमञ्च ।
 चूतफलस्य च मध्यं तथैव पिण्डारकफलञ्च ॥
 कासीसमसनकुसुमं नीलीनीलोत्पलं विसग्रन्थी ।
 अञ्जनमञ्जनवर्णश्च कर्दमो लोहचूर्णञ्च ॥

बहेड़े के तेल में नीला थोथा, मोथा, हीरा कसीस, कछुए का पित्ता, लोह चूर्ण, दंती, सहदेवी और भांगरा प्रत्येक समान भाग डाल कर तेल पका लें। यह तेल सफेद बालों को काला करता है। सिर पर सदा मलते रहने से बाल सफेद नहीं होते।'

दस छटांक बहेड़े के तेल में दो छटांक राम तरुणी

द्वे कण्टकारिके द्वे च शारिवे दापयेच्च मदयंतीम् ।
 भृङ्गराजरसं चाथो तथैव वैभीतकं तैलम् ॥
 असनकषायालुडितं पात्रे काष्णायसे दशाहानि ।
 स्थितमेतदनिभे दग्धं सम्यङ्मृद्वग्निना विपचेत् ॥
 मुग्देष्वथ माषेषु च सुक्तं स्थाप्यमर्धमादाप्य ।
 पूर्णं ततोर्धमासे कृतरक्षन्तःप्रयोक्तव्यम् ॥
 त्रिफलाभावितकायः कृशराशी शुक्तिमस्य तैलस्य ।
 एकान्तरं सुनियतः सुनिवाते नस्ततो दद्यात् ॥
 तैलप्रस्थं त्वेतद्यः सम्यङ्नामयेन नासिकया ।
 उपयुक्ते श्वेतशिरा सङ्कष्यकेशः पुनर्भवति ॥

-ना० नी०, प्रक० २: २१-२७ ।

- १ तुल्यमुस्तं सकासीसं कूर्मपित्तमयोरजः ।
 दंती च सहदेवा च भागो भृङ्गरजस्य च ॥
 विभीतकानां तैलेन विद्धं पलितनाशनम् ।
 अभ्यंगं सततं कुर्यात् पलितं न भविष्यति ॥

-ना० नी०, प्रक० २: ५-६ ।

(सफेद गुलाब) की जड़, एक छटांक मुलहठी और आधी छटांक शावरक का कल्क मिला कर लोहे के बरतन में दस दिन तक धूप में पड़ा रहने दें । इस का नस्य सफेद बालों को भौरे की तरह काला कर देता है ।^१

वराहमिहिर (लगभग ५०० ईस्वी पश्चात्) ने गन्ध-युक्ति अध्याय में केशगर्गों की उपयोगिता बताते हुए एक नुस्खा दिया है जिस में आंवला एक घटक है । अन्तःपुर में बालों को काला करने के लिए यह उपयोग में रहा होगा ।^२

- १ रामतरुण्या द्वे मूलपले पल च मधुकम्प ।
शावरकम्यार्धपलन्दश च पलानक्षतैलग्न्य ॥
आदित्येन विपक्वं पात्रे कार्णायमे दद्यादनि ।
कुर्यान्नस्तः कर्म भवमसवर्णानि पालितानि ॥

—ना० नी०, प्रक० २; १२-१३ ।

- २ स्वग्ध धवावरभूषणाद्य न शोभते शुक्लशिरोरुहस्य ।
यस्मादतो मूर्धजराममेवा कुर्याद्यथैवाजनभूषणानाम् ॥
लोहे पात्रे तंडुलान् कोद्रवाणां शुक्ले पक्वा लोहचूर्णेन साकम् ।
पिष्टान् सूक्ष्मं मूर्ध्नि शुक्लाभ्रकेशे दत्वा तिष्ठेद्द्वेष्टित्वार्कपत्रैः ॥
याते द्वितीये प्रहरे विहाय दद्याच्छिरस्यामलकप्रलेपम् ।
संछाद्यपत्रैः प्रहरद्वयेन प्रक्षालितं कार्ण्यमुपैति शीर्षम् ॥
पश्चाच्छिरः स्नानमुगन्धतैलैः लोहाभ्रगन्धं शिरसोवनीय ।

लिखने की स्याही

मुनि पुण्य विजय के अनुसार कोई ३०० वर्ष पूर्व ताड़ पत्रों पर लिखने की स्याही त्रिफला से बनाई जाती थी।^१ नित्यनाथ सिद्ध (लगभग १२०० ईस्वी पश्चात् से आगे) के रस रत्नाकर में ताड़ और भोज के पत्रों पर लिखने के लिए बनाई गई स्याहियों के नुस्खों में त्रिफला डाला गया है।^२

सर्पदश

वात, पित्त, कफ तीनों दोषों को प्रकुपित करने वाले व्यन्तर (शूद्र) सांपों के काटने पर त्रिफला देना हितकर है।^३

हृद्यैश्च गर्धैर्विविधैश्च धूपैः अन्तःपुरे राज्यमुखं निषेवेत् ॥

—बृहत् संहिता, अ० ७८; १-४।

१ सहचरभृङ्गत्रिफला कासीसं लोहमेव नीली च ।

समकज्जलबोलयुवा भर्ता मपी ताडपत्राणाम् ॥

२ त्रिफला भ्रंगकोरंटभल्लातकरवीरकम् ।

बीजाग्रसममेतेषा समाश बोलकज्जले ॥

क्षिप्वा मर्द्यं ताम्रपात्रे पंचाहाजायते मपी ।

तालपत्रेषु भूर्जेषु लिख्यते परमं दृढम् ॥

देखे, श्री पी० के० गोडे के लेख-१० प्राच्यवाणी, कलकत्ता, १६४६, जिल्द ३, संख्या ४, पृष्ठ १-१५। और २० भारतीय विद्या, जिल्द ११, संख्या १-२, १६५०।

३ शूद्रे त्रिफलमेव च ।

—भविष्य पुराण, पञ्चमी कल्प ।



सहायक साहित्य

अंग्रेजी

ब्रे एडिस, डी.	१८७४	फौरेस्ट प्लोरा ।
रोक्सबर्घ, डब्ल्यू.	१८७४	प्लोरा इण्डिका ।
वाट, जी.	१८९२-९३	ए डिक्शनरी ऑफ दि इकॉनोमिक प्रोडक्ट्स ऑफ इण्डिया ।
दे, कनाई लाल	१८९६	इण्डिजीनस ड्रग्स ऑफ इण्डिया ।
गैम्बल	१९०२	ए मैनुअल ऑफ इण्डियन ट्रीज़ ।
वाट, जी	१९०४	कमर्शियल प्रोडक्ट्स ऑफ इण्डिया ।
ब्रे एडिस	१९०७	इण्डियन ट्रीज़ ।
कीर्तिकर, के. आर.		
और बसु. जी. डी.	१९१६	इण्डियन मेडिसिनल प्लान्ट्स ।
ट्रूप	१९२१-२६	दि सिल्विकल्चर ऑफ इण्डियन ट्रीज़
कौलेट	१९२१	प्लोरा सिमलेन्सिस ।
नन्दकरणी, के. एम.	१९२७	इण्डियन मैटोरिया मैडिका ।
दत्त, एन. बी.	१९२८	कमर्शियल ड्रग्स ऑफ इण्डिया ।
बोस, के. सी.	१९३२	फार्माकोपिया इण्डिका ।
चोपड़ा, आर. एन.	१९३३	इण्डिजीनस ड्रग्स ऑफ इण्डिया ।
बुर्किल, आई. एच.	१९३५	ए डिक्शनरी ऑफ दि इकॉनोमिक प्रोडक्ट्स ऑफ दि मलय पेनिन्सुला
एडवर्ड्स, एम. वी.	१९४५	टर्मिनेलिया चिबुला । इण्डियन फौरेस्ट लीफलेट नं० ७५ ।

संस्कृत

चरक संहिता; जयदेव विद्यालंकार, सम्बत् १९९१-९३ ।
 सुश्रुत संहिता; मोतीलाल बनारसीदास, १९३३ ।

अष्टांग हृदय; निर्णय सागर मुद्रणालय, १९३६ ।

अष्टाङ्ग संग्रह ।

हारीत संहिता; वेङ्कटेश्वर प्रेस, सम्बत् १९६२ ।

कौश्यायन संहिता; निर्णय सागर, १९३८ ।

चक्रदत्त; सदानन्द सम्बत् १९८८ ।

भैषज्य रत्नावली; जयदेव, १९३२ ।

बंग सेन संहिता; नवल किशोर प्रेस, १९०४ ।

शार्ङ्गधर संहिता; लक्ष्मी वेङ्कटेश्वर प्रेस, १९२८ ।

रसेन्द्र सार संग्रह; विद्याधर विद्यालङ्कार, १९३६ ।

भाव प्रकाश निघण्टु; वेङ्कटेश्वर प्रेस, सम्बत् १९७२ ।

भाव प्रकाश; चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, १९३८ ।

कैवदेव निघण्टु; मेहरचन्द्र लक्ष्मण दास, १९२८ ।

पदन विनोद निघण्टु; त्र्यम्बक शास्त्री, सम्बत् १९६८ ।

राज निघण्टु; आनन्दाश्रम मुद्रणालय, १८६६ ।

रत्नान्तरि निघण्टु; आनन्दाश्रम मुद्रणालय, १८६६ ।

य मनोरमा; यादव शर्मा, १९२४ ।

जमार्तण्ड; यादव शर्मा, १९२४ ।

यह सूची बहुत संक्षेप में दी गई है । अन्वेषक-विद्वानों को
वक जानकारी प्राप्त करने के लिए पाठ्य सामग्री के साथ-साथ
लेख किये गये तथा टिप्पणियों में ठिठके गये सहायक-साहित्य को
सिना चाहिए ।



भारतीय-द्रव्यगुण ग्रन्थमाला की सदस्यता के नियम

इस ग्रन्थमाला की स्थायी सदस्यता का शुल्क एक रुपया है। एक बार एक रुपया हमारे पास जमा कराके जो सज्जन इस के ग्राहक बन जाते हैं उन्हें प्रत्येक नयी प्रकाशित पुस्तक १२३ प्रतिशतक कमीशन काट कर वी. पी. पेंकेट से भेज दी जाती है। पूर्व प्रकाशित पुस्तकों पर उहें यह गिरायत नदी दी जाती। एक साथ सो रुपये जमा कराने वाले सज्जन आजीवन सदस्य समझे जाते हैं। उन्हें भारतीय द्रव्यगुण-ग्रन्थमाला की नयी प्रकाशित होने वाली सब पुस्तकें बिना मूल्य भेट दी जाती हैं। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उन्हें पाने मूल्य में पाने का अधिकार होगा। प्रत्येक हिन्दी जानने वाले को इस ग्रन्थमाला का सदस्य अवसर बन जाना चाहिए।

पुस्तक विक्रेताओं के लिये

थोड़े ही समय में हमारे प्रकाशनो के नये नये संस्करणों का निकलना इस बात को बताता है कि इन पुस्तकों की सर्वसाधारण में कितनी माँग है। पुस्तकविक्रेता इन्हें बेच कर बहुत लाभ उठा रहे हैं यदि आप विक्रेता हैं तो आज ही अपना बड़ा आर्डर दायिये।

प्रकाशित ग्रन्थ

१ त्रिफला, तीसरा परिवर्धितसंस्करण, ३०४ पृष्ठ	३।
२ अज्जोर, तीसरा परिवर्धित संस्करण	१।
३ सोठ, तीसरा संवर्धित संस्करण, १५० पृष्ठ	१।
४ तुलसी, दूसरा संवर्धित संस्करण, १८६ पृष्ठ	२५
५ देहाती इलाज, दूसरा संवर्धित संस्करण, ८२ पृष्ठ	१।
६ लहसुन : प्याज़, दूसरा संवर्धित संस्करण २०० पृष्ठ	२।
७ शहद, सजिल्द, आर्ट पेपर पर तिरंगा आवरण, २५८ पृष्ठ	३
८ मिर्च (काली, सफेद और लाल), दूसरा संवर्धित संस्करण ६० पृष्ठ	१
९ सापों की दुनिया, ३४० पृष्ठ, २४ चित्र, पक्की जिल्द	५

पता—हिमालय हर्बल इस्टिटेयूट, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

